संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि परम्परा एवं मानवता

Sant, Mahatma, Rishi, Muni, Maharishi Tradition and Humanity

दिव्य प्रेरक कहानियाँ मानवता अनुसंधान केन्द्र

Divya Prerak Kahaniya Humanity Reserch Centre

–: शोधार्थी :–

डॉ. लीला (मोरे) धुलधोये

Registration No. HR/369/16

Date 21/05/2023

मानवता में व्यावहारिक अनुसंधान के उपरांत प्रस्तुत शोध प्रबंध

अनुसंधान का विषय- "संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि, परंपरा और मानवता"

शोधार्थी का नाम- डॉ लीला (मोरे) धुलधोये

पंजीयन संख्या- Reg NO HR/369/16 (21/05/2023)

शोधार्थी का पता- इंदौर (म.प्र.)

शोध पर्यवेक्षक – डॉ. बिंदु परस्ते

दिव्य प्रेरक कहानियाँ मानवता अनुसंधान केंद्र

DIVYA PRERAK KAHANIYAN HUMANITY RESEARCH CENTRE

An ISO 21001:2018 Certified Research Institution

Affiliated with PNEUMA International University, Koral, Zimbabwe

Regd. Under Indian Trust Act 1882, Government of India

पंजीकृत कार्यालय- ठेकमा, जिला- आजमगढ़, उत्तर प्रदेश (भारत)

शोधार्थी घोषणा पत्र

मैं ...डॉ. शीला(मोरे) धुलधोये... (शोधार्थी दिव्य प्रेरक कहानियाँ मानवता अनुसंधान केंद्र) यह प्रमाणित करता हूँ की प्रस्तुत शोध प्रबंध "समाज सेवा और मानवता" जो व्यावहारिक अनुसंधान का मूल भाग है तथा अप्रकाशित है। इस शोध प्रबंध को ...डॉ. बिंदु परस्ते... के मार्गदर्शन में हमने पूरा किया है। मैं यह घोषणा करती हूँ की इस शोध कार्य में किसी प्रकार के साहित्यिक चोरी नहीं की गई है तथा इससे पहले किसी अन्य डीग्री डिप्लोमा के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह भी प्रमाणित करती हूँ की हमने अपना अनुसंधान कार्य **दिव्य प्रेरक कहानियाँ मानवता अनुसंधान केन्द्र** द्वारा प्रतिपादित सभी नियम व निर्देशों के तहत पूर्ण किया है।

L. Dhuldhoye

दिनांक...25/06/2025...

शोधार्थी का हस्ताक्षर

पर्यवेक्षक घोषणा पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि दिव्य प्रेरक कहानियाँ मानवता अनुसंधान केंद्र अंतर्गत "संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि परंपरा और मानवता" विषय पर शोधार्थी ...डॉ. शीला(मोरे) धुलधोये... द्वारा किया गया प्रस्तुत अनुसंधान मूल व अप्रकाशित भाग है। इनके द्वारा मेरे निर्देशन में यह शोध कार्य किया गया है एवं शोध प्रबंध साहित्यिक चोरी रहित, बहुत ही उत्कृष्ठ है तथा शोध प्रकाशन के लिए उपयुक्त है।

वर्तमान में यह व्यवहारिक अनुसंधान कार्य समाज में सामाजिक समरसता, आपसी एकता, प्रेम, सहयोग, परोपकार तथा नैतिकता, मानवता युक्त सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने में अति महत्वपूर्ण साबित होगा। इस तरह का अनुसंधान कार्य करना, अनुसंधान कर्ता की कार्य कुशलता व सच्ची मानवता के प्रति समर्पण को दर्शाता है।

यह भी प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी ने अपना अनुसंधान कार्य **दिव्य प्रेरक कहानियाँ मानवता अनुसंधान केन्द्र** द्वारा प्रतिपादित सभी नियम व निर्देशों के तहत पूर्ण किया है।

दिनांक...28/06/2025...

पर्यवेक्षक का हस्ताक्षर

नाम ...डॉ. श्रीमती बिन्दु परस्ते...

पद नाम ...सहायक प्राध्यापक हिन्दी...

पता ...31, अलकापुरी मूसाखेड़ी इन्दौर (म.प्र.)...

डॉ. श्रीमती बिन्दु ...

सहायक ... हिन्दी

प्रस्तावना

संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि, परंपरा और मानवता विषय पर मैंने अपना शोध कार्य किया है ।

बचपन से आध्यात्मिक प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा इस कारण मैंने सोचा इस विषय पर गहन अध्ययन करूं। इस शोध कार्य को करते समय ज्ञात हुआ कि संत किसे कहते हैं, उनके क्या कार्य है ,महात्मा कैसे ,कौन होते हैं ।

उन्होंने समाज के लिए क्या किया। ऋषि, मुनि ,महर्षि कौन–कौन से हैं। उनका समाज में क्या स्थान था ,है उन्होंने कौन–कौन से ग्रंथो की रचना की, उनकी रचनाओं का आज की आधुनिक ,वैज्ञानिक भौतिक युग में क्या प्रभाव पड़ सकता है ?

मानवता का संदेश सभी संत, महात्मा, मुनि, ऋषि महर्षियों ने दिया है ।उनकी यह देन आज के मानव प्राणी के लिए अति आवश्यक है।

इस विषय को मैंने सात अध्याय में बाटा है।

प्रथम अध्याय संत किसे कहते हैं ।मैं (1)संत तुलसीदास(2) संत कबीर दास (3)संत मीराबाई (4)संत नरसी मेहता(5) गुरु नानक देव (6)संत ज्ञानेश्वर (7)संत समर्थ रामदास स्वामी(8) संत जनाबाई(9) संत नामदेव (10)संत बहिणाबाई (11)संत झूलेलाल (12)सिंधी समाज के संत (13)संत गोरखनाथ (14)संत कन्होपत्रा(15) संत एकनाथ(16)संत सूरदास (17)संत मुक्ताबाई(18) संत तुकाराम (19)संत रैदास (रविदास)कुल 19 संतों की रचनाएं उनकी जीवनी उनके जीवन किए गए सत्कार्य का वर्णन किया गया है।

अध्याय द्वितीय में महात्मा किसे कहते हैं ?इसकी परिभाषा (व्याख्या) देकर

कुल18 महात्माओं का वर्णन किया है। (1) महात्मा गौतम बुद्ध (2) महात्मा महावीर स्वामी त(3) शंकराचार्य (4) अश्वघोष. नागार्जुन.बसु बंधु ,(5) रामानुजाचार्य(6)माधवाचार्य (7)चैतन्य महाप्रभु (8) श्री वल्लभाचार्य (9) स्वामी रामानंद (10)तिरुवल्लूर (11)कवि कंब(12)संत महात्मा शंकर देव त(13) सायणाचार्य (14) माधवाचार्य(15)पुरंदर दास (16) दयानंद सरस्वती (17)महात्मा गांधी (18)महात्मा ज्योतिबा फुले इन सभी महात्माओं के कार्य क्षेत्र(कार्यशैली) उनकी रचनाओं एवं इन्होनें समाज को दिए योगदान और आज भी उनके ज्ञान विचारों की कितनी आवश्यकता है इसका उल्लेख किया गया है।

तृतीय अध्याय :इसमें ऋषि किसे कहते हैं? इस शीर्षक के अंतर्गत प्रथम सप्त ऋषियों का परिचय साथ ही सातो ऋषियों के महानतम इनकी ग्रंथ रचना उनके किए गए आविष्कार के महत्वता विस्तृत वर्णन किया ।

प्रथम ऋषि कश्यप ,द्वितीय ऋषि अत्री तृतीय ऋषि भारद्वाज ,चतुर्थ ऋषि गौतम ,पंचम ऋषि विश्वामित्र, षष्ठम ऋषि जमदग्नि ,सप्तम ऋषि अयोध्या राजाराम के राजगुरु वशिष्ठ ऋषि वशिष्ठ इनका चित्र सहित जीवन परिचय कार्यों का वर्णन किया गया है ।

अध्याय चतुर्थ :इसमें विश्व के प्रथम पत्रकार नारद मुनि ,मुनि किसे,क्यों कहा जाता है ।साथ ही (दो) अंगिरा मुनि(तीन)पुलस्य मुनि (चार) कर्दम मुनि और(पांच) पंचशिखा ऋषि मुनियों की जानकारी उनके ग्रंथ रचना के साथ दी गई है ।

अध्याय पांचवा : में महर्षियों का पूर्ण परिचय दिया गया है।

(1) महर्षि अगस्त ने समुद्र प्रशान किया (2) महर्षि वेदव्यास जी चारोंय वेदों की रचना की उनके रचना लेखन के लेखक गणेश है (3) महर्षि वाल्मीकि जी ने प्रभु मर्यादा पुरुषोत्तम राम की जीवन गाथा रामायण लिखी उनका नाम वाल्मिक कैसे

पड़ा यह जानकारी दी (4) महर्षि भृगु (5) महर्षि दधीचि (6) महर्षि कणाद (7) महर्षि दीर्घतम और (8) महर्षि पाणिनि के कार्यों का वर्णन किया गया है।

मानवता के लिए किए गए कार्यों का विवरण भी लिखा गया है।

अध्याय षष्ठम:संत, महात्मा ,ऋषि, मुनि ,महर्षियों की परंपरा और मानवता पर आधारित है ,वैसे तो पर अध्याय का विस्तृत इनके उसमें जानकारी लिखी गई है, पर इस अध्याय में मात्र सार.सार आवश्यक की जानकारी दी गई है ।

अध्याय सातवां:संत,महात्मा, ऋषि मुनि ,महर्षि सभी के साहित्य के और आचरण में मानवता के गुण है।आज के युग में उनके प्राचीन और अर्वाचीन ग्रंथों की उपयोगिता कितनी अहम यह इस बात पर प्रकाश डाला गया है।

अंतिम निष्कर्ष निकाला गया है.

कुल सात अध्याय में यह शोधकार्य किया गया है, वैसे तो सभी अध्याय में संदर्भ दिए गए हैं, अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची दी गई है।

– डॉ. लीला मोरे धुलधोये

आभार

मैंने संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि परंपरा एवं मानवता इस विषय पर शोध कार्य किया है, मनपसंद विषय के चुनाव हेतु टेकमा जिला आजमगढ़ के मुख्य अधिपति महोदया का धन्यवाद।

साथ ही जिन माता–पिता ने पिता स्वर्गीय सोहनलाल और माता स्वर्गीय गंगाबाई मोरे पति स्वर्गीय डॉ. हरभजन सिंह धुलधोये जी ने आध्यात्मिक संस्कार दिए, परिश्राम पूर्वक पढ़ा लिखा कर काबिल बनाया, उनका परिश्रम ही मुझे इस कार्य के लिए आज तक प्रेषित करता रहा है, चाहे अब वह इस दुनिया में नहीं है।

उन्हें में आजीवन नहीं भूल सकती। स्वलिखित रचनाओं को किस प्रकार से व्यवस्थित संभाल कर रखना चाहिए इसका ज्ञान देने वाली भी मेरी छोटी सखी पर ज्ञान में बड़ी मेरी ज्ञानगुरु डॉ. मालती को हृदय से धन्यवाद ।

इस विषय पर कार्य करते समय मुझे अनेक ग्रंथो एवं विद्वान साहित्यकारों की पुस्तकों का आधार लेना पड़ा, उनकी सूची मैं संदर्भ ग्रंथ में अलग से दी है ,उन सभी विद्वान महानुभावों का में हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

साथ ही मेरे गुरुवर्थ डा.ॅ शशिकांत सावंतसर, डॉ. अनिल गजभिए सर, डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल सर, डॉ. अर्चना जोशी, डॉ. सरोज अजय, डॉ. विमला जैन, डॉ. मीनाक्षी नागराजन, डॉ. विनायक पांडे जी, डॉ. वसुंधरा पवार, डॉ. सुशीला टाकमोरे, डॉ. शशिकला अवस्थी, डॉ. शशिकिरण बस्तवार, डॉ. शैलजा साबळे, डॉ. नेत्रा रावणकर, अन्य सभी विद्वान जनों का हृदय से आभार मानती हूँ।

सबसे महत्वपूर्ण एवं भूमिका निभाई मेरे पुत्र आशीष हरभजन धूलधोये ने जो लेखन कार्य का साहित्य और किताब मुझे समय–समय पर लाकर देता था, साथ ही मुंबई निवासी पुत्री गायिका श्रीमती अस्मिता गौरव, ओम हर्ष ने समय

समय पर ऑनलाइन किताबें मंगवाकर मेरे कार्य में मदद की, पुत्रवधू ममता धुलधोये और नन्हे मुन्ने मास्टर मोहन(नमित) पोता पोती तृषिका युवान इन सभी का स्नेहाशीष ।

नई दुनिया, पत्रिका, दैनिक भास्कर, इन पेपर अन्य पत्र पत्रिकाओं, नेट, विकिपीडिया, वेबदुनिया का भी सहयोग मुझे मिला अंत में भाई प्रेमानंद सरस्वती जी ने और ग्लोबल कंम्प्यूटर सर्विस के श्री जैन साहब जिन्होंने कम्प्यूटर प्रिंट करके पीडीएफ बनाकर कार्य को पूर्ण किया उन्हें भी बहुत–बहुत धन्यवाद। अतः सभी को कोटि–कोटि प्रणाम धन्यवाद।

सभी, ऋषि, मुनि, संत, महात्मा, महर्षि एवं धर्म ग्रंथो को कोटि–कोटि प्रणाम।

– डॉ. लीला (मोरे) धुलधोये

संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि परम्परा एवं मानवता

अनुक्रमणिका

✻ प्रथम अध्याय ✻

	संत किसे कहते हैं?	1–2
1	संत रामदास स्वामी	3–10
2	संत नरसी मेहता	11–19
3	संत कबीर दास	20–27
4	संत सूरदास	28–39
5	संत तुलसीदास	40–45
6	संत रैदास	46–48
7	संत गोरखनाथ	49–55
8	संत मीराबाई	56–65
9	संत ज्ञानेश्वर	66–71
10	गुरु नानकदेव	72–82
11	संत झूलेलाल	83–88
12	सिंधी समाज के मुख्य संत	89–97
13	संत जनाबाई	98–107
14	संत बाहिणाबाई	108–115
15	संत नामदेव	116–123
16	संत तुकाराम	124–129
17	संत एकनाथ	130–133
18	संत मुक्ता बाई	134–137

✻ द्वितीय अध्याय ✻

महात्मा किसे कहते हैं ?

1 महात्मा गौतम बुद्ध

2 महावीर स्वामी

3 अश्वघोष, नागार्जुन, वसुबंधु,

4 शंकराचार्य

5 रामानुजाचार्य

6 माधवाचार्य

7 चैतन्य महाप्रभु

8 वल्लभाचार्य

9 स्वामी रामानंद

10 तिरुवल्लूर

11 कवि कम्ब

12 शंकर देव

13 सायणाचार्य

14 माधवाचार्य

15 पुरंदर स्वामी

16 दयानंद सरस्वती

17 महात्मा ज्योतिबा फुले

18 महात्मा गांधी

✻ अध्याय तीसरा ✻

भारत के महान ऋषियों का परिचय

1	गुरु वशिष्ठ	1–5
2	ऋषि विश्वामित्र	6–26
3	ऋषि कश्यप	27–34
4	ऋषि अत्रि	35–47
5	ऋषि भारद्वाज	48–56
6	ऋषि गौतम	57–70
7	जम्दग्नि ऋषि	71–76

✻ अध्याय – चतुर्थ ✻

मुनि कैसे रहते हैं?

1 नारद मुनि

2 अंगिरा मुनि

3 ऋषि पुलस्त्य

4 कर्दम ऋषि

5 पंचशिखा मुनि

✻ अध्याय – पंचम ✻

महर्षियों का परिचय

1 महर्षि वेदव्यास

2 महर्षि भृगु

3 महर्षि वाल्मीकि

4 महर्षि दधीच

5 महर्षि अगस्त

6 महर्षि दीर्धतम

7 महर्षि कणाद

8 महर्षि पाणिनि

✻ अध्याय – षष्टम ✻

ऋषि, मुनि, साधु संतों की क्या होती है जीवन शैली? उनकी परंपरा।

ऋषि

मुनि

साधु

संत

✻ अध्याय – सप्तम ✻

संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि सभी में मानवता के गुण इनके साहित्य ग्रंथो की प्रासंगिकता।

प्रथम अध्याय – संत

संत किसे कहते हैं?

संत शब्द संस्कृत के एक शब्द शांत से बिगड़कर और संतुलन से बना है।

संत उस व्यक्ति को कहते हैं जो सत्य का आचरण करता है और आत्मज्ञानी होता है।

जैसे संत तुलसीदास, संत सूरदास, संत कबीरदास, संत रविदास (रैदास), संत तुकाराम, संत एकनाथ, संत नामदेव, ईश्वर के भक्त या धार्मिक पुरुष को भी संत कहते हैं।

बहुत से साधु महात्मा संत नहीं बन सकते क्योंकि घर परिवार को त्याग कर मोक्ष प्राप्ति के लिए चले जाते हैं, इसका अर्थ यह है कि वह अति पर जी रहे हैं जो व्यक्ति संसार और आध्यात्मिक के बीच संतुलन बनाकर लेता है ।

संत के अंदर सहजता, शांत स्वभाव में ही बसती है। संत होना गुण भी है और योग्यता भी ।

जिसने संसार के समस्त नाते तोड़कर तन मन धन से भगवान को समर्पित कर दिया जिसे भगवान के सिवा कुछ भी ना हो संत कहलाता है ।

जैसे : संत नरसी मेहता

संत शब्द 'सत' शब्द के कर्ताकारक का बहुवचन है ।इसका अर्थ है साधु ,सन्यासी ,विरक्त या त्यागी पुरुष या महात्मा।

उदाहरण या जगजीवन को है यहै फल जो छल छाँडि भजे रघुराई। शोधि के संत मंहतन हूँ पद्माकर बात यहै ठहरई । – पद्माकर (शब्द) ईश्वर के भक्त या धार्मिक पुरुष को भी संत कहते हैं जो विवाह करके ग्रहस्थ बन गया हो।

मत्स्यपुराण के अनुसार संत शब्द के निम्न परिभाषा है – ब्रह्मणा श्रुति शब्दाश्र्च देवानां व्यक्तमूर्तय:। सम्पूज्या ब्रह्मणा ह्येनास्तेन सन्त:प्रचक्षते।।

ब्राह्मण ग्रंथ और देरों के शब्द,ये देवताओं के निर्देशिका मूर्ति है। जिनके अंतकरण में इनके और ब्राह्म का सहयोग बना रहता है ,वह संत कहलाते हैं। भारत पूर्णभूमि है यहा आनेको संत, महात्मा, समाज सुधारकों ने मानव समाज के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए मानो उनका जन्म मानव कल्याण हेतु हुआ हो ऐसे अनेकों महान विभूतियां जिनका परिचय निम्नलिखित हैं।

हम देखते हैं वैसे तो भारत देश में 29 राज 8 संघ राज्य है ,सभी की तहसील, ग्राम, जिले में अनेक संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, समाजसुधारक हुए हैं और वर्तमान में भी है।

पर यहां पर हम कुछ ही संतों का समावेश उनके कार्य के महत्वता का वर्णन इस प्रबंध में करेंगे।

जैसे संत तुलसीदास, संत (रैदास) रविदास, संत मीराबाई, संत ज्ञानेश्वर, संत गुरु नानक, संत झूलेलाल, सिंधी समाज के अन्य संत, मराठी संत जनाबाई, संत बहिणाबाई, संत ज्ञानेश्वर, संत तुकाराम, संत एकनाथ, संत नामदेव, संत सूरदास, संत कन्होपत्रा व अन्य से नाथ संप्रदायी।

***

समर्थ रामदास

महाराष्ट्र के संत

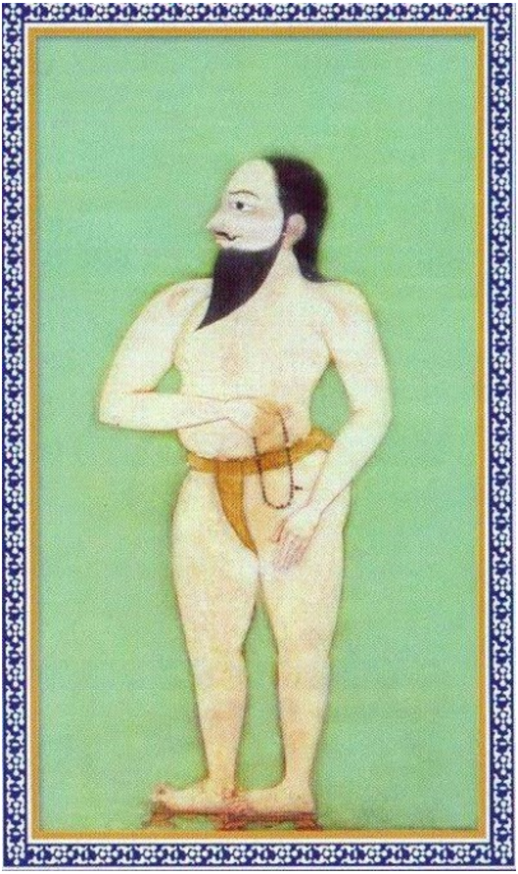

समर्थ रामदास (1606 – 1682) महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध सन्त थे। उन्होने दासबोध नामक एक ग्रन्थ की रचना की जो मराठी में है।

जीवन चरित –

समर्थ रामदास का मूल नाम 'नारायण सूर्याजीपंत कुलकर्णी' (ठोसर) था। इनका जन्म महाराष्ट्र के जालना जिले के जांब नामक स्थान पर रामनवमी के दिन

मध्यान्ह में जमदग्नी गोत्र के देशस्थ ऋग्वेदी ब्राह्मण परिवार में शके 1530 सन 1608 में हुआ। समर्थ रामदास जी के पिता का नाम सूर्याजी पन्त था। वे सूर्यदेव के उपासक थे और प्रतिदिन 'आदित्यहृदय' स्तोत्र का पाठ करते थे। वे गाँव के पटवारी थे लेकिन उनका बहुत सा समय उपासना में ही बीतता था। उनकी माता का नाम राणुबाई था। वे संत एकनाथ जी के परिवार की दूर की रिश्तेदार थी। वे भी सूर्य नारायण की उपासिका थीं। सूर्यदेव की कृपा से सूर्याजी पन्त को दो पुत्र गंगाधर स्वामी और नारायण (समर्थ रामदास) हुए। समर्थ रामदास जी के बड़े भाई का नाम गंगाधर था। उन्हें सब 'श्रेष्ठ' कहते थे। वे अध्यात्मिक सत्पुरुष थे। उन्होंने 'सुगमोपाय ' नामक ग्रन्थ की रचना की है। मामा का नाम भानजी गोसावी था। वे प्रसिद्ध कीर्तनकार थे।

रामदास जी का बालपन

एक दिन माता राणुबाई ने नारायण (यह उनके बचपन का नाम था) से कहा, 'तुम दिनभर शरारत करते हो, कुछ काम किया करो। तुम्हारे बड़े भाई गंगाधर अपने परिवार की कितनी चिंता करते हैं!' यह बात नारायण के मन में घर कर गई। दो–तीन दिन बाद यह बालक अपनी शरारत छोड़कर एक कमरे में ध्यानमग्न बैठ गया। दिनभर में नारायण नहीं दिखा तो माता ने बड़े बेटे से पूछा कि नारायण कहाँ है।

उसने भी कहा, 'मैंने उसे नहीं देखा।' दोनों को चिंता हुई और उन्हें ढूँढने निकले पड़े, उनका कोई पता नहीं चला। शाम के वक्त माता ने कमरे में उन्हें ध्यानस्थ देखा तो उनसे पूछा, 'नारायण, तुम यहाँ क्या कर रहे हो?' तब नारायण ने जवाब दिया, 'मैं पूरे विश्व की चिंता कर रहा हूँ।'

इस घटना के बाद नारायण की दिनचर्या बदल गई। उन्होंने समाज के युवा वर्ग को यह समझाया कि स्वस्थ एवं सुगठित शरीर के द्वारा ही राष्ट्र की उन्नति संभव है। इसलिए उन्होंने व्यायाम एवं कसरत करने की सलाह दी एवं शक्ति के उपासक हनुमानजी की मूर्ति की स्थापना की। समस्त भारत का उन्होंने पद–

भ्रमण किया। जगह–जगह पर हनुमानजी की मूर्ति स्थापित की, जगह–जगह मठ एवं मठाधीश बनाए ताकि पूरे राष्ट्र में नव–चेतना का निर्माण हो।

तपश्चर्या –

12 वर्ष की अवस्था में अपने विवाह के समय शुभमंगल सावधान में सावधान शब्द सुनकर वे विवाहमंडप से निकल गए और टाकली नामक स्थान पर श्रीरामचंद्र की उपासना में संलग्न हो गए। उपासना में 12 वर्ष तक वे लीन रहे। यहीं उनका नाम 'रामदास' पड़ा।

गृहत्याग करने के बाद 12 वर्ष के नारायण नासिक के पास टाकली नाम के गाव को आए। जहाँ नंदिनी और गोदावरी नदियोंका संगम है। इसी भूमि को अपनी तपोभूमि बनाने का निश्चय करके उन्होंने कठोर तप शुरू किया। वे प्रातः ब्राह्ममुहूर्त को उठकर प्रतिदिन 1200 सूर्यनमस्कार लगाते थे। उसके बाद गोदावरी नदी में खड़े होकर राम नाम और गायत्री मंत्र का जाप करते थे। दोपहर में केवल 5 घर की भिक्षा मांग कर वह प्रभु रामचंद्र जी को भोग लगाते थे। उसके बाद प्रसाद का भाग प्राणियों और पंछियों को खिलाने के बाद स्वयं ग्रहण करते थे। दोपहर में वे वेद, वेदांत, उपनिषद्, शास्त्र ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। उसके बाद फिर नामजप करते थे। उन्होंने 13 करोड राम नाम जप 12 वर्षों में किया। ऐसा कठोर तप उन्होंने 12 वर्षों तक किया। इसी समय में उन्होंने स्वयं एक रामायण लिखा।यही पर प्रभु रामचन्द्र की जो प्रार्थनाये उन्होंने रची हैं वह वह 'करुणाष्टक' नाम से प्रसिद्ध है। तप करने के बाद उन्हें आत्म साक्षात्कार हुआ, तब उनकी आयु 24 वर्षों की थी। टाकली में ही समर्थ रामदास जी प्रथम हनुमान का मंदिर स्थापन किया।

तीर्थयात्रा और भारतभ्रमण –

आत्मसाक्षात्कार होने के बाद समर्थ रामदास तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। 12 वर्ष तक वे भारतवर्ष का भ्रमण करते रहे। घुमते घुमते वे हिमालय आये। हिमालय का

पवित्र वातावरण देखने के बाद मूलतः विरक्त स्वभाव के रामदास जी के मन का वैराग्यभाव जागृत हो गया। अब आत्मसाक्षात्कार हो गया, ईश्वर दर्शन हो गया, तो इस देह को धारण करने की क्या जरुरत है ?ऐसा विचार उनके मन में आया। उन्होंने खुद को 1000 फीट से मंदाकिनी नदी में झोंक दिया। लेकिन उसी समय प्रभुराम ने उन्हें ऊपर ही उठ लिया और धर्म कार्य करने की आज्ञा दी। अपने शरीर को धर्म के लिए अर्पित करने का निश्चय उन्होंने कर दिया। तीर्थ यात्रा करते हुए वे श्रीनगर आए। वहाँ उनकी भेंट सिखोंके के गुरु हरगोविंद जी महाराज से हुई। गुरु हरगोविंद जी महाराज ने उन्हें धर्म रक्षा हेतु शस्त्र सज्ञ रहने का मार्गदर्शन किया। इस प्रवस में उन्होंने जनता की जो दुर्दशा देखी उससे उनका हृदय संतप्त हो उठा। उन्होंने मोक्षसाधना के साथ ही अपने जीवन का लक्ष्य स्वराज्य की स्थापना द्वारा आततायी शासकों के अत्याचारों से जनता को मुक्ति दिलाना बनाया। शासन के विरुद्ध जनता को संघटित होने का उपदेश देते हुए वे घूमने लगे। इसी प्रयत्न में उन्हें छत्रपति श्रीशिवाजी महाराज जैसे योग्य शिष्य का लाभ हुआ और स्वराज्य स्थापना के स्वप्न को साकार होते हुए देखने का सौभाग्य उन्हें अपने जीवनकाल में ही प्राप्त हो सका। उन्होंने शके 1603 में 73 वर्ष की अवस्था में महाराष्ट्र में सज्ञनगढ़ नामक स्थान पर समाधि ली।

शिष्यमंडळ

- संपादित करें
- कल्याण स्वामी
- उध्दव स्वामी
- दत्तात्रय स्वामी
- आचार्य गोपालदास
- भीम स्वामी

- दिनकर स्वामी
- केशव स्वामी
- हणमंत स्वामी
- रघुनाथ स्वामी
- रंगनाथ स्वामी
- भोळाराम
- वेणा बाई
- आक्का बाई
- अनंतबुवा मेथवडेकर
- दिवाकर स्वामी
- वासुदेव स्वामी
- गिरिधर स्वामी
- मेरु स्वामी
- अनंत कवी

प्रभु दर्शन –

बचपन में ही उन्हें साक्षात प्रभु रामचंद्रजी के दर्शन हुए थे। इसलिए वे अपने आपको रामदास कहलाते थे। रामदास स्वामी ने बहुत से ग्रंथ लिखे। इसमें 'दासबोध' प्रमुख है। इसी प्रकार उन्होंने हमारे मन को भी संस्कारित किया 'मनाचे श्लोक' द्वारा। उन्होंने आत्माराम, मान पंचक, पंचीकरण, चतुर्थमान, बारा प्रकरण, स्फुट आभार इत्यादि समर्थ जी की अन्य रचनाएं है। यहाँ सभी रचनाएँ मराठी के ओवी नामनु छंद में है।

अंतिम समय –

अपने जीवन का अंतिम समय उन्होंने सातारा के पास परळी के किले पर व्यतीत किया। इस किले का नाम सज्ज्ञनगढ़ पड़ा। तमिलनाडु प्रान्त के तंजावर ग्राम में रहने वाले 'अरणिकर ' नाम के अंध कारीगर ने प्रभु श्री रामचंद्र जी, माता सीता जी, लक्ष्मण जी कि मूर्ति बनाकर सज्ज्ञनगढ़ को भेज दी। इसी मूर्ति के सामने समर्थजी ने अंतिम पांच दिन निर्जल उपवास किया। और पूर्वसूचना देकर माघ वद्य नवमी शालिवाहन शक 1603 सन 1682 को रामनाम जाप करते हुए पद्मासन में बैठकर ब्रह्मलीन हो गए। वहीं उनकी समाधि स्थित है। यह समाधी दिवस 'दासनवमी' के नाम से जाना जाता हैं। यहाँ पर दास नवमी पर 2 से 3 लाख भक्त दर्शन के लिए आते हैं।

प्रतिवर्ष समर्थ रामदास स्वामी के भक्त भारत के विभिन्न प्रांतों में 2 माह का दौरा निकालते हैं और दौरे में मिली भिक्षा से सज्ज्ञनगढ़ की व्यवस्था चलती है।

व्यक्तित्व –

समर्थ जी का व्यक्तित्व भक्ति ज्ञान वैराग्य से ओतप्रोत था। मुखमण्डलपर दाढ़ी तथा मस्तकपर जटाएं, भालप्रदेश पर चन्दन का टिका रहता था। उनके कंधेपर भिक्षा के लिए झोली रहती थी। एक हाथ में जपमाला और कमण्डलु तथा दूसरे हाथ में योगदण्ड (कुबड़ी) होती थी। पैरोंमें लकड़ी कि पादुकाए धारण करते थे। योगशास्त्र के अनुसार उनकी भूचरी मुद्रा थी। मुखमें सदैव रामनाम का जाप चलता था और बहुत कम बोलते थे। वे संगीत के उत्तम जानकार थे। उन्होनें अनेको रागोमें गायी जानेवाली रचनाएं कि हैं। स्वामी प्रतिदिन 1200 सूर्यनमस्कार लगाते थे इस कारण शरीर अत्यंत बलवान था। जीवन के अंतिम कुछ वर्ष छोड़कर पूरे जीवम में वे कभी एक जगह पर नहीं रुके। उनका वास्तव्य दुर्गम गुफाएं, पर्वत शिखर, नदी के किनारें तथा घने अरण्यमें रहता था। ऐसा समकालीन ग्रंथमें उल्लेख है।

ग्रन्थरचना –

समर्थ रामदास जी ने दासबोध, आत्माराम, मानाचे श्लोक (मनोबोध) आदि ग्रंथों की रचना है। समर्थ जी का प्रमुख ग्रन्थ ’दासबोध ’ गुरुशिष्य संवाद रूप में है। यह ग्रंथराज उन्होनें अपने परमशिष्य योगिराज कल्याण स्वामी के हाथोंसे महाराष्ट्र के ’शिवथर घल (गुफा)’ नामक रम्य एवं दुर्गम गुफा में लिखवाया। इसके साथ उनके द्वारा रची गयी 90 से अधिक आरतियाँ महारष्ट्र के घर घर में गायी जातीं हैं। आपने सैंकड़ो ’अभंग’ भी लिखें हैं। समर्थजी स्वयं अद्वैत वेदांति एवं भक्तिमार्गी संत थे किन्तु उन्होंने तत्कालीन समाज कि अवस्था देखकर ग्रंथोंमें राजनीती, प्रपंच, व्यवस्थापन शास्त्र, इत्यादि अनेको विषयोंका मार्गदर्शन किया है। समर्थ जी ने सरल प्रवाही शब्दोमें देवी देवताओंके 100 से अधिक के स्तोत्र लिखें हैं। इन स्तोत्र एवं आरतियोंमें भक्ति, प्रेम एवं वीररस का आविष्करण है।। आत्माराम, मानपंचक, पंचीकरण, चतुर्थमान, बाग़ प्रकरण, स्फूट अभंग इत्यादि समर्थ जी कि अन्य रचनाएं हैं। यह सभी रचनाएं मराठी भाषा के ’ओवी ’नामक छंद में हैं।

मानव सेवा –

समर्थ रामदास जी ने अपने शिष्योंके द्वारा समाज में एक चैतन्यदायी संगठन खड़ा किया। उन्होनें सातारा जिले में ’चाफळ’ नाम के एक गाँव में भव्य श्रीराम मंदिर का निर्माण किया। यह मंदिर निर्माण केवल भिक्षा के आधार पर किया। कश्मीर से कन्याकुमारी तक उन्होंने 1100 मठ तथा अखाड़े स्थापित कर स्वराज्यस्थापना के लिए जनता को तैयार करने का प्रयत्न किया। शक्ति एवं भक्ति के आदर्श श्री हनुमान जी कि मूर्तियां उन्होनें गाँव गाँव में स्थापित कि। आपने अपने सभी शिष्योंको विभिन्न प्रांतोंमें भेजकर भक्तिमार्ग तथा कर्मयोग कि सिख जनजन में प्रचारित करने कि आज्ञा की। युवाओंको बलसम्पन्न करने हेतु आपने सूर्यनमस्कार का प्रचार किया। समर्थजीनें 350 वर्ष पहले संत वेणा स्वामी जैसी विधवा महिला को मठपति का दायित्व देकर कीर्तन का अधिकार

दिया। समर्थ रामदास जी के भक्तों एवं अनुयायियोंको ’ रामदासी’ कहते हैं। समर्थजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय को ’समर्थ सम्प्रदाय ’ अथवा ’रामदासी सम्प्रदाय कहते हैं। ’जय जय रघुवीर समर्थ ’ यह सम्प्रदाय का जयघोष है तथा ’श्रीराम जय राम जय जय राम ’ जपमन्त्र है। समर्थ जी कि विचारधारा तथा कार्य का प्रभाव लोकमान्य तिलक, स्वातंत्र्यवीर सावरकर, डॉ केशव बलिराम हेडगेवार आदि महान नेताओं पर था।

बाहरी कड़ियाँ –

- दासबोध
- दासबोध, आत्माराम, मनोबोध व अन्य समर्थ वाङ्मय अनेक भाषाओंमे यहां उपलब्ध है।
- छत्रपति शिवजी के गुरु थे समर्थ स्वामी रामदास
- दासबोध.कॉम (फ्री डाउनलोड)
- कल्याण स्वामी के बारे में वेबसाईट
- समर्थ रामदास के बारे में वेबसाईट
- समर्थ वाग्देवता मंदिर, धुळे
- श्रीधर स्वामी के बारे में वेबसाईट
- Speech given by Dr. Shivajirao Bhosale on Samartha Ramdas in Marathi
- Letter of Ramdas Swami to Shivaji Maharaj

***

नरसी मेहता

गुजरात के संतकवि

नरसी मेहता (15वीं शती ई.) गुजराती भक्ति साहित्य की श्रेष्ठतम विभूति थे। उनके कृतित्व और व्यक्तित्व की महत्ता के अनुरूप साहित्य के इतिहासग्रंथों में नरसिंह–मीरा–युग नाम से एक स्वतंत्र काव्यकाल का निर्धारण किया गया है जिसकी मुख्य विशेषता भावप्रवण कृष्णभक्ति से अनुप्रेरित पदों का निर्माण है। पदप्रणेता के रूप में गुजराती साहित्य में नरसी का लगभग वही स्थान है जो हिंदी

में सूरदास का। ''वैष्णव जन तो तैणे कहिए जे पीड पराई जाणे रे'' पंक्ति से आरंभ होनेवाला सुविख्यात पद नरसी मेहता का ही है। नरसी ने इसमें वैष्णव धर्म के सारतत्वों का संकलन करके अपनी अंतर्दृष्टि एवं सहज मानवीयता का परिचय दिया है। नरसी की इस उदार वैष्णव भक्ति का प्रभाव गुजरात में आज तक लक्षित होता है।

पुष्टिमार्ग में नरसी को 'वेधेयो' माना जाता है पर नरसी किसी संप्रदाय से संबद्ध प्रतीत नहीं होते। उनकी भक्ति भागवताश्रित थी। अन्यान्य लीलाओं की अपेक्षा कृष्ण की रासलीला नरसी का विशेष प्रिय थी और भावात्मक तादात्म्य की स्थित में उन्होंने अपने को दीवटियो या दीपवाहक बनकर रास में भाग लेते हुए वर्णित किया है। वे गुजरात के सर्वाधिक लोकप्रि वैष्णव कवि हैं तथा लोककल्पना में उनके जीवन से संबद्ध किंवदंतियों एवं चमत्कारिक घटनाओं के प्रति सहज विश्वासभावना मिलती है।

जीवनवृत्त –

ऐतिहासिक दृष्टि से नरसी मेहता के जीवनकाल का निश्चय एक समस्या रही है। उनकी 'हारमाला' नामक कृति में दी गई तिथि सं. 1512 तथा वर्णित घटना से सिद्ध मांडलिक (सं. 1414 से 1480) की समकालीनता के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने उन्हें 15वीं शती ई. में रखा और बहुत काल तक 'वृद्धमान्य' समय (1414–81 ई.) निर्विवाद स्वीकृत किया जाता रहा परंतु; क.मा. मुंशी ने अनेक तर्क वितर्कों द्वारा उसे अतिशय विवादास्पद बना दिया। उनके अनुसार चैतन्य के प्रभाव के कारण नरसी मेहता का समय 1500–1580 ई. से पूर्व नहीं माना जा सकता। यद्यपि गुजराती के अनेकानेक मान्य विद्वानों ने इस विवाद में भाग लिया है तथापि वह अब भी प्राय: अनिर्णीत ही है। उनकी रचनाओं में जयदेव, नामदेव, रामानंद और मीरा का उल्लेख मिलता है।

नरसी मेहता का जन्म भावनगर के समीपवर्ती 'तलाजा' नामक ग्राम में हुआ था और उनके पिता कृष्णदामोदर वडनगर के नागर थे। उनका अवसान हो जाने पर

बाल्यकाल से ही नरसी को कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ा। एक कथा के अनुसार वे आठ वर्ष तक गूंगे रहे और किसी कृष्णभक्त साधु की कृपा से उन्हें वाणी का वरदान प्राप्त हुआ। साधु संग उनका व्यसन था। उद्यमहीनता के कारण उन्हें भाभी की कटूक्तियाँ सहनी पड़तीं और अंतत: गृहत्याग भी करना पड़ा। विवाहोपरांत पत्नी माणिकबाई से कुँवर बाई तथा शामलदास नामक दो संतानें हुई। कृष्णभक्त होने से पूर्व उनके शैव होने के प्रमाण मिलते हैं। कहा जाता है, 'गोपीनाथ' महादेव की कृपा से ही उन्हें कृष्णलीला का दर्शन हुआ जिसने उने जीवन को सर्वथा नई दिशा में मोड़ दिया। गृहस्थ जीवन में चमत्कारिक रूप से अपने आराध्य की ओर से सहायता प्राप्त होने के अनेक वर्णन उनकी आत्मचरितपरक कई रचनाओं में उपलब्ध होते हैं।

इसी तरह भगवान ने कई बार नरसीला की मदत की। इनमें 'हुंडी', 'झारी', 'मामेरु' और 'हार' का प्रसंग सर्वप्रमुख है। 'ढेढ' प्रसंग भी नरसी की जीवनी में यथेष्ट महत्व रखता है क्योंकि उसके फलस्वरूप उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया। वे स्त्री और शूद्र को भक्ति का अधिकारी समझते थे जिसके कारण समस्त नागर जाति उनसे क्षुब्ध हो गई थी। नरसी ने अपनी अंतर्वृत्ति का बाह्य प्रभावों से कुंठित नहीं होने दिया। यह उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है।

आप घर के काम काज में बिलकुल भी ध्यान नहीं देते थे। सारा समय कृष्ण भक्ति में ही लगे रहते। आप के भाई ने आप की शादी मानेकबाई से कार दी ताकि आप घर की जिम्मेदारी सँभालने लगेंगे, लेकिन शादी से भी नरसिंह को कोई फरक नहीं पडा।

नरसिंह मेहता की भाभी आप को बहुत भला बुरा कहती थी। एक दिन भाभी की बातों से तंग आकर आप जंगल चले गए और बिना खाए पिये 7 दिन तक शिवजी के मंदिर में आराधना की। भगवान शिव एक साधु के रूप में प्रगट हुए। नरसिंह जी के अनुरोध पर भगवान शिव आप को वृन्दावन में रास लीला दिखाने को ले गए। आप रास लीला देखते हुए इतने खो गए की मशाल से अपना हाथ जला

बेठे। भगवान कृष्ण ने अपने स्पर्श से हाथ पहले जैसा कर दिया और नरसिंह जी को आशीर्वाद दिया। घर आकर आप ने भाभी का धन्यवाद किया।

एक समय नरसिंह और उनके भाई तीर्थ यात्रा पर जाते समय एक जंगल में से गुजर रहे थे। दोनों बहुत थक चुके थे और भूख भी बहुत लगी थी। कुछ दुरी पर एक गाँव दिखाई दिया। उस गाँव के कुछ लोग इन दोनों के पास आये और कहा की अगर आप कहें तो हम आप के लिये खाना ले आते हैं, पर लेकिन हम शुद्र (नीच) जाती के हैं। नरसिंह जी ने उन्हें कहा की सभी परमेश्वर की संतान हैं आप तो हरि के जन हैं मुझे आप का दिया भोजन खाने में कोई आपत्ति नहीं। नरसिंह ने खुशी से भोजन खाया लेकिन उनके भाई ने भोजन खाने से इनकार कर दिया। चलने से पहले नरसिंह जब गाँव वालों का धन्यवाद करने के लिये उठे तो उन्हें कहीं भी गाँव नजर नहीं आया।

आचार्य श्री गरीब दास महाराज जी ने भक्त माल में नरसिंह मेहता जी के साथ हुए दो घटनाओं का वर्णन किया है।

सांवल शाह की घटना

आये हैं साधु नरसीला के पास। हुंडी करो नै नरसीला जो दास ।। 55 ।।
पांच सौ रूपये जो दीन्हें जो रोक। करो बेग हुंडी द्वारा नाथ पोष ।। 56 ।।
सड़ सड़ लिखी बेग कागज मंगाय। टीके दिया शाह सांवल चढाय ।। 57 ।।
द्वारा नगर बीच पौहंचे हैं संत। पाया न सांवल लिया है जु अंत ।। 58 ।।
द्वारा नगर के जु बोले बकाल। नहीं शाह सांवल नरसीला घर घाल ।। 59 ।।
करी है जु करुणा अबरना आनंद। भये शाह सांवल जो साहिब गोविन्द ।। 60 ।।
चिलकी करारे हजारे हजार। दिने दुचंद जो सांवल मुरार ।। 61 ।।
दोहरी कलम टांक बहियां बिनोद। भये शाह सांवल नरसीला प्रमोध ।। 62 ।।
चौरे गिने बेग पल्ला बिछाय। देखैं द्वारा नगर के सकल शाह ।। 63 ।।
खरचे खाये संतौं किन्हें मुकाम। द्वारा नगर बीच दीन्हें जु दाम ।। 64 ।।

सांवल शाह संतौं से किन्हा बसेख। नरसीला से बन्दगी हुंडी ध्यों अनेक ।।65 ।।
पहली नरसीला नै दीन्हा भंडार। पीछे सांवल शाह पौहंचे पुकार ।। 66 ।।

एक बार द्वारका को जाने वाले कुछ साधु नरसिंह जी के पास आये और उन्हें पांच सौ रूपये देते हुए कहा की आप काफी प्रसिद्ध व्यक्ति हो आप अपने नाम की पांच सौ रुपयों की हुंडी लिख कर दे दो हम द्वारका में जा कर हुंडी ले लेंगे। पहले तो नरसिंह जी ने मना करते हुए कहा की मैं तो गरीब आदमी हूँ, मेरे पहचान का कोई सेठ नहीं जो तुम्हे द्वारका में हुंडी दे देगा, पर जब साधु नहीं माने तो उन्हों ने कागज ला कर पांच सौ रूपये की हुंडी द्वारका में देने के लिये लिख दी और देने वाले (टिका) का नाम सांवल शाह लिख दिया।
(हुंडी एक तरह के आज के डिमांड ड्राफ्ट के जैसी होती थी। इससे रास्ते में धन के चोरी होने का खतरा कम हो जाता था। जिस स्थान के लिये हुंडी लिखी होती थी, उस स्थान पर जिस के नाम की हुंडी हो वह हुंडी लेन वाले को रोख दे देता था।)

द्वारका नगरी में पहुँचने पर संतों ने सब जगह पता किया लेकिन कहीं भी सांवल शाह नहीं मिले। सब कहने लगे की अब यह हुंडी तुम नरसीला से हि लेना।

उधर नरसिंह जी ने उन पांच सौ रुपयों का सामान लाकर भंडारा देना शुरू कर दिया। जब सारा भंडारा हो गाया तो अंत में एक वृद्ध संत भोजन के लिये आए। नरसिंह जी की पत्नी ने जो सारे बर्तन खाली किये और जो आटा बचा था उस की चार रोटियां बनाकर उस वृद्ध संत को खिलाई। जैसे ही उस संत ने रोटी खाई वैसे ही उधर द्वारका में भगवान ने सांवल शाह के रूप में प्रगट हो कर संतों को हुंडी दे दी।

आचार्य जी अन्नदेव की छोटी आरती में भी इस बात का प्रमाण देते हैं। जैसे

रोटी चार भारजा घाली, नरसीला की हुंडी झाली।

(भारजा – पत्नी, घाली– डाली, देना, झाली– हो गई)

सांवल शाह एक सेठ का भेष बनाकर संतों के सामने आए। और भरे चौक में संतों को हुंडी के रूपये दिये। द्वारका के सभी सेठ देखते ही रह गये।

नरसीला जी की ध्योती की शादी की घटना

बेटी नरसीला की भेली चढ़ाय। चालो पिता तेरी ध्योती का व्याह ।। 67 ।।

मैं निर्धन भिखारी नहीं मेरे दाम। आऊंगा बेटी मैं सुमरुन्गा राम ।। 68 ।।

नरसीला खाली गये पल्ला झार। आगे खरी एक समधनि उजार ।। 69 ।।

भातई आये हैं जो धी के पिता। करुवे के घाल्या जु हम कूं बता ।। 70 ।।

समधनि कहै सखियों मैं सुनाय। दो भाटे घाले हैं करुवे पिताय ।। 71 ।।

नरसीला सुनि कर जो हुये आधीन। लज्जा राखो मेरे साहिब प्रबीन ।। 72 ।।

आये विश्वम्भर जो गाडे लदाय। ल्याये माल मुक्ता जो कीन्ही सहाय ।। 73 ।।

सुहे जरीबाब मसरू अपार। गहना सुनहरी और मोती हजार ।। 74 ।।

हीरे हरी भांति लाली सुरंग। चाहै सु देवै छुटी धार गंग ।। 75 ।।

नगदी और जिनसी खजानें मौहर। उतरैं जरीबाब झीनी दौहर ।। 76 ।।

चुन्नरी चिदानन्द ल्याये अनूप। झालर किनारी जरीदार सरूप ।। 77 ।।

समधनि सुलखनी खरी है जु पास। भरे भात नरसी जो हीर्यों निवास ।। 78 ।।

घोरे तुरंगम दिये हैं जो दान। अरथ बहल पालकी किये हैं कुर्बान ।। 79 ।।

कलंगी रु झब्बे सुनहरी हमेल। हीरे जड़ाऊँ मोती रंगरेल ।। 80 ।।

नरसी अरसी है समुद्र में सिर। गैबी खजाने अमाने जो चीर ।। 81 ।।

भाठे परे दोय धूं धूं धमाक। देखें दुनी चिश्म खौलै जो आंख ।। 82 ।।

चांदी सोने के हैं भाटे जु दोय। समधनि लिया मुख उलटाई गोय ।। 83 ।।

भेली – गुड की डली (शगुन के तोर पर दी जाती थी। जैसे आज कल कार्ड के साथ मिठाई का डिब्बा देते है।)

समधनि – कुडमनी (बेटी/बेटे की साँस)

भातई – मामा

भात – नानकशक (लड़की या लड़के के विवाह में नाना / मामा की तरफ से दि जाने वाली सामग्री)

करुवे – कन्यादान

भाटे – मिट्टी के ठेले या बर्तन,

एक समय नरसिंह की ध्योती की शादी थी। नरसिंह की लड़की उन्हें शगुन के तोर पर गुड देते हुए बोली की पिता जी आप ने शादी में जरुर आना है। नरसिंह बहुत गरीब थे उन्होंने कहा की बेटी मेरे पास तो शादी में देने के लिये कुछ भी नहीं है। मैं आ जाऊंगा लेकिन भगवान का नाम ही लूँगा। जब नरसिंह जी ध्योती की शादी में पहुंचे तो किसी स्त्री ने उन की समधनि ने पूछा की लड़की के मामा और नाना ब्याह में आये है, उन्होंने कन्यादान में क्या दिया है। आगे से समधनि ने मजाक में कह दिया की दो भाटे दिये हैं।

यह सुन कर नरसिंह शर्मिंदा हो गये और भगवान को याद कर उन्हें उसकी इज्ज़त बचाने को कहने लगे। तभी भगवान बैल गाडी लाद कर सामान लाए। भगवान लड़की के लिये लाल चुनरी, विवाह की सारी जरी (कपड़े), गहना, मोती, हीरे, घोड़े, पालकी तथा अनेक तरह के उपहार लेकर आए। नरसिंह जी ने खुशी खुशी भात (नानकशक) दिया। तभी दोनों भाटे धूं धूं कर टूट गये और सभी देख कर हैरान रह गये की दोनों भाटे सोने और चांदी से भरे थे। और इस तरह भगवान ने अपार सामग्री देकर अपने प्रिय भगत नरसिंह की लाज रख ली।

रचनाएँ –

विषय और वस्तु की दृष्टि से नरसी की समस्त रचनाएँ मुख्यत: दो वर्गों में रखी जा सकती हैं। प्रथम वर्ग में सामलदासनो विवाह तथा हारमाला की गणना की जाएगी। इनमें कवि ने अपने जीवन की किसी अलौकिक घटना का वर्णन किया है। दूसरे वर्ग में निम्नलिखित नौ रचनाएँ आती हैं जिनकी सृष्टि पूर्णतया कृष्णचरित को आलंबन मानकर की गई है–

1. सुरत संग्राम
2. गोविंदगमन
3. चातुरीछब्बीसी
4. चातुरी षोडशी
5. दाणलीला
6. सुदामाचरित
7. राससहस्त्रपदी
8. श्रृंगारमाला
9. बाललीला

इनके अतिरिक्त कुछ प्रकीर्णक पद हींडोलाना पदो, भक्तिज्ञानानां पदो कृष्णजन्मसमेनां पदो, कृष्णजन्मबधाईनां पदो तथा वसंतनां पदो नाम से संगृहीत मिलते हैं। इनसे ज्ञात होता है कि श्रृंगारिक प्रकृतिवर्णन, वात्सल्य भाव तथा ज्ञानप्रधान भक्ति की ओ नरसी की विशेष प्रवृत्ति थी। पूर्वोक्त सभी रचनाएँ नरसिंह मेहता कृत काव्यसंग्रह नाम से एक साथ प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त इनका प्रकाशन बृहत् काव्यदोहन प्राचीन काव्य त्रैमासिक तथा प्राचीन काव्य सुधा आदि में भी हुआ है। मुंशी द्वारा उल्लिखित नागदमन और मानलीला शीर्षक रचनाएँ स्वतंत्र कृतियाँ न होकर विषय विशेष के पदसंग्रह मात्र हैं। के.का.

शास्त्री ने हस्तलिखित ग्रंथों की शोध के आधार पर और भी अनेक कृतियों का नामोल्लेख किया है जिनमें अधिकांश पदसंग्रह मात्र हैं। सूरत संग्राम और गोविंदगमन नाम के रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध मानी जाती है।

चन्द्रकान्त मेहता, संपा (2016). वैष्णवजन नरसिंह मेहता (नरसिंह मेहता की गुजराती कविता का हिन्दी अनुआद). गांधीनगर: गुजरात साहित्य अकादमी.

बाहरी कड़ियाँ –

- नरसिंह मेहता के बारे में पढिये 2016-03-12 वेबैक मशीन
- नरसिंह मेहता की गुजराती प्रसिद्ध कविता
- नरसिंह मेहता के भजन 2009-02-08 वेबैक मशीन
- संत श्री नरसी मेहता 2011-10-01 वेबैक मशीन
- नरसी मेहता के अनुवाद (सचिन केटकर द्वारा)
- नरसी मेहता पर ब्लॉग
- नागर सेतु 2019-03-22 वेबैक मशीन

***

संत कबीर दास

संत–कवि कबीर दास का जन्म 15वीं शताब्दी के मध्य में काशी (वाराणसी, उत्तर प्रदेश) में हुआ था। कबीर के जीवन के विवरण कुछ अनिश्चित हैं। उनके जीवन के बारे में अलग–अलग विचार, विपरीत तथ्य और कई कथाएँ हैं। यहाँ तक कि उनके जीवन पर बात करने वाले स्रोत भी अपर्याप्त हैं। शुरुआती स्रोतों में 'बीजक' और 'आदि ग्रंथ' शामिल हैं। इसके अलावा, भक्त मल द्वारा रचित

'नाभाजी', मोहसिन फ़ानी द्वारा रचित 'दबिस्तान–ए–तवारीख', और 'खज़ीनत उल–असफ़िया' हैं।

ऐसा कहा जाता है कि कबीर की माँ ने उनके जन्म के समय बड़े चमत्कारिक ढंग से गर्भ धारण किया था। उनकी माँ एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण विधवा थीं, जो अपने पिता के साथ एक प्रसिद्ध तपस्वी के निवास पर तीर्थ यात्रा करने गई थीं। उनकी निष्ठा से प्रभावित होकर, तपस्वी ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उनसे कहा कि वे जल्द ही एक बेटे को जन्म देंगी। बेटे का जन्म होने के बाद, बदनामी से बचने के लिए (क्योंकि उनकी शादी नहीं हुई थी), कबीर की माँ ने उनका परित्याग कर दिया। छोटे से कबीर को एक मुसलमान बुनकर की पत्नी, नीमा, ने गोद ले लिया। कथाओं के एक अन्य संस्करण में, तपस्वी ने उनकी माँ को आश्वासन दिया था कि जन्म असामान्य तरीके से होगा और इसलिए, कबीर का जन्म अपनी माँ की हथेली से हुआ था! इस कहानी में भी, उन्हें बाद में उसी नीमा द्वारा गोद ले लिया गया था।

जब लोग बच्चे के बारे में नीमा पर संदेह और प्रश्न करने लगे, तब चमत्कारी ढंग से जन्में नवजात शिशु ने अपनी दृढ़ आवाज़ में कहा, मैं एक महिला से पैदा नहीं हुआ था बल्कि एक लड़के के रूप में प्रकट हुआ हूँ ... मुझमें ना तो हड्डियाँ हैं, ना खून, ना त्वचा है। मैं तो मानव जाति के लिए शब्द प्रकट करता हूँ। मैं सर्वश्रेठ प्राणी हूँ ...

कबीर की और बाईबल की कहानियों में समानताएँ देखी जा सकती हैं। इन दंतकथाओं की सत्यता पर प्रश्न उठाना निरर्थक होगा। हमें तो फिर दंतकथाओं की अवधारणा पर ही विचार करना पड़ेगा। कल्पनाएँ और मिथक सामान्य जीवन की विशेषता नहीं हैं। साधारण मनुष्य का जीवन तो भुला दिया जाता है। आलंकारिक दंतकथाएँ और अलौकिक कृत्य असाधारण जीवन से जुड़े होते हैं। भले ही कबीर का जन्म सामान्य रूप से ना हुआ हो, लेकिन इन दंतकथाओ से पता चलता है कि वे एक असाधारण और महत्वपूर्ण व्यक्ति थे।

उनके समय के मानकों के अनुसार, 'कबीर' एक असामान्य नाम था। ऐसा कहा जाता है कि उनका नाम एक काज़ी ने रखा था जिन्होंने उनके लिए एक नाम खोजने के लिए कई बार क़ुरान खोली और हर बार 'कबीर' अर्थात 'महान' शब्द पर उनकी खोज समाप्त हुई, जो ईश्वर, स्वयं अल्लाह के अलावा और किसी के लिए उपयोग नहीं किया जाता है।

कबीरा तू ही कबीरू तू तोरे नाम कबीर
राम रतन तब पाइये जद पहिले तजहि सरीर
आप महान हैं, आप वही हैं, आपका नाम कबीर है,
रत्न स्वरूप राम तभी प्राप्त होते हैं जब शारीरिक मोह त्याग दिया जाता है।

अपनी कविताओं में कबीर ने खुद को जुलाहा और कोरी कहा है। दोनों शब्दों का अर्थ 'बुनकर' है, जो एक निचली जाति थी। उन्होंने खुद को पूरी तरह से हिंदुओं या मुसलमानों के साथ नहीं जोड़ा।

जोगी गोरख गोरख करै, हिंद राम न उखराई

मुसलमान कहे इक खुदाई, कबीरा को स्वामी घट घट रहियो समाई।

(जोगी गोरख गोरख कहते हैं, हिंदू राम का नाम जपते हैं, मुसलमान कहते हैं कि एक अल्लाह ही है, लेकिन कबीर का भगवान हर जगह व्याप्त है।)

कबीर जी ने कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। उन्हें एक बुनकर के रूप में प्रशिक्षित भी नहीं किया गया था। उनकी कविताएँ बुनाई से जुड़े रूपकों से भरी हुई हैं, परंतु उनका मन पूरी तरह से इस पेशे में नहीं लगता था। उनका जीवन सत्य की खोज की आध्यात्मिक यात्रा थी, जो उनकी कविताों में स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

ताना बुनना सबहु तज्यो है कबीर,
हरि का नाम लिखी लियो सरीर

(कबीर ने कताई और बुनाई, सभी को त्याग दिया है, हरि का नाम अपने संपूर्ण

शरीर पर लिख लिया है।)

अपनी आध्यात्मिक खोज को पूर्ण करने हेतु, वे वाराणसी में प्रसिद्ध संत रामानंद के शिष्य बनना चाहते थे। कबीर ने महसूस किया कि अगर वे किसी तरह से अपने गुरु के गुप्त मंत्र को जान लेंगे, तो उनकी दीक्षा हो सकेगी। संत रामानंद वाराणसी में नियमित रूप से एक निश्चित घाट पर जाते थे। एक दिन जब कबीर ने उन्हें घाट के पास आते देखा, तो वे घाट की सीढ़ियों पर लेट गए और रामानंदजी का पैर उनपर पड़ा, और उनके मूँह से अनायास ही 'राम' शब्द निकल पड़ा। कबीर को मंत्र मिल गया और उन्हें बाद में संत द्वारा एक शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया। 'ख़जीनत अल–असफ़िया' से हमें पता चलता है कि एक सूफ़ी पीर, शेख तक्की, भी कबीर के शिक्षक थे। कबीर के शिक्षण और तत्वज्ञान में सूफ़ी प्रभाव भी काफी स्पष्ट है।

वाराणसी में कबीर चौरा नाम का एक इलाका है, और ऐसा माना जाता है कि वे वहीं बड़े हुए थे।

कबीर ने बाद में लोई नामक एक महिला से शादी की और उनके दो बच्चे हुए, एक बेटा, कमल और एक बेटी कमली थी। कुछ स्रोतों से यह सुझाव भी मिलता है कि उन्होंने दो बार शादी की थी या उन्होंने शादी ही नहीं की थी। जबकि हमारे पास उनके जीवन के बारे में इन तथ्यों को स्थापित करने के साधन नहीं है, हम उनकी कविताओं के माध्यम से उनके द्वारा प्रचारित दर्शन में अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

कबीर का आध्यात्मिकता से गहरा संबंध था। मोहसिन फ़ानी की 'दबिस्तान' और अबुल फ़ज़ल की 'आइन–ए–अकबरी' में, उन्हे 'मुहाविद' बताया गया है, यानी एक ईश्वर में विश्वास रखने वाला। प्रभाकर माचवे की पुस्तक 'कबीर' की प्रस्तावना में प्रो. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बताया है कि कबीर राम के भक्त थे, लेकिन विष्णु के अवतार के रूप में नहीं। उनके लिए, राम किसी भी व्यक्तिगत रूप या गुण से परे हैं। कबीर का अंतिम लक्ष्य एक परम ईश्वर को प्राप्त करना था

जो बिना किसी गुण के निराकार है, जो समय और स्थान से परे है, और जो कारण–कार्य–संबंध से भी परे है। कबीर का ईश्वर ज्ञान है, आनंद है। उनके लिए ईश्वर शब्द है।

जाके मुँह माथा नहिं
नहिं रूपक रप
फूप वास ते पतला
ऐसा तात अनूप।

(जो चेहरे या माथे या प्रतीकात्मक रूप के बिना है,

फूल की सुगंध की तुलना में सूक्ष्म है, ऐसा अनोखा उसका सार है।)

ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर उपनिषद–संबंधी अद्वैतवाद और इस्लामी एकत्ववाद से गहराई से प्रभावित थे । उन्हें वैष्णव भक्ति परंपरा द्वारा भी प्रेरणा मिली थी, जिसमें भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण पर ज़ोर दिया जाता है।

उन्होंने जाति के आधार पर भेद स्वीकार नहीं किया। एक कहानी यह है कि एक दिन जब कुछ ब्राह्मण लोग अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए गंगा के पवित्र जल में डुबकी लगा रहे थे, तब कबीर ने अपने लकड़ी के पात्र को नदी के पानी से भरा और उन लोगों को पीने के लिए दिया। वे लोग निचली जाति के व्यक्ति द्वारा पानी दिए जाने पर बहुत नाराज़ हुए, जिसके उत्तर में कबीर ने कहा, अगर गंगा जल मेरे पात्र को शुद्ध नहीं कर सकता है, तो मैं कैसे विश्वास कर सकता हूँ कि यह मेरे पापों को धो सकता है।

केवल जाति ही नहीं, कबीर ने मूर्ति पूजा के विरुद्ध भी बात की है और हिंदू तथा मुसलमानों, दोनों, के उन संस्कारों, रीति–रिवाजों और प्रथाओ की आलोचना की जो उनकी दृष्टि मे व्यर्थ थे। उन्होंने उपदेश दिया कि संपूर्ण श्रद्धा से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

लोग ऐसे बावरे, पाहन पूजन जाई
घर की चाकिया काहे न पूजे जेही का पीसा खाई
(लोग ऐसे मूर्ख हैं कि वे पत्थरों की पूजा करने जाते हैं,
वे उस चक्की (पत्थर) की पूजा क्यों नहीं करते जो उनके लिए खाने के लिए आटा पीसती है।)

उनकी कविता में ये सारे विचार उभरकर आते हैं। उनके आध्यात्मिक अनुभव और उनकी कविताओं को अलग नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, वे सचेत रूप से अपनी कविताएँ नहीं लिखते थे। यह उनकी आध्यात्मिक खोज, उनका परमानंद और पीड़ा थी जिसे उन्होंने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। कबीर हर तरह से एक असाधारण कवि हैं। 15वीं शताब्दी में, जब फ़ारसी और संस्कृत प्रमुख उत्तर भारतीय भाषाएँ थीं, तब उन्होंने बोलचाल वाली, क्षेत्रीय भाषा में लिखने का चयन किया। केवल एक ही नहीं, उनके काव्य में हिंदी, खड़ी बोली, पंजाबी, भोजपुरी, उर्दू, फ़ारसी और मारवाड़ी जैसी भाषाओं का मिश्रण है।

भले ही कबीर के जीवन के बारे में विवरण बहुत कम मिलते हैं, लेकिन उनकी कविताएँ आज भी मौजूद हैं। वे एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें उनकी कविताओं के लिए और उनके द्वारा जाना जाता है। कबीर एक साधारण व्यक्ति थे और उनकी कविताओं का सदियों से मौजूद रहना, उनकी कविताओं की महानता का प्रमाण है। मौखिक रूप से प्रसारित होने के बावजूद, कबीर की कविताएँ आज भी अपनी सरल भाषा और आध्यात्मिक विचार और अनुभव की गहराई के कारण जानी जाती हैं। उनकी मृत्यु के कई वर्षों बाद, उनकी कविताएँ लिखी गईं थीं। उन्होंने दो पंक्ति वाले दोहे और लंबे पद (गीत) लिखे जिन्हें संगीतबद्ध किया गया। कबीर की कविताओं को एक सरल भाषा में लिखा गया है, फिर भी उनकी व्याख्या करना मुश्किल है क्योंकि उनमें कई जटिल प्रतीकवाद मौजूद हैं। हम उनकी कविताओं में कोई भी मानकीकृत रूप या छंद (मीटर) नहीं पाते हैं।

माटी कहे कुम्हार से तू क्यों रौंदे मोहे
एक दिन ऐसा आयेगा मैं रौंदूंगी तोहे

(मिट्टी कुम्हार से कहती है, तुम मुझे क्यों रोंदते हो,
एक दिन आएगा जब मैं तुम्हें (मृत्यु के बाद) रौंदूँगी।)

कबीर जी की शिक्षाओं ने कई व्यक्तियों और समूहों को आध्यात्मिक रूप से प्रभावित किया। गुरु नानकजी, दादू पंथ की स्थापना करने वाले अहमदाबाद के दादू, सतनामी संप्रदाय की शुरुआत करने वाले अवध के जीवान दास, उनमें से कुछ हैं जो अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शन में कबीर दास को उद्धृत करते हैं। अनुयायियों का सबसे बड़ा समूह कबीर पंथ के लोग हैं, जो उन्हें मोक्ष की ओर मार्गदर्शन करने वाला गुरु मानते हैं। कबीर पंथ अलग धर्म नहीं बल्कि आध्यात्मिक दर्शन है।

कबीर ने अपने जीवन में व्यापक रूप से यात्रा की थी। उन्होंने लंबा जीवन जिया। सूत्र बताते हैं कि अंत में उनका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वे राम की भक्ति में संगीत नहीं बजा पाते थे। अपने जीवन के अंतिम क्षणों के दौरान, वे मगहर शहर (उत्तर प्रदेश) चले गए थे। एक किंवदंती के अनुसार, उनकी मृत्यु के बाद, हिंदू और मुसलमानों के बीच संघर्ष हुआ। हिंदू उनके शरीर का दाह संस्कार करना चाहते थे जबकि मुसलमान उन्हें दफ़नाना चाहते थे। उसी क्षण एक चमत्कार हुआ और उनके कफ़न के नीचे फूल दिखाई दिए, जिनमें से आधे काशी में जलाए गए और आधे मगहर में दफन किए गए। निश्चित रूप से, कबीर दास की मृत्यु मगहर में ही हुई थी जहाँ उनकी कब्र स्थित है।

मैंने बनारस छोड़ दिया है, और मेरि बुद्धि अल्प हो गई है,
मेरा पूरा जीवन शिवपुरी में खो गया,
और मृत्यु के समय मैं उठकर मगहर आया हूँ।
हे मेरे राजा, मैं एक बैरागी और योगी हूँ।
मरते समय, मैं ना तो दुखी हूँ, और ना ही मैं तुझ से अलग हूँ।

मन और श्वास जलपात्र हैं, सारंगी सदा ही तैयार रहती है,
डोरी पक्की हो गई है, टूटती नहीं है, सारंगी से आवाज़ नहीं आती है।
गाओ, गाओ, हे दुल्हन, आशीर्वाद का एक सुंदर गीत गाओ,
राजा राम, मेरे पति, मेरे घर आए हैं।

(आदि ग्रंथ– जी.एच. वेस्टकॉट द्वारा 'कबीर एंड कबीर पंथ' से अनुवाद)

***

संत सूरदास

सूरदास भक्तिकाल के प्रमुख कवियों में से एक थे। सूरदास का जन्म 15वीं शताब्दी के मध्य ब्रजमंडल में हुआ था। सूरदास जन्म से ही अंधे थे, लेकिन उनकी आंखों की अंधता ने उनकी आध्यात्मिक दृष्टि को और तेज कर दिया था। सूरदास भगवान कृष्ण के परम भक्त थे। उन्होंने अपनी सभी रचनाएँ कृष्ण और राधा के प्रेम पर केंद्रित की हैं।

सूरदास कौन थे? भक्तिकाल की सगुण धारा के कृष्ण भक्त कवि सूरदास का नाम सबसे पहले आता है। सूरदास को भारत का और भक्ति काल का सूर्य भी कहा जाता है। सूरदास का जीवन परिचय और उनकी रचनाएं पूरी तरीके से कृष्ण भक्ति को समर्पित की जाती है। सूरदास पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तर भारत में एक संत, संगीतकार और कवि थे।

कृष्ण के वात्सल्य को जन–जन के मन में बसा देने का काम सूरदास जी ने बड़ी भली भांति किया है। उनके बारे में ऐसी बहुत सी रोचक बातें हैं जिनके बारे में अगर पढ़ने बैठ तो पूरी उम्र कम पड़ सकती है। फिर भी उनके जीवन से जुड़ी कुछ महत्वपूर्ण बातों के ऊपर चली नजर डालते हैं।

सूरदास का जीवन परिचय और प्रारंभिक जीवन ।

नाम	:	सूरदास
जन्म तारीख	:	1478 ई0
जन्म स्थान	:	रुनकता ग्राम
मृत्यु का स्थान	:	पारसौली
पिता का नाम	:	पंडित रामदास
माता का नाम	:	जमुनादास बाई

सूरदास किसके शिष्य थे? – आचार्य बल्लभाचार्य

भक्ति	:	कृष्ण की भक्ति
भाषा की शैली	:	ब्रज
रचनाएँ	:	सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, कृष्ण की बाल– लीलाओं, कृष्ण लीलाओं का चित्रण
मृत्यु	:	1583 ई., परसोली, मथुरा के निकट

सूरदास का जीवन परिचय: सूरदास का जन्म

सूरदास का वात्सल्य वर्णन करें तो कृष्ण काव्य धारा के इस महान कवि का जन्म, 1478 में सिही गांव में हुआ है। उनके जन्म स्थान के बारे में अलग-अलग राय मिल जाती है।

सूरदास के परिवार के बारे में दो मत आपको बहुत आसानी से मिल जाएंगे। सबसे पहले मत तो ये कि उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके माता का नाम जमुनादास और पिता का नाम रामदास था। कहा जाता है की बचपन से ही अंधे होने की वजह से उनके माता-पिता ने उनका त्याग कर दिया था। इस विषय में कोई प्रमाण तो नहीं मिलता है लेकिन लोक कथाओं में यही बात सबसे ज्यादा प्रचलित है।

वहीं दूसरी और साहित्य लहरी के अंतिम एक पद के मुताबिक सूरदास जी पृथ्वीराज के कवि चंदवरदाई के वंशज रहे थे। इन कवियों के कुल में से एक थे, हरिचंद जिनके सात बेटे थे और सबसे छोटा बेटा सूरजदास या सूरदास था। माना जाता है कि जब छह बड़े भाई मुसलमानों के साथ युद्ध करते हुए मारे गए थे, तब अंधे सूरदास बहुत दिनों तक इधर-उधर भटक रहे थे। भटकते हुए वो एक कुएं में भी गिर गए और 6 दिनों तक वहीं पड़े रहे। इस दौरान उन्होंने भक्ति भावना से सिर्फ भगवान श्री कृष्ण को पुकारा और सातवें दिन में भगवान श्री कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए और उससे कहा दक्षिण में उन्हें विद्या मिलेगी।

सूरदास ने उनसे मांगा कि जिन आंखों से उन्होंने अपने भगवान को देखा है वो आंखें अब और कभी कुछ न देख पाए। कृष्ण जी ने उन्हें कुएं से निकालते हुए उनकी आंखें सदा के लिए बंद कर दी। कई बार सूरदास के अंधेपन को लेकर भी लोगों के मन में सवाल उठते आए हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं में जिस तरह के सुंदर दृश्य और प्रकृति का चित्रण किया है, वैसा कर पाना किसी अंधे इंसान के लिए असंभव है।

सूरदास किसके शिष्य थे ?

बात करें कि सूरदास किसके शिष्य थे तो बता दें कि सूरदास के एकमात्र गुरु थे आचार्य वल्लभाचार्य जी। चौरासी वैष्णव की वार्ता से पता चलता है कि सूरदास पहले गऊघाट गए थे और वहां साधु के रूप में रहते थे।

सूरदास के गुरु का नाम वल्लभाचार्य था। एक बार वल्लभाचार्य जी श्रीनाथजी के मंदिर से उतर रहे थे कि सूरदास ने उन्हें अपना पद गाकर सुनाया। वल्लभाचार्य को उनका गया हुआ पर इतना अच्छा लगा कि उन्होंने उसे अपना शिष्य बना लिया और उसे श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन सेवा करने का मौका दिया।

इसी दौरान वल्लभाचार्य ने उन्हें पद रचना और भक्ति की कथाओं को लिखने और गाने की योग्यता सिखाएं। सूरदास की भक्ति भावना उजागर होने लगी। उनका ज्यादातर समय तो सूरदास की रचना करने में और भगवान का भजन कीर्तन करने में ही बीतने लगा।

सूरदास का जीवन परिचय: सूरदास की साहित्यिक यात्रा

सूरदास का जीवन प्रेरणादायक था।सूरदास की रचनाएँ और कृष्ण भक्ति आज भी लोगों के दिलों में विशेष स्थान रखती हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ और भक्ति का वर्णन इस प्रकार हैं:

सूरदास की कृष्ण भक्ति और उनकी रचनाएँ – सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी

सूरदास की अन्य प्रचलित रचनाएँ – ब्याहलो, नल–दमयंती

सूरदास की कृष्ण भक्ति का वर्णन

कृष्ण जी की लीलाओं का वर्णन तो रहता है लेकिन उन्हें देखकर किसी दूसरे छोटे बच्चों की मानसिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। सूरदास सुर दोहावली पुस्तक में ये लोकप्रिय पद लिखते हुए कहते हैं:

मैया कबहुं बढ़ैगी चोटी।
किती बेर मोहि दूध पियत भइ यह अजहूं है छोटी।।

इस पद से कृष्ण की सरलता का पता चलता है जहां वह बहुत प्यार से अपनी मां से पूछते हैं की मां मेरी चोटी कब बढ़ेगी? तुमने इतना मुझे दूध पिलाया लेकिन ये अब भी छोटी सी है।

सूरदास जी की अपनी लेखनी में बाल कृष्ण की लीलाओं का वर्णन, कृष्ण की माखन चोरी की लीलाएँ, गोपियों के साथ रासलीला, राधा–कृष्ण के प्रेम का मार्मिक चित्रण, गहरी भक्ति और आध्यात्मिक भाव का सुन्दर प्रस्तुत किया है।

कृष्ण के इस मनोहर रूप का चित्रण और सूरदास की भक्ति भावना को स्पष्ट तरीके से लोगों को समझने के लिए, सूरदास ने कुछ रचनाएं की जो है सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य–लहरी, नल–दमयन्ती, ब्याहलो आदि।

प्रमुख काव्य कृतियाँ और उनका प्रभाव

अगर सूरदास के प्रमुख काव्य कृतियों की बात करें तो उसमें सबसे प्रचलित है भ्रमरगीत। बहुत से लोगों ने इसे एक कविता संकलन माना है और कई लोग मानते हैं कि ये गाए जाने वाली कविताओं में से हैं। सूरदास जी की कविताओं को अलग–अलग राग रागिनियों में गया जा सकता है।

इसमें लिखी गई सारी कविताएं विरह के ऊपर है। वो भी गोपियों और कृष्ण के बीच का बिरह। लेकिन सूरदास के विरह चित्रण में भी एक तरह की शांति गोपियों में देखने को मिलती है क्योंकि उन्होंने कृष्ण को अपना मान लिया है और उसके पास रहने या दूर जाने से उनके प्रेम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

सूरदास जी अपनी रचनाओं के जरिए आम लोगों के सामने प्रेम का एक ऐसा रूप लेकर आना चाहते हैं जो स्वार्थी नहीं है और जिसमें भक्ति भी मिली हुई है। उनका मानना है कि आपका आराध्य आपके लिए कुछ भी हो सकता है अगर आप उस सच्चे तरीके से प्रेम और भक्ति करते हैं तो।

सूरदास की रचनाएँ

सूरदास जी, भक्ति काल के एक महान कवि थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं से कृष्ण भक्ति को जन-जन तक पहुंचाया। उनकी रचनाओं में कृष्ण के बाल रूप और उनकी लीलाओं का सुंदर वर्णन मिलता है।

सूरदास जी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं:

सूरसागर: यह उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है, जिसमें कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। इसमें लगभग एक लाख पद थे, लेकिन वर्तमान में लगभग 8,000 पद ही उपलब्ध हैं।

सूरसारावली: यह सूरसागर का संक्षिप्त रूप है, जिसमें 107 पद हैं।

साहित्य लहरी: इसमें नीति और भक्ति के दोहों का संग्रह है।

नल-दमयन्ती: यह नल और दमयन्ती की प्रेम कथा पर आधारित है।

ब्याहलो: इसमें राधा और कृष्ण के विवाह का वर्णन है।

सूरदास की रचना

सूरसागर को 12 स्कंधों में बांटा गया है जैसा श्रीमद् भागवत गीता में भी देखा जाता है। लोगों के मुताबिक इसमें कुल 4926 पद लिखे गए हैं। इन स्कंधों में ही सिर्फ कृष्ण और सूरदास की भक्ति भावना के बारे में नहीं बल्कि अन्य भक्तों और भगवानों के बारे में भी बताया गया है।

कृष्ण लीलाओं का चित्रण

सूरसागर की दृष्टि से इसमें कृष्ण के बाल रूप का सबसे सुंदर वर्णन मिलता है। कृष्ण के बाल लीलाओं की चर्चा सूरसागर में दसवें स्कंद से शुरू होती है जिसमें कुल 1000 से ज्यादा पद मिलते हैं। इसमें कृष्ण के बाल जीवन के अलावा उनके द्वारका जाने से लेकर अंत तक की कथा मिलती है। इस दसवें स्कंद में

मूल रूप से पांच बातें आपको देखने को मिल जाएंगे और वह पांच बातें हैं बाल लीला, गोचारण, वंशीवादन, रासलीला और भ्रमरगीत।

सूरसागर में सूरदास का वात्सल्य वर्णन और कृष्ण की बाल लीला पर सबसे अधिक पद मिलते हैं। इसमें दिखाया जाता है कि कैसे कृष्ण बचपन से ही राक्षसों को मारते आए हैं और बड़े होने के साथ द्वारा का जाकर कंस का वध करने का दायित्व भी वह पूरा करते हैं।

बाल लीला और वात्सल्य वर्णन के अलावा इसमें श्रृंगार का भी बहुत महत्वपूर्ण भाग दिखाता है। सूरदास ने दिखाया है कि बहुत लंबे समय बाद कृष्ण और राधा का मेल कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद होता है। इस मिलन में श्रृंगार और प्रेम का ऐसा रूप सूरदास सामने लेकर आते हैं जो भक्तों को पूरी तरीके से मोहित करने के लिए काफी है।

सूरदास का जीवन परिचय: सामाजिक और आध्यात्मिक संदेश

अगर सूरदास से जुड़ी कोई भी आलोचना की किताब पढ़ेंगे, तो आपको पता चलेगा कि सूरदास को ज्यादातर लोग उनकी भक्ति तथा वात्सल्य से पूर्ण रचनाओं के लिए ही जानते हैं। लेकिन उनके पदों में स्पष्ट रूप से ना सही लेकिन सांकेतिक रूप में कई तरह के सामाजिक प्रसंग सामने उठकर आते हैं।

आज जिस नारी चेतना तथा नारी सशक्तिकरण के ऊपर इतनी बातें खुलकर होती है, उसका उल्लेख सूरदास ने बहुत पहले ही अपनी रचनाओं के जरिए पेश किया था। सूरदास की सबसे प्रमुख रचना भ्रमरगीत में दिखाया जाता है की कैसे कृष्ण की गोपियों अपना प्रेमी चुनने के लिए स्वतंत्र है और अगर कोई उन्हें तर्क देकर भी कृष्ण के प्रेम से हटाना चाहे तब भी वह उनका जवाब तड़क और व्यंग्य से देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सूरदास स्त्रियों को अबला नहीं मानते थे। उन्हें यह चीज बहुत पहले ही मालूम थी कि स्त्रियों के पास भी बुद्धि है और वह अपने बुद्धि के बल पर निर्णय ले सकती हैं।

सूरदास कृष्ण के के माध्यम से और रूपकों के इस्तेमाल से समाज के कई सारे बड़े समस्याओं को हमारे सामने लेकर आते हैं जैसे: किसानों का शोषण, साहूकार और जमींदारों का झूठा वही लिखना तथा उनका अत्याचार। सूरदास इन बातों के बारे में सूरसागर में लिखते हैं कि–

भोहरिल पांच सार्थ करर हदने, नतनकी बड़ी षवर्रीनत।
जिम्मे उनके, मांग मोतै, यि तो बड़ी अनीनत
पांच–पचिस सार्थ अगवानी, सब मिली काज बिगारै
सुनी तागीरी, बबसरर गईं सुधी, मो ताजी भए नियारे।

तुलसीदास या कबीर की तरह सूरदास की रचनाओं में सामाजिक समस्या भले ही मुखर तरीके से सामने ना आए लेकिन सामने जरूर आती है। सूरदास अपनी सभी रचनाओं में यही बताते हैं कि अगर इन सभी तरीके के दुखों से छुटकारा पाना है तो आपको सच्चा भक्त बनना पड़ेगा। और सच्चा भक्त बनने के लिए सच्ची भक्ति करनी आवश्यक है।

सूरदास के दोहे

जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार।।

सूरदास जी कहते हैं कि हे गँवार दुष्ट, अगर तुझे अपने दिल में शर्म नहीं है, तो मैं तुझे सौ बार क्या कहूँ क्योंकि तूने तो एक बार भी भगवान् का भजन नहीं किया।

सुनि परमित पिय प्रेम की, चातक चितवति पारि।
घन आशा सब दुख सहै, अंत न याँचै वारि।।

प्रिय के प्रेम के या परिणाम की महत्ता को जानकर या सुनकर पपीहा बादल की ओर निरंतर देखता रहता है। उसी मेघ की आशा से सब दु:ख सहता है पर मरते दम तक भी पानी के लिए प्रार्थना नहीं करता। सच्चा प्रेम अपने प्रेमी से कभी कुछ नहीं माँगता या चाहता।

मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात।।

चाहे पानी मछली की बात भी नहीं पूछता फिर भी मछली तो पानी का वियोग नहीं सह सकती। तुम मछली के प्रेम की निराली गति को देखो कि इसका शरीर चला जाता है तो भी उसका पानी के प्रति प्रेम रत्ती–भर भी कम नहीं होता।

जिन जड़ ते चेतन कियो, रचि गुण तत्व विधान।
चरन चिकुर कर नख दिए, नयन नासिका कान।।

जिस ईश्वर ने सत्व, रज, तम–इन तीन गुणों तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश–इन पाँच तत्वों के द्वारा जड़ से चेतन बना दिया और हाथ, पाँव, आँख, नाक, बाल और नाखून दिए (बड़े दु:ख की बात है मनुष्य उसके गुणों का स्मरण नहीं करता)।

सूरदास का जीवन परिचय: सूरदास की अंधता और उनकी रचनात्मकता

सूरदास का जीवन परिचय अगर ध्यान से देखा जाए तो एक बात तो सच है कि वह अंधे तो अवश्य थे। लेकिन सोचने वाली बात है कि अंधे होने के बावजूद उन्होंने इतनी रचनाएं आंखें कैसे की होगी?

माना जाता है कि सूरदास अंधे होने के साथ–साथ अनपढ़ भी थे। लेकिन उनके गीतों और कविताओं का जब वो उच्चारण करते तब उनके ही शिष्य में से कोई उन कविताओं को लिख लिया करता था।

प्रचलित मान्यताओं के मुताबिक दिल्ली के बादशाह अकबर ने भी उनकी रचनाओं को लिखकर एक संकलन बनाने का आदेश दिया था।बादशाह अकबर सूरदास की प्रतिभा से प्रसन्न थे और वह चाहते थे कि सूरदास उनके दरबार का हिस्सा बने।

सूरदास ने उनके इस आमंत्रण को मना कर दिया और इस मंदिर में कीर्तन करते

रहे। अकबर ने भी उनके इस निर्णय का पूरा सम्मान किया था। इस कथा की पूरी तरह से पुष्टि तो नहीं होती है लेकिन अकबरनामा में सूरदास नामक एक व्यक्ति का नाम जरूर मिलता है।

ऐसा माना जाता है कि अंधे होने के बावजूद सूरदास की भक्ति भावना इतनी ज्यादा प्रबल थी कि उन्हें एक बार नहीं लेकिन कई बार कृष्ण के और राधा के भी दर्शन हुए थे। हालांकि उन्होंने कृष्ण को देखा सिर्फ एक ही बार था लेकिन उन्हें कृष्ण और राधा से जुड़ी अनुभूतियां समय–समय पर होती रही थी।

आध्यात्मिक अनुभव और उनका काव्य में प्रतिबिंब

एक समय के बाद सूरदास ने अपने आप को कृष्ण की भक्ति में ऐसा ली कर लिया था कि उनकी कृष्ण से मिलने की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी।

उन्होंने अपनी कई रचनाओं में लिखा है, कि वह अपने आपको भाग्यशाली मानेंगे अगर उन्हें कृष्ण के चरणों की धूल मिल जाती है तो या वह वृंदावन की नदी के तट पर बसाना चाहते हैं, ताकि वह कृष्ण की लीलाओं को हर रोज आंखों के सामने देख सके।

सूरदास ने अपनी रचनाओं में कृष्ण की कई महत्वपूर्ण लीला जैसे कालिया दमन गोवर्धन पर्वत प्रसंग और पूतना वाद का भी उल्लेख किया है।

इसके अलावा उन्होंने कृष्ण और गोपियों के बीच प्रेम का जो संबंध स्थापित किया है वह असल में भक्त और प्रभु के बीच का संबंध जाहिर करता है।

जिस तरह गोपिया कृष्ण को हमेशा अपने के लिए या देखने के लिए उसकी धुन में मगन रहती है। उसके खिलाफ कोई भी बुरी बात नहीं सुन सकती हैं इस तरह भक्त भी अपने आराध्य या भगवान के करीब जाने के लिए उनसे मिलने के लिए उनकी पूजा वंदना करते रहते हैं।

सूरदास की मृत्यु

उनके जन्म के समान, उनकी मृत्यु के कारण और वर्ष पर विद्वानों के बीच मतभेद है, क्योंकि उपलब्ध संदर्भों के अनुसार सूरदास जी का निधन 1583 ई. (1640 वि.) में मथुरा के निकट परसोली नामक गांव में हुआ था। यह गांव ही उनकी अंतिम निवास स्थान था। उनकी मृत्यु स्वाभाविक थी, क्योंकि उनकी उम्र 100 वर्ष से अधिक थी। इस प्रकार, सूरदास जी की जीवन यात्रा और उनके निधन के बारे में विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण, उनके जीवन के अंतिम क्षणों को लेकर कई चर्चाएँ होती हैं।

सूरदास की विरासत और उनका प्रभाव –

भक्ति आंदोलन में योगदान

जब भक्ति आंदोलन अपने चरण पर था, तब सूरदास जी शगुन काव्यधारा के कृष्ण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में सामने आए थे। उनकी रचनाओं की भाषा इतनी सरल और सुंदर होती थी कि आम जनता को उन्हें समझने में कोई दिक्कत नहीं पहुंचती थी।

भक्ति आंदोलन के दौरान जहां देश में एक अशांति का माहौल बना हुआ था वही सूरदास की रचनाएं इन्हीं अशांत दिलों में प्रेम और भक्ति के भाव को बढ़ावा दे रही थी। सूरदास अकेले नहीं बल्कि उनके गुरु श्री वल्लभाचार्य के अन्य शिष्यों के साथ मिलकर कृष्ण भक्ति का प्रचार पूरे भारत में करने की कोशिश कर रहे थे।

आधुनिक साहित्य पर प्रभाव

सूरदास ने सिर्फ भक्ति के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत नाम कमाया है। आज भी जब कोई महान कवियों की गिनती करता है तो सूरदास का नाम उस लिस्ट में जरूर मिलता ही है। ऐसा इसलिए क्योंकि सूरदास के पद

की व्याख्या से हमें उस समय के साहित्य स्थिति का ज्ञान होता है साथ ही उनके पदों में जिस तरह के अलंकार और रस मिलते हैं उनका महत्व हिंदी साहित्य में बहुत अधिक है। सूरदास ने अपनी रचना में संस्कृत का उपयोग न करके अवधि भाषा का सहारा लिया जिसकी मदद से हिंदी भाषा आगे चलकर और भी ज्यादा साफ और प्रखर तरीके से लोगों के सामने आ पाई।

निष्कर्ष –

इस पूरे लेख को ध्यान में रखते हुए कह सकते हैं कि सूरदास साफ ब्रजभाषा का प्रयोग करते थे। उन्हें ब्रजभाषा का सर्वश्रेष्ठ कवि कहा जाता है। कृष्ण के बाल का लीलाओं का, राधा कृष्ण के प्रेम का और गोपियों के साथ विरह वेदना का दिल को दिल को छू जाने वाली मार्मिक चित्रण सूरदास जी ने बड़ी सफलतापूर्वक किया है।

***

तुलसीदास

भक्तिकाल के प्रतिनिधि कवि

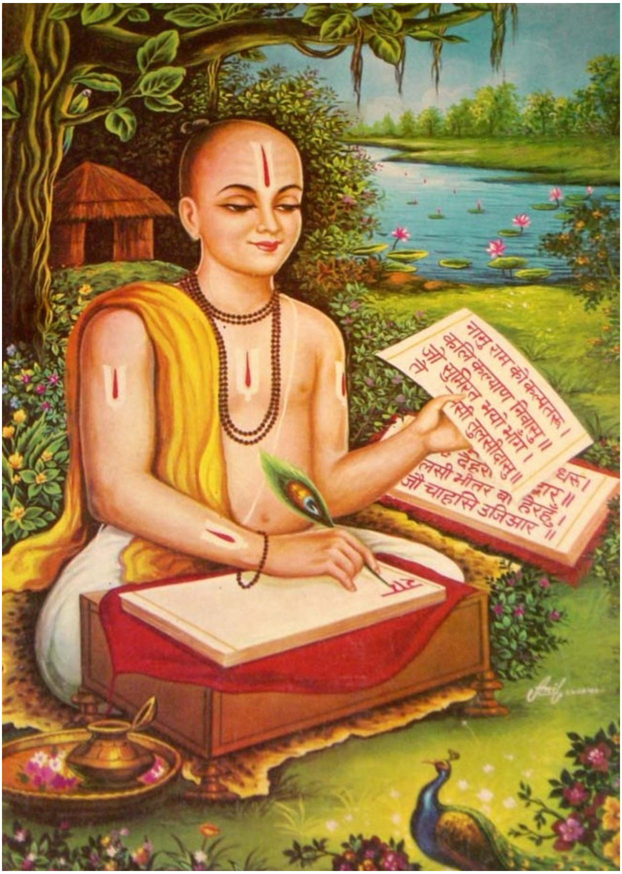

तुलसीदास भक्तिकाल की राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है। तुलसी ने रामचरितमानस के ज़रिए भगवान राम की भक्ति को घर–घर तक पहुँचाया है। जहाँ तुलसी का साहित्य भक्ति–भावना जागृत करता है वही सामाजिक चेतना का भी प्रसार करता है। तुलसीदास की सामाजिक और लोकवादी दृष्टि मध्यकाल के अन्य कवियों से अधिक व्यापक और गहरी है। तुलसी अपने काल की

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति को अनदेखा नहीं करते हैं वह उस पर भी अपनी कलम चलाते हैं।

तुलसीदास उस काल से संबंध रखते हैं जो सामंती मूल्यों से ग्रस्त काल था। इस समय वर्ण–व्यवस्था का कठोर प्रचलन था। और नारी की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। कई जगह तुलसी भी पारम्परिक मूल्यों से प्रभावित दिखते हैं ऐसे कुछ अपवादों को छोड़ दें तो उस सामंती समाज में तुलसी नए मूल्यों को स्थापित करने की कोशिश करते हैं। तुलसी भक्ति के स्तर पर वर्ण–व्यवस्था को बिल्कुल स्वीकार नहीं करते, इसलिए उन्होंने रामचरितमानस से 'शंबूक वध' प्रसंग को निकाल दिया है और शबरी को 'भामिनि' कहकर संबोधित करते हैं, वह कहते हैं –

नव महु एकौ जिन्ह के होई

नारि पुरुष सचराचर कोई।

सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरे

सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।।

जहाँ तुलसी भक्ति में वर्णव्यवस्था का विरोध करते हैं वहीं कर्मपथ से हट जाने वाले ब्राह्मणों को काफ़ी बुरा भला कहते हैं –

जाके नख अरु जटा विसाला

सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला

विप्र निरछर लोलुप कामी

निराचार सठ वृषली स्वामी

तुलसी दास की नारी के प्रति भावना विवाद का विषय रही है। कुछ प्रसंगों में तुलसीदास ने नारी की निंदा की है। वह प्रसंग वो हैं जिनमें नारी को तप और निवृत्ति में बाधक बताया गया है। नारी के प्रति ऐसे निंदा वाक्य अधिकतर

तुलसीदास की मनोवृत्ति का तादात्म्य नहीं मान सकते। तुलसीदास ने नारी की विवशता, परतंत्रता पर आक्रोश व्यक्त किया है और परिवार में उनके लिए सुरक्षा भाव उत्पन्न करने के पक्ष में हैं –

अनुज बधू भगिनी सुत नारी
सुन सठ कन्या सम ये चारी
इन्हहि कुदिष्टि बिलौके जोई
ताहि बधे कछु पाप न होई।

कत बिधि सृजी नारि जग माहि
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं

भक्तिकाल के अधिकतर कवि राजनीति से दूर रहते थे। लेकिन तुलसीदास एकमात्र ऐसे रचनाकार हैं जो अपने समय की राजनीतिक विसंगतियों की कटु आलोचना करते हैं और राजा के लिए दंड की व्यवस्था भी करते हैं। –

गोढ़ गँवार नृपाल महि, जनम महा महिपाल
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी
सो नृप अवस नर्क अधिकारी

तुलसीदास सिर्फ़ राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करके ही नहीं रुक गए, उन्होंने तत्कालीन समाज की आर्थिक समस्याओं की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने ग़रीबी, अकाल, बेरोजगारी की समस्याओं पर वर्णन अपनी रचनाओं में किया है।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं
संतमिलन सम सुख जग नाहीं

कलि बारहिं बार दुकाल पड़ै
बिनु अन्न दुखी सब लोग मरैं

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों, 'कहाँ जाई, का करी?

तुलसीदास के अनमोल दोहे जिनमें जीवन का सार है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी लेखनी से जीवन में भक्ति का जो महात्म्य व्यक्त किया है, वह काव्य जगत में अनुपम है। उनकी काव्य रचनाओं में गहरा जीवन दर्शन समाया हुआ है। उनके दोहों का अर्थ इतना गूढ़ है कि उस पर शोध करने से उसके कई मायने निकाले जा सकते हैं। यह सभी मायने जीवन को कहीं न कहीं लाभान्वित करते हैं। इनसे जीवन को गहरी सीख मिलती है।

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुवीर
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर

तुलसीदास कहते हैं–हे रघुवीर, मेरे जैसा कोई दीन हीन नहीं है, गरीब नहीं है। और तुम्हारे जैसा कोई दीन हीनों का भला करने वाला, हित करने वाला नहीं है। ऐसा विचार करके, हे रघुवंश मणि मेरे जन्म–मृत्यु के भयानक दुःख को दूर कर दीजिए।

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार
तुलसी भीतर बाहेरहुं जौं चाहसि उजियार

इसमें तुलसीदासजी कहते हैं कि हे मनुष्य ,यदि तुम भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहते हो, प्रकाश चाहते हो तो मुखरूपी द्वार की जीभरुपी दहलीज पर राम–नाम रूपी मणिदीप को रखो।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम

जैसे काम के अधीन कामुक व्यक्ति को नारी प्यारी लगती है और लालची व्यक्ति को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे हीं हे रघुनाथ, हे राम, आप मुझे हमेशा प्यारे लगते रहिए।

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि

सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि

तुलसीदास कहते हैं स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो नहीं मानता,वह बाद में खूब पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है ।

तुलसी मीठे बचन ते सुख उपजत चहुंओर

बसीकरन इक मंत्र है परिहरू बचन कठोर

तुलसीदासजी कहते हैं कि मीठे वचन सब ओर सुख फैलाते हैं। किसी को भी वश में करने का ये एक अमूल मंत्र हैं। इसलिए मानव को चाहिए कि कठोर वचन छोड़कर मीठा बोलने का प्रयास करे।

सचिव वैद्य गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस

राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास

गोस्वामीजी कहते हैं कि मंत्री, वैद्य और गुरु, ये तीन यदि भय या लाभ की आशा से (हित की बात न कहकर) प्रिय बोलते हैं तो (क्रमशः) राज्य, शरीर एवं धर्म इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान

तुलसी दया न छांड़िए, जब लग घट में प्राण

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि मनुष्य को दया कभी नहीं छोड़नी चाहिए क्योंकि दया ही धर्म का मूल है और इसके विपरीत अहंकार समस्त पापों की जड़ होता है।

तुलसी साथी विपत्ति के विद्या विनय विवेक

साहस सुकृति सुसत्यव्रत राम भरोसे एक

तुलसीदास जी कहते हैं कि विपत्ति में अर्थात मुश्किल वक्त में ये चीजें मनुष्य का साथ देती है। ज्ञान, विनम्रता पूर्वक व्यवहार, विवेक, साहस, अच्छे कर्म, आपका सत्य और राम (भगवान) का नाम। यह विपत्ति में आपका सहारा हैं।

आवत ही हरषै नहीं नैनन नहीं सनेह

तुलसी तहां न जाइये कंचन बरसे मेह

जिस स्थान या जिस घर में आपके जाने से लोग खुश नहीं होते हों और उन लोगों की आंखों में आपके लिए न तो प्रेम और न हीं स्नेह हो। वहां हमें कभी नहीं जाना चाहिए, चाहे वहां धन की हीं वर्षा क्यों न होती हो।

मुखिया मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुं एक

पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक

तुलसीदास जी कहते हैं कि परिवार का मुखिया मुख के समान होना चाहिए जो खाने–पीने को तो अकेला है, लेकिन विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन–पोषण करता है।

***

संत रविदास / रैदास

0

रविदाजी को पंजाब में रविदास कहा। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान में उन्हें रैदास के नाम से ही जाना जाता है। गुजरात और महाराष्ट्र के लोग 'रोहिदास' और बंगाल के लोग उन्हें 'रुइदास' कहते हैं। कई पुरानी पांडुलिपियों में उन्हें रायादास, रेदास, रेमदास और रौदास के नाम से भी जाना गया है। कहते हैं कि माघ मास की पूर्णिमा को जब रविदास जी ने जन्म लिया वह

रविवार का दिन था जिसके कारण इनका नाम रविदास रखा गया। उनका जन्म माघ माह की पूर्णिमा को हुआ था।

संत शिरोमणि कवि रविदास का जन्म माघ पूर्णिमा को 1376 ईस्वी को उत्तर प्रदेश के वाराणसी शहर के गोबर्धनपुर गांव में हुआ था। उनकी माता का नाम कर्मा देवी (कलसा) तथा पिता का नाम संतोख दास (रग्घु) था। उनके दादा का नाम श्री कालूराम जी, दादी का नाम श्रीमती लखपती जी, पत्नी का नाम श्रीमती लोनाजी और पुत्र का नाम श्रीविजय दास जी है। रविदासजी चर्मकार कुल से होने के कारण वे जूते बनाते थे। ऐसा करने में उन्हें बहुत खुशी मिलती थी और वे पूरी लगन तथा परिश्रम से अपना कार्य करते थे।

उनका जन्म ऐसे समय में हुआ था जब उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में मुगलों का शासन था चारों ओर अत्याचार, गरीबी, भ्रष्टाचार व अशिक्षा का बोलबाला था। उस समय मुस्लिम शासकों द्वारा प्रयास किया जाता था कि अधिकांश हिन्दुओं को मुस्लिम बनाया जाए। संत रविदास की ख्याति लगातार बढ़ रही थी जिसके चलते उनके लाखों भक्त थे जिनमें हर जाति के लोग शामिल थे। यह सब देखकर एक परिद्ध मुस्लिम 'सदना पीर' उनको मुसलमान बनाने आया था। उसका सोचना था कि यदि रविदास मुसलमान बन जाते हैं तो उनके लाखों भक्त भी मुस्लिम हो जाएंगे। ऐसा सोचकर उनपर हर प्रकार से दबाव बनाया गया था लेकिन संत रविदास तो संत थे उन्हें किसी हिन्दू या मुस्लिम से नहीं मानवता से मतलब था।

संत रविदासजी बहुत ही दयालु और दानवीर थे। संत रविदास ने अपने दोहों व पदों के माध्यम से समाज में जातिगत भेदभाव को दूर कर सामाजिक एकता पर बल दिया और मानवतावादी मूल्यों की नींव रखी। रविदासजी ने सीधे–सीधे लिखा कि 'रैदास जन्म के कारने होत न कोई नीच, नर कूं नीच कर डारि है, ओछे करम की नीच' यानी कोई भी व्यक्ति सिर्फ अपने कर्म से नीच होता है। जो व्यक्ति गलत काम करता है वो कीच होता है। कोई भी व्यक्ति जन्म के हिसाब से

कभी नीच नहीं होता। संत रविदास ने अपनी कविताओं के लिए जनसाधारण की ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। साथ ही इसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और रेख्ता यानी उर्दू–फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है। रविदासजी के लगभग चालीस पद सिख धर्म के पवित्र धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहब' में भी सम्मिलित किए गए है।

कहते हैं कि स्वामी रामानंदाचार्य वैष्णव भक्तिधारा के महान संत हैं। संत रविदास उनके शिष्य थे। संत रविदास तो संत कबीर के समकालीन व गुरूभाई माने जाते हैं। स्वयं कबीरदास जी ने 'संतन में रविदास' कहकर इन्हें मान्यता दी है। राजस्थान की कृष्णभक्त कवयित्री मीराबाई उनकी शिष्या थीं। यह भी कहा जाता है कि चित्तौड़ के राणा सांगा की पत्नी झालीरानी उनकी शिष्या बनीं थीं। वहीं चित्तौड़ में संत रविदास की छतरी बनी हुई है। मान्यता है कि वे वहीं से स्वर्गारोहण कर गए थे। हालांकि इसका कोई आधिकारिक विवरण नहीं है लेकिन कहते हैं कि वाराणसी में 1540 ईस्वी में उन्होंने देह छोड़ दी थी।

वाराणसी में संत रविदास का भव्य मंदिर और मठ है। जहां सभी जाति के लोग दर्शन करने के लिए आते हैं। वाराणसी में श्री गुरु रविदास पार्क है जो नगवा में उनके यादगार के रुप में बनाया गया है जो उनके नाम पर 'गुरु रविदास स्मारक और पार्क' बना है।

***

संत गोरखनाथ

0

गोरखनाथ जी का जीवन परिचय –

हमारी भारत भूमि योगियों एवं साधु–संतों की भूमि मानी जाती है। आदि काल से इस पावन–भू पर अनेक सिद्ध आत्माओं ने जन्म लिया एवं समाज के कल्याण और मानवता के उद्धार हेतु अपना सर्वस्व समर्पित करके सम्पूर्ण मानवजाति के लिए प्रेरणा स्रोत बन गए। ऐसे ही श्रेष्ठ संतों में से एक महायोगी, सर्वसिद्ध

साधक, गुरु गोरखनाथ जी हैं। इन्हें साक्षात भगवान शिव का अवतार माना जाता है जिन्होंने अपनी सिद्धियों एवं दैवीय गुणों से मानव कल्याण एवं धर्म की रक्षा हेतु जन्म लिया था। गोरखनाथ जी को गोरक्षनाथ के नाम से भी जाना जाता हैं। इनके नाम का शाब्दिक अर्थ गाय को पालनेवाला या गाय की रक्षा करने वाला है। महायोगी गोरखनाथ ब्रह्मचर्य साधक, आचार प्रवण एवं योगनिष्ठ जीवन के महानायक है।

जन्मकाल एवं जन्म स्थली :-

महायोगी गोरखनाथ जी के जन्म के काल के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद है। 8वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी के मध्य उनका जन्म काल माना जाता है। कुछ विद्वानों का उनके जन्म को लेकर ऐसा मानना है कि वे पहली शताब्दी के हैं क्योंकि राजा भ्रतृहरि जो उनके शिष्य थे वे राजा विक्रमादित्य के भाई थे जिन्होंने विक्रम संवत की शुरुआत की थी। अत: इसी कारणवश गोरखनाथ जी को उनके समकालीन माना जाता है। सनातन पंचाग के अनुसार ऐसा माना जाता है कि गोरखनाथ चारों युगों में उपस्थित थे अर्थात् उन्होंने चारों युगों में जन्म लिया था।

उनके जन्म स्थली को लेकर भी विद्वानों में एकमतता नहीं पायी जाती है। कुछ विद्वान गोदावरी नदी के तट पर उनकी जन्म स्थली बताते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि सतयुग में उनका जन्म पंजाब (पाकिस्तान) में, त्रेतायुग में गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) में, द्वापरयुग में द्वारका (गुजरात), एवं कलयुग में काठियावाड़ में उनका जन्म हुआ था।अत: उनके जन्म स्थली एवं काल के विषय में कोई ठोस साक्ष्य एवं जानकारी उपलब्ध नहीं है।

उनके जन्म से जुड़ी रोचक घटना :-

गुरु गोरखनाथ के जन्म के बारे में यह मान्यता है कि उन्होंने मातृ गर्भ से जन्म नहीं लिया अपितु वे इस धरा पर गुरु की कृपा से अवतरित हुए हैं। नाथ संप्रदाय

के अनुयायी मत्स्येन्द्रनाथ जो प्रभु शिव की उपासना एवं भिक्षाटन करके जीवन यापन करते थे, भिक्षाटन के दौरान एक बार एक गाँव में पहुंचे जहां एक घर के द्वार पर भिक्षा के लिए आह्वान किया तो एक स्त्री बाहर आकर उन्हें भिक्षा देती है परन्तु वह कुछ चिंतित प्रतीत होती है। योगी राज के पुछने पर वे अपने वर्षों से निसंतान होने की पीड़ा को उनके समक्ष व्यक्त करती हैं। उस समय योगी मत्स्येन्द्रनाथ जी उन्हें एक चुटकी भभूत देते हुए यह कहते हैं कि इसे ग्रहण करने के पश्चात् उन्हें पुत्र–रत्न की प्राप्ति होगी।

12 वर्षों के पश्चात् वे पुनः उसी गाँव से भिक्षा ग्रहण करने हेतु आते हैं और उस स्त्री के द्वार पर पहुँचते हैं तो उनसे उनके पुत्र के विषय में पुछते है जो अब 12 वर्ष का हो चुका होगा, परंतु वह स्त्री बड़े ही दु:ख और ग्लानी के साथ उन्हें यह बताती है कि एक राह–चलते योगी द्वारा दिए गए भभूत को लेने पर उसके आस–पड़ोस की महिलाएं उसे भयभीत कर देती है एवं उसकी खिल्ली भी उड़ाती है जिस कारण वह उस भभूत को खाने के बजाय गोबर के एक ढेर में फेंक देती है। इस बात से अवगत होते ही योगी महाराज उस ढेर के समीप जाकर अलख बजाते है और तत्क्षण ही एक 12 वर्ष का तेजवान बालक वहाँ प्रकट हो जाता है। ये बालक ही महायोगी गोरखनाथ जी थे। इसके पश्चात गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी उसी समय उन्हें अपने साथ लेकर चले जाते हैं।

यह प्रसंग मराठी भाषी ग्रंथ नवनाथ सार में उल्लेखित है जिसके विवरणानुसार यह घटना रायबरेली जिले के जायस नामक कस्बे में घटित हुई थी।

नाथ संप्रदाय :–

नाथ सम्प्रदाय के स्थापक भगवान शिव को माना जाता है। इसे सिद्ध संप्रदाय का ही विकसित रूप कहा जाता है। गोरखनाथ एवं उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इस संप्रदाय के सभी अनुयायी शैव थे अर्थात वे शिवोपासना किया करते थे।

बौद्धों के वज्रयान–सहजयान शाखा से नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई है।

सामाजिक एवं धार्मिक सुधार :–

गोरखनाथ जी के समय में समाज में बौद्ध धर्म एवं शैव धर्म प्रचलन में था। हिन्दू धर्म तंत्र–मंत्र के प्रभाव से निम्नतन स्तर पर पहुँच गया था। नाथ सम्प्रदाय बिखरा हुआ था। बौद्ध धर्म के वज्रयान शाखा में अश्लीलता एवं उनके मठों में व्यभिचार फैल चुका था। समाज की ऐसी दुर्व्यवस्था एवं धर्म की हानि के काल में उन्होंने अपने तपोबल एवं योगबल से समाज को नई दिशा प्रदान की। लोगों को धर्म का भान कराया। उन्होंने नाथ सम्प्रदाय को भी एकीकृत किया। गुरु शंकराचार्य जी के पश्चात् गुरु गोरखनाथ जी एक महान एवं सुप्रसिद्ध महायोगी के रूप में उभरे जिन्होंने एक नए धर्म की नींव रखी।

गोरखनाथ जी की गुरु भक्ति :–

गोरखनाथ जी अपने गुरु का बहुत आदर एवं सम्मान करते थे। उनकी गुरु भक्ति असीम एवं अद्भुत थी। अपने गुरु के साथ रहकर ही उन्होंने शिक्षा–दीक्षा, तंत्र–मंत्र तथा योग ज्ञान इत्यादि की सीख ली थी।

एक छोटी सी कथा प्रचलित है जो उनकी अद्भुत गुरु भक्ति को दृष्टव्य करती है। इस कथा के वर्णनानुसार, एक समय की बात है जब उनके गुरु ने वड़ा खाने की इच्छा प्रकट की तो वे गुरु की इच्छा पूर्ति के लिए भिक्षाटन करने निकले तथा उन्होंने एक महिला से वड़ा बनाकर देने का अनुरोध किया परंतु उस महिला ने उन्हें खरी–खोटी सुना दी। इसके बाद भी उन्होंने उस स्त्री से विनती की एवं उसके बदले कुछ भी मांगने को कहा, जिससे उस स्त्री ने उनसे उनकी आंखे ही मांग ली। गोरखनाथ जी ने बिना किसी संकोच अपने गुरु की इच्छा पूर्ति हेतु उस स्त्री के समक्ष अपनी आंखे निकाल कर प्रस्तुत कर दी और उससे अपने गुरु के लिए वड़ा लेकर अपने गुरु को ग्रहण करने हेतु समर्पित कर दिया। उनके गुरु उनसे बहुत प्रसन्न हुए तथा उनके नेत्र उन्हें वापस प्रदान कर दिए।

गोरखनाथ जी की गुरु भक्ति सभी को अपने गुरु का सम्मान करने तथा गुरु के आज्ञा पालन की शिक्षा देती है।

गोरखनाथ जी की महिमा :-

गोरखनाथ जी ने समाज और मानव जाति के कल्याण हेतु बहुत सी यात्राएं की तथा अपने ज्ञान से लोगो का मार्गदर्शन किया। अपने गुरु के कहने पर उन्होंने न केवल भारत में बल्कि इसके बाहर भी कई स्थानों पर तप साधना की।

नेपाल में एक गुफा पाई गई है जहां कहा जाता है कि वे साधना किया करते थे। इस गुफा को गोरखनाथ के सिद्ध गुफा के नाम से जाना जाता है। यहां प्रत्येक वर्ष एक उत्सव मनाया जाता है जिसे रोट उत्सव के नाम से जाना जाता है।

वर्तमान भारत के उत्तरप्रदेश में भी उनके नाम से एक स्थान का नाम गोरखपुर रखा गया है। दक्षिण पश्चिम तथा दक्षिण पूर्व में भी उनकी शिक्षाएं एवम् उनके चमत्कार की महिमा प्रचलित है।

नेपाल में उनके नाम पर गोरखा नामक एक राज्य और जिला स्थित है जिसके निवासी गोरखा जनजाति कहलाते है।

कई स्थानों पर उनके भव्य मंदिर स्थापित किए गए है जिनमे श्रद्धालु अटूट भक्ति और विश्वास के साथ पूजा अर्चना करते है।

गोरखनाथ जी के शिष्य :-

उनके दो शिष्यों को प्रधानतम माना जाता है :

1 गहिनीनाथ 2 चरपटीनाथ

इनके अलावा जालंधर नाथ, चौरंगी नाथ, गोपीचंद, निवृतिनाथ, इत्यादि का उल्लेख मिलता है।

नवनाथ परंपरा तथा सिद्ध परंपरा :-

तिब्बती और बौद्ध परंपराओं में 84 सिद्धों और 9 नाथों का वर्णन पाया जाता है जिनमें गुरु गोरखनाथ और मत्स्येंद्रनाथ का भी नाम आता है।

9 नाथों के नामों इस प्रकार बताए गए हैं

मछेंद्रनाथ

भ्रतृनाथ

कानीफानाथ

गोरखनाथ

चरपटिनाथ

नागेशनाथ

जलंधरनाथ

गहनीनाथ

रेवानाथ

गोरखनाथ की रचनाएं :-

गोरखनाथ जी को हिंदी साहित्य का प्रारंभकर्ता माना जाता है। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत में कई रचनाएं प्रस्तुत की जिनमें गोरक्ष कल्प, गोरक्ष गीत, योगचिंतामनी इत्यादि का नाम सम्मिलित है।

निष्कर्ष :- महायोगी गुरु गोरखनाथ जी दैवीय शक्तियों से सज्जित, तप और योग बल से लौकित महापुरुष तथा संत थे जिन्होंने इस भारत भूमि पर धर्मरक्षार्थ और मानव कल्याण के लिए अवतार लिया था। उन्होंने दक्षिण से लेकर हिमालय तक यात्राएं की तथा अपनी शिक्षाओं का प्रचार प्रसार किया।

उनके शिक्षा तथा मार्गदर्शन के फलस्वरूप समाज से स्त्री–भोग और व्यभिचार की भावना में कमी आई, स्त्री सम्मान जागृत हुआ, शैव धर्म की महिमा का प्रचलन बढ़ा। उन्होंने योगमार्ग से संसार को परिचित कराया। हठ मार्ग और सिद्ध सिद्धांत पद्धति का प्रचार प्रसार किया।

इसके अलावा उन्होंने 36 तत्वों का वर्णन किया है जिसमें परम शिव, शक्ति, ईश्वर, माया, शुद्ध विद्या इत्यादि का उल्लेख मिलता है। इन्होंने पिंड ब्राह्मणवाद की धारणा से भी अवगत कराया जिसके अनुसार यह कहा जाता है कि जो ब्रह्मांड में विद्यमान है वही हमारे शरीर में भी उपस्थित है। उन्होंने जीवन मुक्ति को ही आदर्श स्थिति बताया है। उन्होंने संयम और ब्रह्मचर्य के पालन पर जोर दिया है तथा जीवन में गुरु की महत्ता का महिमामंडन किया है।

सिद्धयोगी गुरु गोरखनाथ जो स्वयं भगवान शिव के अवतार थे वे चारों युगों में अवतरित होकर अपनी शिक्षाओं से मानव का कल्याण करते रहे थे।

वे अनादि एवम अनंत है। उनके मृत्यु का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। ऐसा माना जाता है कि वे आज भी सूक्ष्म कणों में विद्यमान हैं और अपने भक्तों का मार्गदर्शन करते है और उनके लिए प्रेरणा स्त्रोत बने हुए है। उनकी जीवनी और उनके उपदेश सभी को मुक्ति का मार्ग प्रसस्त करते है तथा अपने मानव जीवन को उचित कर्मों और धर्म के पालन से सार्थक बनाने का ज्ञान प्रदान करते है।

- www.gayanpunji.com से साभार

***

संत मीरा बाई

(कृष्ण भक्त)

नाम	:	मीराबाई
अन्य नाम	:	मीरा, मीरा बाई
जन्म	:	1498 ई.
जन्म स्थान	:	कुड़की ग्राम, मेड़ता, राजस्थान

मृत्यु	:	1546 ई.
मृत्यु स्थान	:	रणछोड़ मंदिर, द्वारिका, गुजरात
माता	:	वीर कुमारी
पिता	:	रत्नसिंह राठौड़
दादाजी	:	राव जोधा
पति	:	राणा भोजराज सिंह

रचनाएं –

नरसीजी का मायरा, राग गोविन्द, राग सोरठ के पद, गीतगोविन्द की टीका, मीराबाई की मल्हार, राग विहाग एवं फुटकर पद, तथा गरवा गीत

ब्रजभाषा (राजस्थानी, गुजराती, पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी का प्रभाव)

जीवन परिचय –

मीराबाई का जन्म सन् 1498 ई0 के लगभग राजस्थान में मेड़ता के पास चौकड़ी ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम रत्नसिंह था तथा वे जोधपुर–संस्थापक राव जोधा की प्रपौत्री थीं। बचपन में ही उनकी माता का निधन हो गया था ; अत: वे अपने पितामह राव जोधा जी के पास रहती थीं।

प्रारम्भिक शिक्षा भी उन्होंने अपने दादाजी के पास रहकर ही प्राप्त की थी। राव जोधा जी बड़े ही धार्मिक एवं उदार प्रवृत्ति के थे जिनका प्रभाव मीरा के जीवन पर पूर्णरूपेण पड़ा था। बचपन से ही मीराबाई कृष्ण की आराधिका थीं।

मीरा बाई का विवाह उदयपुर के राणा साँगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। विवाह के कुछ ही समय बाद उनके पति की मृत्यु हो गयी। इसके पश्चात् इनकी भक्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती गई।

मीरा बाई मंदिरों में जाकर वहां मौजूद कृष्णभक्तों के सामने कृष्णजी की मूर्ति के

आगे नाचती रहती थीं। वे कृष्ण को ही अपना पति कहती थीं और लोक–लाज खोकर कृष्ण के प्रेम में लीन रहती थीं। मीराबाई का नाचना और गाना राज परिवार को अच्छा नहीं लगा। राज परिवार ने कई बार मीराबाई को विष देकर मारने की कोशिश की।

अंततः परेशान होकर मीराबाई पहले वृंदावन और फिर द्वारका की ओर चली गई। मीरा की मृत्यु द्वारका में सन् 1546 ई0 के आसपास मानी जाती है।

साहित्यिक परिचय

मीराबाई बचपन से ही कृष्ण की भक्त थीं। गोपियों की भाँति मीरा माधुर्य भाव से कृष्ण की उपासना करती थीं। मीराबाई की अधिकांश रचनाएँ उनके कृष्ण प्रेम से ओत–प्रोत हैं। बचपन से ही अपना अधिक समय संत–महात्माओं के सत्संग में व्यतीत करती थीं। मन्दिर में जाकर अपने आराध्य की प्रतिमा के समक्ष मीराबाई आनन्द – विह्वल होकर नृत्य करती थीं। उनका इस प्रकार का व्यवहार उदयपुर की राजमर्यादा के प्रतिकूल था; अत: परिवार के लोग उनसे रुष्ट रहते थे।

रचनाएँ एवं कृतियाँ –

मीरा जिन पदों को गाती थीं तथा भाव–विभोर होकर नृत्य करती थीं, वे ही गेय पद उनकी रचना कहलाए। 'नरसीजी का मायरा', 'राग गोविन्द', 'राग सोरठ के पद', 'गीतगोविन्द की टीका', 'मीराबाई की मल्हार', 'राग विहाग' एवं फुटकर पद, तथा 'गरवा गीत' आदि मीरा की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

मीरा की फुटकल रचनाओं और पदों का संग्रह मीराबाई की पदावली नाम से किया गया है। इसके रुकमणी मंगल, नरसी जी का मायरा, फुटकर पद, मीरा की गरबी, मलार राग, नरसिंह मेडता की हुंडी, सुधा – सिन्धु आदि प्रमुख भाग हैं।

काव्य शैली या भाषा शैली –

मीराबाई के काव्य में उनके हृदय की सरलता, तरलता तथा निश्छलता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। मीराबाई ने गीति काव्य की रचना की तथा उन्होंने कृष्णभक्त कवियों की परम्परागत पदशैली को अपनाया। मीराबाई के सभी पद संगीत के स्वरों में बँधे हुए हैं। उनके गीतों में उनकी आवेशपूर्ण आत्माभिव्यक्ति मिलती है। प्रियतम के समक्ष आत्म–समर्पण की भावना तथा तन्मयता ने उनके काव्य को मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक बना दिया है।

कृष्ण के प्रति प्रेमभाव की व्यंजना ही मीराबाई की कविता का उद्देश्य रहा है। मीरा जीवन–भर कृष्ण की वियोगिनी बनी रहीं। उनके काव्य में हृदय की आवेशपूर्ण विह्वलता देखने को मिलती है। मीरा की काव्य–भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा के निकट है तथा उस पर राजस्थानी, गुजराती, पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उनकी काव्य–भाषा अत्यन्त मधुर, सरस और प्रभावपूर्ण है। पाण्डित्य–प्रदर्शन करना मीरा का कभी भी उद्देश्य नहीं रहा। कृष्ण के प्रति उनके अगाध प्रेम ने ही उन्हें कृष्णकाव्य के समुन्नत स्थल तक पहुँचाया।

इनकी रचनाओं में श्रंगार रस का प्रयोग प्रमुखता से किया गया है। इन्होंने वियोग श्रंगार तथा कहीं–कहीं शांत रस का भी प्रयोग किया है। इनके गेय पदों में कई रागों एवं छंदों का प्रयोग किया गया है।

भाव पक्ष और कला पक्ष –

पाण्डित्य–प्रदर्शन करना मीराबाई का कभी भी उद्देश्य नहीं रहा । कृष्ण के प्रति उनके अगाध प्रेम ने ही उन्हें कृष्णकाव्य के समुन्नत स्थल तक पहुँचाया। मीराबाई के काव्य में उनके हृदय की सरलता, तरलता तथा निश्छलता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

भाव पक्ष –

मीराबाई ने गोपियों की तरह कृष्ण को अपना पति माना और गोपियों की ही भाँति मीरा माधुर्य भाव से कृष्ण की उपासना करती थीं। मीरा का जीवन कृष्णमय था और सदैव कृष्ण भक्ति में लीन रहती थी। मीरा ने मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई, जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई। कहकर पूरे समर्पण के साथ भक्ति की । मीरा के काव्य में विरह की तीव्र मार्मिकता पाई जाती है। विनय एवं भक्ति संबंधी पद भी पाए जाते हैं। मीरा के काव्य में श्रृंगार तथा शांत रस की धारा प्रवाहित होती है।

कला पक्ष –

मीराबाई कृष्ण भक्त थी । काव्य रचना मीरा का कभी भी उद्देश्य नहीं रहा, इसलिए मीरा का कला पक्ष अनगढ़ है साहित्यिक ब्रजभाषा होते हुए भी उन पर राजस्थानी, गुजराती भाषा का विशेष प्रभाव है। मीराबाई ने गीति काव्य की रचना की तथा उन्होंने कृष्णभक्त कवियों की परम्परागत पदशैली को अपनाया। मीराबाई के सभी पद संगीत के स्वरों में बँधे हुए हैं। उनके गीतों में उनकी आवेशपूर्ण आत्माभिव्यक्ति मिलती है। संगीतात्मक प्रधान है श्रंगार के दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है। सरलता और सहायता ही मीरा के काव्य के विशेष गुण हैं।

पदावली –

मीराबाई की पदावली आज भी बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित है–

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, अरुण तिलक दिए भाल।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति, नैना बने बिसाल।
अधर – सुधा–रस मुरली राजत, उर बैजंती – माल।।
छुद्र घंटिका कटि–तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।

मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल।।1।।

पायो जी म्हैं तो राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।
जनम जनम की पूँजी पायी, जग में सभी खोवायो।
खरचैं नहिं कोई चोरं न लेवै, दिनदिन बढ़त सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख- हरख जस गायो।।2।।

माई री, मैं तो लियो गोविन्दो मोल।
कोई कहै छाने, कोई कहै चुपके, लियो री बजन्ता ढोल।।
कोई कहै मुँहधो, कोई कहै मुँहधो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल।।
याही कूँ सब जाणत हैं, लियो री आँखी खोल।
मीरा कूँ प्रभु दरसण दीन्यौ, पूरब जनम कौ कौल।।3।।

मैं तो साँवरे के रंग राँची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुघरू, लोक-लाज तजि नाँची।।
गई कुमति लई साधु की संगति, भगत रूप भई साँची।।
गाय - गाय हरि के गुण निसदिन, काल ब्याल सँ बाँची।।
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची।।
मीरा श्री गिरधरन लाल सूँ, भगति रसीली जाँची।।4।।

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।।
तात मात भ्रात बन्धु, आपनो न कोई ।।

छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिंग बैठि – बैठि, लोक–लाज खोई।।
असुवन जल सींचि–सींचि, प्रेम–बेलि बोई।।
अब तो बेल फैल गई, आणंद फल होई ।।
भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोई।।5।।

– मीराबाई, 'सुधा–सिन्धु' से

श्रृंगार के दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है। सरलता और सहजता ही मीरा के काव्य के विशेष गुण है।

पदावली : बसो मेरे नैनन में नंदलाल, मोर मुकुट मकराकृत कुंडल अरुण तिलक दिए भाल ।

मोहिनी मूरत साँवरी सूरती नैना बने बिसाल ।
अधर :सुधा .रस मुरली राजत.उर वैजयंती माल ।
छुद्र घटिका का कटी तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भवत कहाल गोपाल ।।1।।
पायो जी मैंने राम रतन धन पायो,
वस्तु अमोलक दी मोरे सतगुरु किरपा कर अपनाओ।
जनम जनम की पूँजी पायी, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहीं कोई चोरं न लेवै, दिन दिन बढ़त सावायो।
सत् की नाव खेवटिया सद्गुरु, भाव सागर लू आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर ,हररबंदरख जस गायो।।2।।
माई री ,मैं तो लियो गोविंद मोल।
कोई कहै छाने ,कोई कहै चुपके ,लियो री बजला ढोल ।।
कोई कहै मुंह धो ,कोई कहे मुंह धो, लियो री तराजू तोल ।
कोई कहै कारो ,कोई कहै गोरो लियो री अमोलक मोल।।

यारी कूं सब जानत है ,लियो री आंखी खोल।
मीरा कूं प्रभु दरसण दीन्यों, पूरब जनम कौ कौल ।।3।।
मैं तो साँवर रंग राँची।
साजि सिंगार बांधि पग घुंघरू लोक लाज तजि नाँची। ।
गई कुमति लई साधु की संगति ,भगत रूप भई साँची ।।
गाय गाय हरी के गुण निसदिन काल ब्याल से बाँची।।
उस बिन सब जग खारो लगत और बात सब काँची ।
मीरा श्री गिरधरन लाल सूँ भगति रसीली जाँची।।4।।
मेरे तो गिरधर गोपाल ,दूसरो न कोई ।
जाके सर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।
तात मात भ्रात बंधु अपनों ना कोई।।
छाँडि दई कुल की कानि झूठा करि,है कोई।।
संतन ढिंग दैठि बैठि,लोक लाज खोई।।
असुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई ।।
अब तो बेल फेंक गई ,आणंद फल होई। ।
भगति देखि राजी हुई जगत देखि रोई ।।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोई। ।

–मीराबाई, सुधा सिंधु से

✻ मीराबाई के आध्यात्मिक गुरु संत रैदास (रविदास) थे मीरा थे। दादाजी राव जोधा साधु संतों का बड़ा सम्मान करते थे। एक बार उनके दरबार में रविदास नाम के एक संत पधारे हैं ,जिनके हाथों में कृष्ण की प्रतिमा देखकर मीरा उसको पाने की जिद करने लगी उस संत रविदास ने उनको वह प्रतिमा नहीं दी। परंतु दूसरे दिन वह फिर दरबार में पधारे और उनको प्रतिमा दे दी ।और रविदास ने बताया कि स्वयं श्री कृष्ण ने सपने में आकर मुझसे कहा मेरे सबसे प्रिय भक्तों को प्रतिमा क्यूं नहीं दी ,मीरा मेरे विरह में रो रही है, उठो और उसको

यह प्रतिमा दे दो ।रविदास ने कहा मैं अपने स्वामी की आज्ञा कैसे टाल सकता हूँ। इसलिए प्रतिमा दे रहा हूँ। कुछ विद्वानों का मत है,कि यह कहानी केवल कल्पना नहीं अपितु सत्य घटना है मीरा ने स्वयं अपने गीतों में कहा है, मेरा ध्यान हरि की ओर है और मैं हरि के साथ एक रूप हो गई हूँ।

* मैं अपना मार्ग स्पष्ट देख रही हूँ। मेरे गुरु रविदास ने मुझे गुरु मंत्र दिया है। हरि नाम ने मेरे हृदय में बहुत गहराई तक अपना स्थान जमा लिया है। मीराबाई के काव्य की विशेषता: मीराबाई के सभी पद मुक्तक काव्य शैली में है ।इनमें अधिकतर पद गेय है ।

इनकी पदावली एक दूसरे से भिन्न है, इनमें कथावस्तु का अभाव है जो मुक्तक काव्य की विशेषता होती है। मुक्तक काव्य के लिए गहरी सोच और अनुभूति का होना आवश्यक समझा जाता है जो इनकी पदावली में प्रचुर मात्रा में है। मीरा के कृष्ण के विरह की झलक उनके पदों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कृष्ण के प्रति उनका प्रेम इतना तीव्र था कि वह संसार की सभी वस्तुओं को भूल गई थी। हंसते, गाते ,रोते ,नाचते सदा ही कृष्ण की धुन में रहती थी ।

Mycology,ng.in से साभार

मीरा के कुछ प्रमुख भजन:

* बरसों बाद बावरी बलमा मोहन.
* सांवरे मोहन गिरधारी
* मीरा बढायो और राधा रानी.
* बालम नन्ही छेड़ा जाई .
* म्हारी आतमा तुम बिन आधारो नहीं जात.
* थारो रंगीले रूप मोहे श्याम रंग दे.
* पायो जी मेंने राम रतन धन पायो.

* मीरा के प्रभु गिरधर नागर.

* विनती सुनो मेरी मीरा नाथ दासी .

* चली रे चली रे सांवरिया .

मीराबाई के भक्तिमय जीवन में बहुत से चमत्कार हुए जो उनकी सच्ची भक्ति थे प्रकट करते थे। .इनमें से कुछ चमत्कार निम्नांकित है .

* कृष्णमूर्ति में विलीन किसी कथानाक के अनुसार मीराबाई मृत्यु के समय वृंदावन या द्वारका में थी –कहा जाता है कि उनकी मृत्यु के समय भगवान कृष्ण मूर्ति में विलीन हो गई !

* पशपोषणी –मंदिर कुछ कथाओं में लिखा है कि भगवान कृष्ण ने मीरा को पशुपोषणी मंदिर में प्रवेश करने की अनुमति दी थी और उन्हें अपने अंतिम समय तक रहने का आशीर्वाद दिया था।

* कांचनमंणी का आशीर्वाद .एक कथा के अनुसार मीरा ने भगवान से कांचनमंणी की मांग की ओर कर दुर्लभमणि भगवान ने उन्हें आशीर्वाद रूप में प्रदान की थी। वाणी की आशीर्वाद. मीरा की काव्यवाणी इतनी मधुर थी कि लोग मानते थे कि उनकी वाणी में भगवान ही उनके मुख से गा रहे हैं ।

* मृत्यु–अंत में ससुराल वालों से परेशान होकर मीरा ने श्री कृष्णा वृंदावन जाने का फैसला किया वहां कुछ साल रहने के बाद उन्होंने अंतिम समय द्वारका में बिताया सन 1540 ई के दौरान उनका निधन हुआ ऐसा कहा जाता है कि मीरा का निधन काफी चमत्कारी था निधन के समय वह कृष्णमूर्ति में विलीन हो गई लेकिन यह सिर्फ किवदंती है जो लोगों द्वारा बताई जाती है।

***

संत ज्ञानेश्वर महाराज

भागवत संप्रदायके प्रवर्तक (1275–1296)

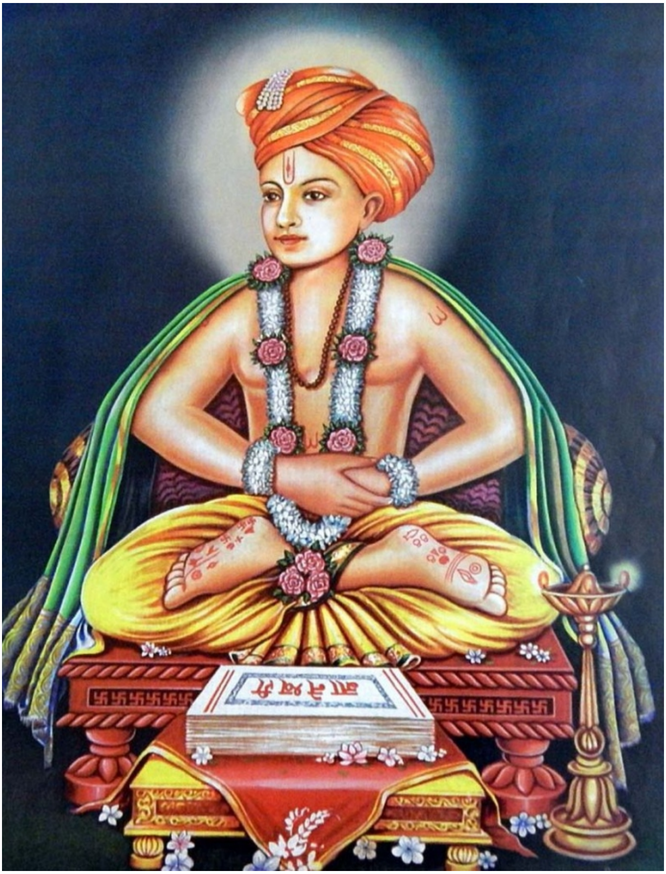

गुरु/शिक्षक	:	निवृत्तिनाथ
खिताब/सम्मान	:	सन्त
साहित्यिक कार्य	:	ज्ञानेश्वरी (भावार्थदीपिका), अमृतानुभव, हरिपाठ, अभंग भक्ति कविता
धर्म	:	हिन्दू
दर्शन	:	नाथ संप्रदाय, वारकरी, वैष्णव संप्रदाय

संत ज्ञानेश्वर महाराष्ट्र तेरहवीं सदी के एक महान सन्त थे। इन्होंने ज्ञानेश्वरी की रचना की। संत ज्ञानेश्वर की गणना भारत के महान संतों एवं मराठी कवियों में होती है। ये संत नामदेव के समकालीन थे और उनके साथ इन्होंने पूरे महाराष्ट्र का भ्रमण कर लोगों को ज्ञान–भक्ति से परिचित कराया और समता, समभाव का उपदेश दिया। वे महाराष्ट्र–संस्कृति के 'आद्य–प्रवर्तकों' में भी माने जाते हैं। शिष्य – सच्चीदानंद महाराज

संत ज्ञानेश्वर का जन्म सन 1275 ईसवी में महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में पैठण के पास गोदावरी नदी के किनारे आपेगाँव में श्रावण के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था। इनके पिता का नाम विट्ठल पंत एवं माता का नाम रुक्मिणी बाई था। इनके पिता उच्च कोटि के मुमुक्षु तथा भगवान् विट्ठलनाथ के अनन्य उपासक थे। विवाह के उपरांत उन्होंने संन्यास दीक्षा ग्रहण की थी, किंतु उन्हें अपने गुरुदेव की आज्ञा से फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना पड़ा। इस अवस्था में उन्हें निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव तथा सोपान नामक तीन पुत्र एवं मुक्ताबाई नाम की एक कन्या हुई। संन्यास–दीक्षा–ग्रहण के उपरांत इन संतानों का जन्म होने के कारण इन्हें 'संन्यासी की संतान' यह अपमानजनक संबोधन निरंतर सहना पड़ता था। विट्ठल पंत को तो उस समय के समाज द्वारा दी गई आज्ञा के अनुसार देहत्याग तक करना पड़ा था।

पिता की छत्रछाया से वंचित अनाथ भाई–बहन जनापवाद के कठोर आघात सहते हुए 'शुद्धिपत्र' की प्राप्ति के लिये उस समय के सुप्रसिद्ध धर्मक्षेत्र पैठन में जा पहुँचे। किम्वदंती प्रसिद्ध है : ज्ञानदेव ने यहाँ उनका उपहास उड़ा रहे ब्राह्मणों के समक्ष भैंसे के मुख से वेदोच्चारण कराया था। (गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित) इनके जीवन–परिचय के अनुसार – 1400 वर्ष के तपस्वी चांगदेव के स्वागत के लिए जाना था, उस समय जिस दीवार पर चारो भाई–बहन बैठे थे,उसी दीवार को उक्त संत के पास चला कर ले गये। मराठी गीत में यह घटना यों गाई जाती रही है–चालविली जड़ भिंती। हरविली चांगयाची भ्रान्ति। इनके इस

अलौकिक चमत्कार से प्रभावित हो पैठन (पैठण) के प्रमुख विद्वानों ने उन चारों भाई बहनों को शक संवत 1209 (सन् 1287) में 'शुद्धिपत्र' प्रदान कर दिया।

उक्त शुद्धिपत्र को लेकर ये चारों प्रवरा नदी के किनारे बसे नेवासे ग्राम में पहुँचे। ज्ञानदेव के ज्येष्ठ भ्राता निवृत्तिनाथ के नाथ संप्रदाय के गहनीनाथ से उपदेश मिला था। इन्होंने उस आध्यात्मिक धरोहर को ज्ञानदेव के द्वारा अपनी छोटी बहन मुक्ताबाई तक यथावत् पहुँचा दिया। इस प्रकार परमार्थमार्ग में कृतार्थ एवं सामाजिक दृष्टि से पुनीत ज्ञानदेव ने आबालवृद्धों को अध्यात्म का सरल परिचय प्राप्त कराने के उद्देश्य से श्रीमद्भगवद्गीता पर मराठी में टीका लिखी। इसी का नाम है भावार्थदीपिका अथवा ज्ञानेश्वरी। इस ग्रंथ की पूर्णता शक संवत 1212 नेवासे गाँव के महालय देवी के मंदिर में हुई। कुछ विद्वानों का अभिमत है– इन्होंने अभंग–वृत्त की एक मराठी टीका योगवासिष्ठ पर भी लिखी थी, पर दुर्भाग्य से वह अप्राप्य है।

उन दिनों के लगभग सारे धर्मग्रंथ संस्कृत में होते थे और आम जनता बहुत संस्कृत नहीं जानती थी, अस्तु तेजस्वी बालक ज्ञानेश्वर ने केवल 15 वर्ष की उम्र में ही गीता पर मराठी की बोलचाल भाषा में 'ज्ञानेश्वरी'नामक गीता–भाष्य की रचना करके मराठी जनता की उनकी अपनी भाषा तत्कालीन प्राकृत में उपदेश कर जैसे ज्ञान की झोली ही खोल दी। स्वयं टीकाकार ने लिखा है– अब यदि मैं गीता का ठीक–ठीक विवेचन मराठी (देशी) भाषा में करूं तो इस में आश्चर्य का क्या कारण है ...गुरु–कृपा से क्या कुछ सम्भव नहीं ?

इस ग्रंथ की समाप्ति के उपरांत ज्ञानेश्वर ने अपने राजनीतिक सिद्धांतों की स्वतंत्र विवेचना करनेवाले 'अमृतानुभव' नामक दूसरे ग्रंथ का निर्माण किया। इस ग्रंथ के पूर्ण होने के बाद ये चारों भाई–बहन पुणे के निकटवर्ती ग्राम आळंदी आ पहुँचे। यहाँ से इन्होंने योगिराज चांगदेव को 65 ओवियों (पदों) में जो पत्र लिखा वह महाराष्ट्र में 'चांगदेव पासष्ठी' नाम से विख्यात है।

ज्ञानदेव जब तीर्थयात्रा के उद्देश्य से आलंदी से चले उस समय इनके साथ इनके

भाई, बहन, दादी, तथा विसोवा खेचर, गोरा कुम्हार आदि अनेक समकालीन संत भी थे। विशेषतया नामदेव तथा ज्ञानदेव के आपसी संबंध इतने स्नेहपूर्ण थे कि ऐसा लगता था मानो इस तीर्थयात्रा के बहाने ज्ञान और कर्म दोनों तपस्वियों के भेस में साकार रूप धारण कर एकरूप हो गए हों। तीर्थयात्रा से लौटते हुए ज्ञानदेव पंढरपुर मार्ग से आलंदी आ पहुँचे। विद्वानों का अनुमान हैं कि ज्ञानदेव ने इसी काल में अपने 'अभंगों' की रचना की होगी।

बालक से लेकर वृद्धों तक को भक्तिमार्ग का परिचय करा कर भागवत–धर्म की पुनःस्थापना करने बाद ज्ञानदेव ने आलंदी ग्राम में अत्यंत युवा होते हुए भी जीवित समाधि लेने का निश्चय किया। मात्र 21 वर्ष तीन माह और पांच दिन की अल्पायु में वह इस नश्वर संसार का परित्याग कर समाधिस्थ हो गये। ज्ञानदेव के समाधिग्रहण का वृत्तांत संत नामदेव ने अत्यंत हृदयस्पर्शी शब्दों में लिखा है। अपने गुरु निवृत्तिनाथ को अंतिम वंदन कर ज्ञानदेव स्थितप्रज्ञ के समान समाधिमंदिर में जा बैठे। तदुपरांत स्वयं गुरु ने समाधिमंदिर की द्वारशिला बंद कर दी। ज्ञानेश्वर, जिन्हें ध्यानेश्वर भी कहा जाता है, ने यह जीवित समाधि ग्राम आलिंदी में संवत शके 1217 (वि. संवत 1353 (सन् 1296) की मार्गशीर्ष वदी (कृष्ण) त्रियोदशी को ली, जो पुणे के लगभग 14 किलोमीटर दूर अब एक प्रसिद्ध तीर्थ बन गया है।

प्रत्येक वर्ष आषाद कृष्ण नवमी को ज्ञानेश्वर महाराज की समाधी से लाखों भक्त उनकी पादुका लेकर पंढरपुर तक की लगभग 250 किलोमीटर की पेदल यात्रा करते हैं। आषाढ़ी एकादशी के दिन पंढरपुर में पहुचकर भगवान विट्ठल की आराधना करते हैं । यह पालखी सोहळा नाम से विख्यात है।

कृतियाँ – ज्ञानेश्वर जी की लिखी 'ज्ञानेश्वरी', 'अमृतानुभव', 'चांगदेव पासठी' तथा 'अभंग' जैसी कई कृतियाँ सर्वमान्य हैं। कुछ वर्ष पूर्व यह सिद्धांत उपस्थित किया गया था कि ज्ञानेश्वरी के लेखक तथा अभंग के रचयिता, एक ही नाम के दो भिन्न व्यक्ति हैं। किंतु अब अनेक पुष्ट आधारों से इस सिद्धांत का खंडन होकर यह

बात सर्वमान्य हो चुकी है कि ये रचनाएं व्यक्ति संत ज्ञानेश्वर/ ध्यानेश्वर की ही हैं।

अपने अभंगों में ज्ञानेश्वर ने तत्वचर्चा की गहराइयों को न नापते हुए अधिकार वाणी से साधारण जनता को आचारधर्म की शिक्षा दी है। फल यह हुआ कि बालकों से वृद्धों तक के मन पर यह अभंगवाणी पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित हुई। गुरुकृपा, नामस्मरण और सत्संग ये परमार्थपथ की तीन सीढ़ियाँ हैं, जिनका दिग्दर्शन संत ज्ञानेश्वर ने अपनी शिक्षाओं में मूलतः कराया है।

ज्ञानदेव जैस श्रेष्ठ संत थे वैसे ही वे श्रेष्ठ कवि भी थे। उनकी आध्यात्मिक साधना काव्यरस से आप्लावित है, उनकी कविता को दर्शन की गुरु–गंभीरता मिली है। यह सत्य है कि ज्ञानेश्वर की अभंगवाणी 'आप–बीती' जैसी होने के कारण उसमें जगह जगह रस–स्रोत दृष्टव्य रहे हैं, तथापि उनके ज्ञान की पूर्णता ज्ञानेश्वरी में ही हुई है। काव्य के दोनों अंगों, रस और अलंकार का ज्ञानेश्वरी में सुंदर समन्वय है।

तत्वविचार तथा काव्यसौंदर्य के समान ही महाराष्ट्र के पारमार्थिक जीवन में भी ज्ञानेश्वर ने जो कार्य किए वे सभी क्रांतिकारी थे। उन दिनों कर्मकांड का बोलबाला था, समाज का नेतृत्व करनेवाली पंडितों की परंपरा प्रभावहीन हो चुकी थी। ऐसी अवस्था में अध्यात्म–ज्ञान की महत्ता स्थापित करते हुए सर्वसाधारण मानव के आकलन योग्य भक्तिमार्ग का प्रतिपादन ज्ञानदेव ने किया। पंडितों के ग्रंथों तक सीमित रहनेवाला अध्यात्म दर्शन शूद्रादिकों के लिये भी सहज सुलभ हो, इसे ध्यान में रखते हुए' ज्ञानेश्वरी' की रचना की गई। 'नीच' समझे जाने वाले कुल में जन्म लेने के कारण मनुष्य को सामाजिक दृष्टि से कितना ही 'निम्न' क्यों न माना जाता हो, परंतु ईश्वर के यहाँ सभी को समान आश्रय मिलता है, इस सिद्धांत को प्रतिपादित करने का श्रेय ज्ञानेश्वर को है। महाराष्ट्र में इनके ग्रंथ ज्ञानेश्वरी को 'माउली' या माता भी कहा जाता है। दूसरे उपदेश एवं आश्वासन के कारण उस समय महाराष्ट्र की सभी जातियों में भगवद्भक्तों की एक पीढ़ी ही निर्मित हो गई और मराठी भावुक नर–नारी अपनी अपनी भाषा में पंढरपुर के भगवान पांडुरंग या विट्ठल की महिमा गाने लगे।

भगवान् केवल कठोर न्यायाधीश ही नहीं, अपितु सहजवत्सल पिता भी हैं। उनकी दृष्टि में एक माता की सी करुणा है– यह बात संपूर्ण महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर ने अपनी सादी–मधुर–भाषा में बतलाई। इसी कारण यहाँ पुनः एक बार भागवत धर्म की स्थापना हुई तथा इस संप्रदाय के प्रमुख धर्मग्रंथ के रूप में 'ज्ञानेश्वरी' की भी समान्यजन के बीच प्रतिष्ठा हुई। इसी के द्वारा स्फूर्ति प्राप्त कर अनेक भागवत कवियों ने मराठी भाषा में ग्रंथ–रचना की और भक्ति–मार्ग में एक समृद्ध काव्य–परंपरा का निर्माण किया इसीलिये ज्ञानदेव महाराष्ट्र–संस्कृति के आद्य–प्रवर्तक माने जाने लगे।

***

गुरु नानक

गुरु नानक	:	सिख धर्म के संस्थापक (1469–1539)
जन्म	:	गुरु नानक देव जी कार्तिक पूर्णिमा, संवत् 1527 अथवा 29 अक्तूबर 1469 राय भोई की तलवंडी, (वर्तमान ननकाना साहिब, पंजाब, पाकिस्तान, पाकिस्तान)

मौत	:	22 सितम्बर 1539 समाधि गुरुद्वारा दरबार साहिब, करतारपुर, पाकिस्तान
कार्यकाल	:	1469–1539
उत्तराधिकारी	:	गुरु अंगद देव
धर्म	:	सिख धर्म
जीवनसाथी	:	सुलक्खनी देवी
माता–पिता	:	लाला कल्याण राय (मेहता कालू जी), माता तृप्ता देवी जी के

नानक (कार्तिक पूर्णिमा 1469–22 सितंबर 1539) सिखों के प्रथम (आदि) गुरु हैं। इनके अनुयायी इन्हें नानक, नानक देव जी, बाबा नानक और नानकशाह नामों से सम्बोधित करते हैं। नानक अपने व्यक्तित्व में दार्शनिक, योगी, गृहस्थ, धर्मसुधारक, समाजसुधारक, कवि, देशभक्त और विश्वबन्धु – सभी के गुण समेटे हुए थे। इनका जन्म स्थान गुरुद्वारा ननकाना साहिब (2) अविभाजित भारत गुरुनानकजी दुनिया के मालिक है। पाकिस्तान में और समाधि स्थल करतारपुर साहिब पाकिस्तान में स्थित है।

इनका जन्म रावी नदी के किनारे स्थित तलवण्डी नामक गाँव में कार्तिकी पूर्णिमा को खत्री कुल में हुआ था। तलवण्डी पाकिस्तान में पंजाब प्रान्त का एक नगर है। कुछ विद्वान इनकी जन्मतिथि 29 अक्तूबर, 1469 मानते हैं। किन्तु प्रचलित तिथि कार्तिक पूर्णिमा ही है, जो अक्टूबर–नवम्बर में दीवाली के 15 दिन बाद पड़ती है। इनके पिता का नाम मेहता कालूचन्द खत्री ब्राह्मण तथा माता का नाम तृप्ता देवी था। तलवण्डी का नाम आगे चलकर नानक के नाम पर ननकाना पड़ गया। इनकी बहन का नाम नानकी था।

विद्यालय जाते हुए बालक नानक – बचपन से इनमें प्रखर बुद्धि के लक्षण दिखाई देने लगे थे। लड़कपन ही से ये सांसारिक विषयों से उदासीन रहा करते थे। पढ़ने–लिखने में इनका मन नहीं लगा। 7–8 साल की उम्र में स्कूल छूट गया

क्योंकि भगवत्प्राप्ति के सम्बन्ध में इनके प्रश्नों के आगे अध्यापक ने हार मान ली तथा वे इन्हें ससम्मान घर छोड़ने आ गए। तत्पश्चात् सारा समय वे आध्यात्मिक चिन्तन और सत्संग में व्यतीत करने लगे। बचपन के समय में कई चमत्कारिक घटनाएँ घटीं जिन्हें देखकर गाँव के लोग इन्हें दिव्य व्यक्तित्व मानने लगे। बचपन के समय से ही इनमें श्रद्धा रखने वालों में इनकी बहन नानकी तथा गाँव के शासक राय बुलार प्रमुख थे।

नानक के सिर पर सर्प द्वारा छाया करने का दृश्य देखकर राय बुलार का नतमस्तक होना

इनका विवाह बालपन मे सोलह वर्ष की आयु में गुरदासपुर जिले के अन्तर्गत लाखौकी नामक स्थान के रहनेवाले मूला की कन्या सुलक्खनी से हुआ था। 32 वर्ष की अवस्था में इनके प्रथम पुत्र श्रीचन्द का जन्म हुआ। चार वर्ष पश्चात् दूसरे पुत्र लखमीदास का जन्म हुआ। दोनों लड़कों के जन्म के उपरान्त 1507 में नानक अपने परिवार का भार अपने श्वसुर पर छोड़कर मरदाना, लहना, बाला और रामदास इन चार साथियों को लेकर तीर्थयात्रा के लिये निकल पडे। उन पुत्रों में से 'श्रीचन्द आगे चलकर उदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हुए।'(3)

उदासियाँ

गुरु नानक के पुत्र श्री चन्द्रमुनि द्वारा तपस्वियों का एक धार्मिक संप्रदाय उदासी सम्प्रदाय की स्थापना की गई।

गुरु नानाक देव जी की यात्राएँ

ये चारों ओर घूमकर उपदेश करने लगे। 1521 तक इन्होंने चार यात्रा चक्र पूरे किए, जिनमें भारत, अफगानिस्तान, फारस और अरब के मुख्य मुख्य स्थानों का भ्रमण किया। इन यात्राओं को पंजाबी में उदासियाँ कहा जाता है। (4)

गुरु नानक देव जी यात्रा, जिसे गुरु नानक की उदासी के नाम से भी जाना जाता है, सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव जी द्वारा की गई आध्यात्मिक यात्राओं

को संदर्भित करती है। उन्होंने एकता, समानता और ईश्वर के प्रति समर्पण का संदेश फैलाने के लिए बड़े पैमाने पर यात्रा की। यहाँ उनके मुख्य मार्गों का एक सामान्य अवलोकन दिया गया है, जिन्हें व्यापक रूप से चार उदासी के रूप में जाना जाता है।

पहली उदासी (1500–1506) प्राथमिक मार्ग: पंजाब से भारत के पूर्वी भागों तक। उल्लेखनीय स्थान: सुल्तानपुर, पानीपत, हरिद्वार, बनारस (वाराणसी), पटना, असम, बंगाल और ढाका।

1. पहली उदासी (1500–1506) पूर्वी भारत, प्रारंभिक बिंदु: सुल्तानपुर (पंजाब, भारत)

प्रमुख पड़ाव : पानीपत दिल्ली हरिद्वार अयोध्या प्रयागराज (इलाहाबाद) बनारस (वाराणसी) पटना पुरी (ओडिशा) असम, ढाका (बांग्लादेश), और अंत में पंजाब वापस आना। दूसरी उदासी (1506–1513) प्राथमिक मार्ग: दक्षिणी भारत। उल्लेखनीय स्थान: राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र (नांदेड़ सहित), आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और श्रीलंका (उन्होंने रामेश्वरम के रास्ते यात्रा की)।

2. दूसरी उदासी (1506–1513) – दक्षिणी भारत प्रारंभिक बिंदु: पंजाब, दक्षिण की ओर बढ़ते हुए प्रमुख पड़ाव: राजस्थान (अजमेर) गुजरात (सोमनाथ, द्वारका) महाराष्ट्र (नांदेड़) कर्नाटक तमिलनाडु (रामेश्वरम) श्रीलंका (जाफना, पुट्टलम), फिर उत्तर की ओर पंजाब लौटते हुए।

तीसरी उदासी (1514–1518) प्राथमिक मार्ग: हिमालय और तिब्बत की ओर उत्तर की ओर उल्लेखनीय स्थान: कश्मीर, नेपाल, ताशकंद, तिब्बत और लद्दाख। उन्होंने सुमेर पर्वत और कैलाश मानसरोवर सहित कई क्षेत्रों की यात्रा की।

3. तीसरी उदासी (1514–1518) – उत्तरी भारत और तिब्बत प्रारंभिक बिंदु: पंजाब, हिमालय की ओर बढ़ते हुए प्रमुख पड़ाव: हिमाचल प्रदेश जम्मू और

कश्मीर (श्रीनगर, लेह) नेपाल ताशकंद (उज्बेकिस्तान) तिब्बत, कैलाश मानसरोवर की यात्रा, और वापस पंजाब की ओर।

चौथी उदासी (1519–1521) प्राथमिक मार्ग: मध्य पूर्व की ओर पश्चिमी मार्ग। उल्लेखनीय स्थान: काबुल, बगदाद, मक्का और मदीना। इस यात्रा में अंतर–धार्मिक चर्चाएँ और पवित्र इस्लामी स्थलों की यात्रा शामिल थी।

4. चौथी उदासी (1519–1521) – मध्य पूर्व

प्रारंभिक बिंदु: पंजाब, पश्चिम की ओर मुख्य पड़ाव: पेशावर (पाकिस्तान) अफगानिस्तान (काबुल) ईरान इराक (बगदाद) सऊदी अरब (मक्का, मदीना) बगदाद से वापस पंजाब की ओर लौटना।

प्रत्येक उदासी अद्वितीय थी और शांति, प्रेम और समानता के आदर्शों को फैलाने के लिए गुरु नानक की प्रतिबद्धता को दर्शाती थी। उनकी यात्राएँ हज़ारों मील तक फैली हुई थीं, जिन्होंने पीढ़ियों को प्रेरित किया और कई क्षेत्रों में गहरा सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रभाव छोड़ा।

विवाद

भौगोलिक विवरण विवाद का विषय हैं, जिसमें आधुनिक विद्वता कई दावों के विवरण और प्रामाणिकता पर सवाल उठाते हैं। उदाहरण के लिए, कैलेवर्ट और स्नेल (1994) कहते हैं कि प्रारंभिक सिख ग्रंथों में ऐसी कहानियाँ नहीं हैं। जब यात्रा की कहानियां पहली बार गुरु नानक की मृत्यु के सदियों बाद उनके जीवनी संबंधी खातों में दिखाई देती हैं, तो वे समय के साथ–साथ और अधिक परिष्कृत होती जाती हैं, देर से चरण पुराणन संस्करण में चार मिशनरी यात्राओं का वर्णन किया गया है, जो मिहरबन संस्करण से भिन्न हैं।

गुरु नानक की व्यापक यात्राओं के बारे में कुछ कहानियाँ पहली बार 19वीं

शताब्दी की पुराणन जनमसाखी में दिखाई देती हैं, हालाँकि इस संस्करण में भी नानक की बगदाद की यात्रा का उल्लेख नहीं है। कैलेवर्ट और स्नेल (1993) के अनुसार, इस तरह के अलंकरण और नई कहानियों का सम्मिलन, उसी युग के सूफी तज़करों में पाए गए इस्लामी पीरों द्वारा चमत्कारों के निकट समानांतर दावे, यह विश्वास करने का कारण देते हैं कि ये किंवदंतियां एक कम्पिटिशन में लिखी गई हो सकती हैं।

विवाद का एक अन्य स्रोत बगदाद पत्थर रहा है, जिस पर एक तुर्की लिपि में एक शिलालेख है। कुछ लोग शिलालेख की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 1511-1512 में बाबा नानक फकीर वहां थे; दूसरों ने इसे 1521-1522 के रूप में पढ़ा (और यह कि वह अपने परिवार से 11 साल दूर मध्य पूर्व में रहे)। अन्य, विशेष रूप से पश्चिमी विद्वानों का तर्क है कि पत्थर का शिलालेख 19 वीं शताब्दी का है और पत्थर इस बात का विश्वसनीय प्रमाण नहीं है कि गुरु नानक 16 वीं शताब्दी की शुरुआत में बगदाद आए थे। इसके अलावा, पत्थर से परे, मध्य पूर्व में गुरु नानक की यात्रा का कोई सबूत या उल्लेख किसी अन्य मध्य पूर्वी पाठ या पुरालेख में नहीं पाया गया है। अतिरिक्त शिलालेखों के दावे किए गए हैं, लेकिन कोई भी उन्हें खोजने और सत्यापित करने में सक्षम नहीं है।

उनकी यात्राओं के बारे में उपन्यास के दावे, साथ ही उनकी मृत्यु के बाद गुरु नानक के शरीर के गायब होने जैसे दावे भी बाद के संस्करणों में पाए जाते हैं और ये सूफी साहित्य में उनके पीरों के बारे में चमत्कारिक कहानियों के समान हैं गुरु नानक की यात्रा के आसपास की किंवदंतियों से संबंधित सिख जनमसाखियों में अन्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उधार हिंदू महाकाव्यों और पुराणों और बौद्ध जातक कहानियों से हैं।

दर्शन –

नानक सर्वेश्वरवादी थे। मूर्तिपूजा: उन्होंने सनातन मत की मूर्तिपूजा की शैली के विपरीत एक परमात्मा की उपासना का एक अलग मार्ग मानवता को दिया।

उन्होंने हिन्दू पन्थ के सुधार के लिए इन्होंने कार्य किये। साथ ही उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थितियों पर भी दृष्टि डाली है। सन्त साहित्य में नानक उन सन्तों की श्रेणी में हैं जिन्होंने नारी को बड़प्पन दिया है।

हिन्दी साहित्य से सम्बन्ध –

हिन्दी साहित्य में गुरुनानक भक्तिकाल के अन्तर्गत आते हैं। वे भक्तिकाल में निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा से सम्बन्ध रखते हैं। उनकी कृति के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं कि– भक्तिभाव से पूर्ण होकर वे जो भजन गाया करते थे उनका संग्रह (संवत् 1661) ग्रन्थ साहब में किया गया है।

मृत्यु –

जीवन के अन्तिम दिनों में इनकी ख्याति बहुत बढ़ गई और इनके विचारों में भी परिवर्तन हुआ। स्वयं ये अपने परिवार वर्ग के साथ रहने लगे और मानवता कि सेवा में समय व्यतीत करने लगे। उन्होंने करतारपुर नामक एक नगर बसाया, जो कि अब पाकिस्तान में है और एक बड़ी धर्मशाला उसमें बनवाई। इसी स्थान पर आश्वन कृष्ण 10, संवत् 1597 (22 सितम्बर 1539 ईस्वी) को इनका परलोक वास हुआ।

मृत्यु से पहले उन्होंने अपने शिष्य भाई लहना को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया जो बाद में गुरु अंगद देव के नाम से जाने गए।

कविताएँ –

नानक भेदाभेद वादी कवि थे और साथ ही अच्छे सूफी कवि भी। उनके भावुक और कोमल हृदय ने प्रकृति से एकात्म होकर जो अभिव्यक्ति की है, वह निराली है। उनकी भाषा बहता नीर थी जिसमें फारसी, मुल्तानी, पंजाबी, सिंधी, खड़ी बोली, अरबी के शब्द समा गए थे।

रचनाएँ –

गुरु ग्रन्थ साहिब में सम्मिलित 974 शब्द (19 रागों में), गुरबाणी में शामिल है– जपजी, सोहिला, दखनी ओंकार, आसा दी वार, बारह माह

अन्य गुरु –

सिख सम्प्रदाय में दस गुरु हुए हैं16 जिसमें पहले गुरुनानक हैं तथा अन्तिम गुरु गोबिंद सिंह हुए हैं–

गुरु नानक देव, गुरु अंगद देव, गुरु अमर दास, गुरु राम दास, गुरु अर्जुन देव, गुरु हरगोबिन्द, गुरु हर राय, गुरु हर किशन, गुरु तेग बहादुर, गुरु गोबिंद सिंह

इनके जीवन से जुड़े प्रमुख गुरुद्वारा साहिब –

1. गुरुद्वारा कन्ध साहिब – बटाला (गुरुदासपुर) गुरु नानक का यहाँ बीबी सुलक्षणा से 16 वर्ष की आयु में संवत 1544 की 24वीं जेठ को विवाह हुआ था। यहाँ गुरु नानक की विवाह वर्षगाँठ पर प्रतिवर्ष उत्सव का आयोजन होता है।

2. गुरुद्वारा हाट साहिब– सुल्तानपुर लोधी (कपूरथला) गुरुनानक ने बहनोई जैराम के माध्यम से सुल्तानपुर के नवाब के यहाँ शाही भण्डार के देखरेख की नौकरी प्रारम्भ की। वे यहाँ पर मोदी बना दिए गए। नवाब युवा नानक से काफी प्रभावित थे। यहीं से नानक को 'तेरा' शब्द के माध्यम से अपनी मंजिल का आभास हुआ था। (16)

3. गुरुद्वारा गुरु का बाग– सुल्तानपुर लोधी (कपूरथला) यह गुरु नानकदेवजी का घर था, जहाँ उनके दो बेटों बाबा श्रीचन्द और बाबा लक्ष्मीदास का जन्म हुआ था।

4. गुरुद्वारा कोठी साहिब– सुल्तानपुर लोधी (कपूरथला) नवाब दौलतखान लोधी ने हिसाब–किताब में ग़ड़बड़ी की आशंका में नानकदेवजी को जेल भिजवा दिया। लेकिन जब नवाब को अपनी गलती का पता चला तो उन्होंने नानकदेवजी

को छोड़ कर माफी ही नहीं माँगी, बल्कि प्रधानमन्त्री बनाने का प्रस्ताव भी रखा, लेकिन गुरु नानक ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

5.गुरुद्वारा बेर साहिब– सुल्तानपुर लोधी (कपूरथला) जब एक बार गुरु नानक अपने सखा मर्दाना के साथ वैन नदी के किनारे बैठे थे तो अचानक उन्होंने नदी में डुबकी लगा दी और तीन दिनों तक लापता हो गए, जहाँ पर कि उन्होंने ईश्वर से साक्षात्कार किया। सभी लोग उन्हें डूबा हुआ समझ रहे थे, लेकिन वे वापस लौटे तो उन्होंने कहा– एक ओंकार सतिनाम। गुरु नानक ने वहाँ एक बेर का बीज बोया, जो आज बहुत बड़ा वृक्ष बन चुका है।

6. गुरुद्वारा अचल साहिब– गुरुदासपुर अपनी यात्राओं के दौरान नानकदेव यहाँ रुके और नाथपन्थी योगियों के प्रमुख योगी भांगर नाथ के साथ उनका धार्मिक वाद–विवाद यहाँ पर हुआ। योगी सभी प्रकार से परास्त होने पर जादुई प्रदर्शन करने लगे। नानकदेवजी ने उन्हें ईश्वर तक प्रेम के माध्यम से ही पहुँचा जा सकता है, ऐसा बताया।

7. गुरुद्वारा डेरा बाबा नानक– गुरुदासपुर जीवनभर धार्मिक यात्राओं के माध्यम से बहुत से लोगों को सिख धर्म का अनुयायी बनाने के बाद नानकदेवजी रावी नदी के तट पर स्थित अपने फार्म पर अपना डेरा जमाया और 70 वर्ष की साधना के पश्चात सन 1539 ई. में परम ज्योति में विलीन हुए।

8. ईसवी संवत 2019, सिक्खों के आदि गुरु , गुरुनानक जी, के जन्म का 550 प्रकाश पर्व या वर्ष है। 9 नवम्बर, 2019 (शनिवार) के दिन प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पंजाब के गुरदासपुर जिले के डेरा बाबा नानक चेकपोस्ट से गुरुनानक जी के पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त के नारोवाल जनपल में स्थित समाधि–स्थल पर निर्मित गुरुद्वारा करतारपुर साहिब या गुरुद्वारा दरबार साहिब को जोड़ने वाले 4.5 किलोमीटर लम्बे गलियारे के जरिये लगभग 500 तीर्थयात्रियों के पहले जत्थे को हरी झण्डी दिखाकर रवाना किया।

इन्हें भी देखें – 'गुरुग्रंथ' गुरुद्वारा

सिद्धांत : गुरु नानक के संदेश को संक्षेप में इस सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किए जा सकता है ।

ईश्वरी नाम पर अनुशासित ध्यान के माध्यम से मोक्ष, मोक्ष को मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र से बचकर ईश्वर के साथ रहस्यमय मिलन के रूप में समझा जाता है। ईश्वरीय नाम ईश्वर की संपूर्ण अभिव्यक्ति को दर्शाता है, एक एकता सत्ता जो सृजित दुनिया और मानव आत्म दोनों में व्याप्त है। ध्यान पूरी तरह से आंतरिक होना चाहिए और मूर्तियां, मंदिरों, मस्जिदों धर्म ग्रंथो और निर्धारित प्रार्थनाओं में जैसे सभी बाहरी साधनों को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर दिया जाना चाहिए। मुस्लिम प्रभाव अपेक्षाकृत काम है, हिंदू रहस्यवादी और भक्ति विश्वासों का प्रभाव कहीं अधिक स्पष्ट है। हालांकि हमेशा गुरु नानक की अपनी अभिव्यक्ति और सुसंगतता और सुंदरता प्रारंभिक सिख धर्म शास्त्र पर हावी रही है।

संदर्भ cite

1^weblarl-http:www.bbc.com/hindi/india-41868258L>

2^"Gurunanak jayandi2022/tiad abd dade-hindi"L>i:lemywap.in (अंग्रेजी में) 2022-03-10.अभिमत तिथि 2022-03-11

3^ आचार्य रामचंद्र शुक्ल(2013) हिंदी साहित्य का इतिहास (पुनमुर्द्रण संस्करण) इलाहाबाद :लोक भारती प्रकाशन पृष्ठ .55 आई.एस.बी.एन 978 -81-803 1- 201-4.

4^" गुरु नानक देवजी"zL>amarujala.अभिगमन तिथी2020-11-29.

5^The Hagiography of the s.khs,Development of the jahrm-sakhi traditions w.tt.meleod,p26 According totradition Hagiographyat writing in India callewaert L> ,

6^अआइईcollewaert&shell1994.पृष्ठ.प.26-9.

7^Lorebzeh1995,पृष्ठ.प.41-44

8^mcleod 2007,पृष्ठ.प.16-21.

9^menage 1979,पृष्ठ.प.16-21.

10^mcleod2004,पृष्ठ.प.127-31.
11^Lorehzeh1995.
12^oberat oberoi1995 पृष्ठ. 55.
13^callewaert &shell 1994 पृष्ठ. प.27-30.
14^आचार्य रामचंद्र शुक्ल (2013) हिंदी साहित्य का इतिहास (पुनमुर्द्रण संस्करण) इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन पृष्ठ .55 आई.एस.बी.एन. 978-81-8031-201-4,

***

झूलेलाल

वरुण देवता के अवतार

झूलेलाल/ दरिया लाल / उदेरो लाल / लाल साई / जिन्दा पीर नदी/ सिंध के इष्ट देव

संबंध	:	वरुण
अस्त्र	:	तलवार
सवारी	:	मछली और घोड़ा

झूलेलाल सिन्धी हिन्दुओं के उपास्य देव हैं जिन्हें 'इष्ट देव' कहा जाता है। उनके उपासक उन्हें वरुण (जल देवता) का अवतार मानते हैं। वरुण देव को सागर के देवता, सत्य के रक्षक और दिव्य दृष्टि वाले देवता के रूप में सिंधी समाज भी पूजता है।1 उनका विश्वास है कि जल से सभी सुखों की प्राप्ति होती है और जल ही जीवन है। जल–ज्योति, वरुणावतार, झूलेलाल सिंधियों के ईष्ट देव हैं जिनके बागे दामन फैलाकर सिंधी यही मंगल कामना करते हैं कि सारे विश्व में सुख–शांति, अमन–चैन, कायम रहे और चारों दिशाओं में हरियाली और खुशहाली बने रहे। चेट्रीचंडु जिसे झूलेलाल जयंती के नाम से भी जाना जाता है, यह सिंधी नव वर्ष की शुरुआत का प्रतीक है। यह तिथि हिंदू पंचांग पर आधारित है और चैत्र शुक्ल पक्ष के दूसरे दिन मनाई जाती है। (सिंधी भाषा में चैत्र को चेट्र कहते हैं) चेट्रीचंडु साईं उडेरोलाल का जन्मदिन भी है, जिन्हें झूलेलाल के नाम से जाना जाता है जो भगवान विष्णु के वरुणवतार माने जाते हैं। आयोलाल झूलेलाल की संक्षिप्त कथा इस प्रकार कही जाती है भगवान झूलेलाल की कथा के अनुसार, 11वीं सदी में जब सिंध प्रदेश में हिंदुओं पर तत्कालीन क्रूर बादशाह मिरख शाह का अत्याचार बढ़ा, और धर्मांतरण के लिए दबाव बढ़ा तब सिंध के मूल निवासी सिंधी जो हिन्दू धर्मावलंबी थे अपने धर्म रक्षा और प्राण रक्षा के लिए सिंधु नदी के किनारे पहुंचे, और प्रार्थना करने लगे, लगातार चालीस दिनों की प्रार्थना के बाद सिंधुनदी से झूलेलालजी मछली पर बैठकर प्रगट हुए. जब झूलेलाल साईं प्रगट हुए तब नदी के किनारे प्रार्थना कर रहे सिन्धियों ने उनके आने की खुशी और स्वागत में नारे लगाए आयो लाल, सभई चओ झूलेलाल जिसका अर्थ है झूलेलाल स्वामी आ गए, सभी बोलिए जय झूलेलाल, और तभी से सिंधी समाज उन्हें जल के देवता के रूप में पूजता आ रहा है. फिर झूलेलाल साईं नीले घोड़े पर सवार हो कर हाथ में तलवार और अस्त्र शस्त्र धारण कर बादशाह मिरख शाह के पास गए और उसको समझाया कि सभी को स्वधर्म का पालन करने का अधिकार है और जबरन धर्मांतरण या कोई भी दबाव गलत है, उनके दिव्य रूप से प्रभावित हो कर मिरख शाह झूलेलाल साईं का शरणागत हो

गया और नीति पूर्वक राजकाज करने लगा, इस प्रकार भगवान साईं झूलेलाल ने लोगों की रक्षा की. सिंधी अपने घरों में चालीस दिन तक मिट्टी की घाघर (मटकी) में जल भर कर रखते हैं और पूजा पाठ करते हैं, चालीस दिन बाद धूम धाम से कलश और झूलेलाल साईं की पालकी यात्रा निकाली जाती है जिसे बहराणा साहेब कहते हैं, और नदी तालाब झील में मटकी, झूलेलाल और जल देवता का पूजन कर मटकी विसर्जित की जाती है। भगवान झूलेलाल को आम तौर पर दाढ़ी वाले दिव्य रूप में दर्शाया जाता है. वे कमल के फूल पर पालथी मारे बैठे होते हैं, जो पल्ले (मछली) पर टिका होता है, मछली सिंधु नदी पर तैरती हुई दिखाई देती है. उनके पास एक पवित्र पुस्तक और एक माला भी होती है. वे मोर पंख वाला सुनहरा मुकुट पहनते हैं और शाही कपड़े पहनते हैं. भगवान झूलेलाल को उडेरोलाल, घोड़ेवारो, जिन्दपीर, लालसांईं, पल्लेवारो, ज्योतिनवारो, और अमरलाल आदि नामों से भी जाना जाता है. झूलेलाल चालीसा एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है हमारी पूजन विधि का, हम अपने आराध्य की कृपा पाने के लिए अनेकानेक प्रकार से सिमरन, हवन, पूजन,सत्संग,ध्यान आदि करते हैं। कई बार कई कारणों से हम ये सब नियमित नहीं कर पाते, ऐसे में हम बहुत थोड़े समय में बिना किसी सामग्री के भी चालीसा पाठ कर के अपना जीवन सफल बना सकते हैं। हम सिंधी लोग संपूर्ण विश्व में मूलतः विश्वबंधुत्व सरल और सहयोगी स्वभाव के साथ साथ स्वावलंबी और सर्वधर्म समभाव रखने वाले समाज के रूप में जाने जाते हैं। आदिशक्ति भगवान श्री हरि शिव, राम, कृष्ण, श्री झूलेलाल जी की प्रमुखता से पूजा की जाती है।सिंधियों के आराध्य देव भगवान झूलेलाल हैं जो वरुणावतार हैं। हम लोग वर्ष में एक बार चालीहा पूजन करते हैं जो चालीस दिनों तक चलता है, घरों और देवालयों में कलश स्थापना की जाती है जिसे घाघर कहते हैं इंटरनेट पर अनेक लोगों की पोस्ट की हुई झूलेलाल चालीसा उपलब्ध है, किंतु कई स्थानों पर त्रुटिपूर्ण मात्रा, वर्तनी (स्पेलिंग), अलंकरिक और व्याकरणीय दोष हैं, इसलिए मैंने मूल झूलेलाल चालीसा को शुद्ध स्वरूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।आशा है आप इससे

लाभ प्राप्त करेंगे। श्री झूलेलाल चालीसा दोहा जय जय जय जल देवता, जय जय ज्योति स्वरूप। अमर उडेरो लाल जय, श्री झूले लाल अनूप।। चौपाई रतनलाल रतनाणी नंदन । जयति देवकी सुत जग वंदन ।।1।। दरियाशाह वरुण अवतारी । जय जय लाल साईं सुखकारी ।।2।। जय जय होय धर्म की भीरा । जिंदल पीर हरे जन पीरा ।।3।। संवत दस सौ सात मंझारा । चैत्र शुक्ल द्वितिया के वारा ।।4।। ग्राम नसरपुर सिंध प्रदेशा । प्रभु अवतरे हरे जन क्लेशा ।।5।। सिन्धु वीर ठट्ठा रजधानी । मिरखशाह नृप अति अभिमानी ।।6।। कपटी कुटिल क्रूर कुविचारी । यवन मलिन मन अत्याचारी ।।7।। धर्मान्तरण करे सब केरा । दुखी हुए जन कष्ट घनेरा ।।8।। पिटवाया हाकिम ढिंढोरा । हो इस्लाम धर्म चहुँओरा ।।9।। सिन्धी प्रजा बहुत घबराई । इष्ट देव को टेर लगाई ।।10।। वरुण देव पूजे बहुभांति । बिन जल अन्न गए दिन राती ।।11।। सिंधु तीर तब दिन चालीसा । सब घर ध्यान लगाये ईशा ।।12।। गरज उठा नद सिंधू सहसा । चारों और उठा नव हरषा ।।13।। वरुणदेव ने सुनी पुकारा । प्रकटे वरुण मीन असवारा ।।14।। दिव्य पुरुष जल ब्रह्म स्वरुपा । कर पुस्तक नवरूप अनूपा ।।15।। हर्षित हुए सकल नर नारी । वरुणदेव की महिमा न्यारी ।।16।। जय जय कार उठी चहुँओरा । गई रात आई नव भोरा ।।17।। मिरख नृपौ जो अत्याचारी । नष्ट करूँगा शक्ति सारी ।।18।। दूर अधर्म करन भू भारा । शीघ्र नसरपुर में अवतारा ।।19।। रतनराय रतनाणी आँगन । आऊँगा उनका शिशु बन ।।20।। रतनराय घर खुशियां आई । अवतारे सब देय बधाई ।।21।। घर घर मंगल गीत सुहाए । झुलेलाल हरन दुःख आए ।।22।। मिरखशाह तक चर्चा आई । भेजा मंत्रि क्रोध अधिकाई ।।23।। मंत्री ने जब बाल निहारा । धीरज गया हृदय का सारा ।।24।। देखि मंत्री साईं की लीला । अति विचित्र मनमोहन शीला ।।25।। बालक दिखा युवा सेनानी । देख मंत्री बुद्धि चकरानी ।।26।। योद्धा रूप दिखे भगवाना । मंत्री हुआ विगत अभिमाना ।।27।। झुलेलाल दिया आदेशा । जा तव नऊपति कह संदेशा ।।28।। मिरखशाह कह तजे गुमाना । हिन्दू मुस्लिम एक समाना ।।29।। बंद करो नित अत्याचारा । त्यागो धर्मान्तरण विचारा ।।30।। लेकिन मिरखशाह

अभिमानी । वरुणदेव की बात न मानी ।।31।। एक दिवस हो अश्व सवारा । झुलेलाल गए दरबारा ।।32।। मिरखशाह ने आज्ञा दे दी । झुलेलाल बनाओ बन्दी ।।33।। किया स्वरुप वरुण का धारण । चारो और हुआ जल प्लावन ।।34।। दरबारी डूबे उतराये । नृपऊ के होश ठिकाने आये ।।35।। मिरख शाह तब शरणन आई । बोला धन्य धन्य जय साईं ।।36।। वापिस लिया नृपत आदेशा । दूर हुआ सब जन का क्लेशा ।।37।। संवत दस सौ बीस मंझारी । भाद्र शुक्ल चौदस शुभकारी ।।38।। भक्तों की हर विपदा व्याधि । जल में ली जलदेव समाधि ।।39।। जो जन धरे आज भी ध्याना । श्रीझूलेलाल करें कल्याणा ।।40।। ।। दोहा ।। चालीसा पाठ करे जो कोई उसका जीवन सुखमय होई। दिन चालीस करे व्रत जोई मनवांछित फल पावै सोई।। ।। ॐ श्री वरुण देवाय नमः ।। जेको चवंदो झूलेलाल। तहिंजा थींदा बेड़ा

झूलेलाल जी के अवतरण दिवस को सिंधी समाज चेटीचंड के रूप में मनाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार सिंध का शासक मिरखशाह अपनी प्रजा पर अत्याचार करने लगा था जिसके कारण सिंधी समाज ने कठिन जप, तप और साधना की। तब सिंधु नदी में से एक बहुत बड़े नर मत्स्य पर बैठे हुए भगवान झूलेलाल प्रकट हुए और कहा मैं 8 दिन बाद जन्म लेकर मिरखशाह के अत्याचारों से प्रजा को मुक्ति दिलाउंगा। चैत्र माह की द्वितीया को एक बालक ने जन्म लिया जिसका नाम उडेरोलाल रखा गया। अपने चमत्कारों के कारण बाद में उन्हें झूलेलाल, लालसांई, के नाम से सिंधी समाज और ख्वाजा खिज्र जिन्दह पीर के नाम से मुसलमान भी पूजने लगे। चेटीचंड के दिन श्रद्धालु बहिराणा साहिब बनाते हैं। शोभा यात्रा में 'छेज' (जो कि सिंध में डांडिया की तरह लोकनृत्य होता है) के साथ झूलेलाल की महिमा के गीत गाते हैं। ताहिरी (मीठे चावल), छोले (उबलेनमकीन चने) और शरबत का प्रसाद बांटा जाता है। शाम को बहिराणा साहिब का विसर्जन कर दिया जाता है।

भगवान झूलेलाल के प्रमुख संदेश –

- ईश्वर अल्लाह हिक आहे। ईश्वर अल्लाह एक हैं।
- कट्टरता छडे, नफरत, ऊंच–नीच एं छुआछूत जी दीवार तोड़े करे पहिंजे हिरदे में मेल–मिलाप, एकता, सहनशीलता एं भाईचारे जी जोत जगायो।

  विकृत धर्मांधता, घृणा, ऊंच–नीच और छुआछूत की दीवारें तोड़ कर अपने हृदय में भाईचारा मेल–मिलाप, एकता, सहिष्णुता, और सर्वधर्म समभाव के दीप जलाओ।

- सभनि हन्द खुशहाली हुजे। सब जगह खुशहाली हो।
- सजी सृष्टि हिक आहे एं असां सभ हिक परिवार आहियूं।

  सारी सृष्टि एक है, हम सब एक परिवार हैं।

***

सिंधी समाज के प्रमुख संत

सम्पूर्ण सृष्टि के रचयिता परम पिता परमात्मा अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति मानव को नर से नारायण बनाने के लिए, श्रेष्ठ मुक्तिदायी मार्ग पर चलाने के लिए मार्गदर्शक के रूप में संतों/महात्माओं को इस धरती पर भेजते हैं। ये पूज्य संत प्रभु संदेश के वाहक हैं। वे परमात्मा के देवदूत हैं। प्रभु की रोशन मशालें हैं जिनके प्रकाश में मनुष्य सत्य के मार्ग पर चलकर अपने परम लक्ष्य को, मोक्ष को प्राप्त कर सकता

है। यह सत्य है कि संत/महात्मा किसी एक समुदाय के नहीं होते। वे तो सम्पूर्ण मानव जाति; यहां तक कि चर–अचर सम्पूर्ण विश्व के होते हैं। फिर भी भाषा, स्थल, सरलता आदि की दृष्टि से कुछ समुदाय में उनकी मान्यता अधिक होती है। इसी कारण उन्हें उस समुदाय विशेष से जोड़कर देखा जाता है।

हर समाज में अनेक श्रेष्ठ संत–महात्मा हुए हैं जैसे कि सूरदास, तुलसीदास, ज्ञानदेव, तुकाराम, समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहंस आदि। उन्होंने स्वयं तो परमात्मा का साक्षात्कार किया ही, जन–मानस को भी उसी मार्ग पर ले गए जो सब से अधिक महत्वपूर्ण बात है। इसी प्रकार सिंधी समाज में भी ऐसे महान संत हुए। उन्होंने भी सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए कार्य किया। जनमानस को आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार कराया। सिंधी समाज में ऐसे अनेक संत हुए हैं जिनके आगे श्रद्धा से स्वयं सिर झुक जाता है। सभी संतों के बारे में लिखें तो कई ग्रंथ रचने पड़ेंगे। यहां केवल कुछ प्रमुख संतों की संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है।

वेदांती संत एवं कवि 'सामी'

सिंधु नदी का तट एवं सिंध भूमि वेदांत एवं सनातन धर्म की भूमि मानी जाती है। वेद सृष्टि के संपूर्ण ज्ञान के मूल माने जाते हैं। उसी वेद ज्ञान से ही सनातन धर्म की स्थापना हुई। सिंध भूमि पर सब से पहले वेद मंत्रों का स्वर गूंजा। वेदों की इस वाणी को सिंधी समाज को उनकी ही मातृभाषा सिंधी में सुनाने वाला संत कवि था 'सामी।' उनका जन्म सिंध के शिकारपुर में वर्ष 1743 में हुआ। 'सामी' का मूल नाम भाई बचेलाल चैनराइ बचोमल लुब्ड था। बचपन से ही चैनराइ का झुकाव आध्यात्मिकता की ओर था। उनके गुरु सामी मेघराज थे। गुरु के सानिध्य में उन्होंने संस्कृत में महारत हासिल की। वेदों, उपनिषदों, गीता, रामायण, भागवत आदि ग्रंथों का गहरा अध्ययन किया। 'सामी' वेदों का यह कल्याणकारी ज्ञान सामान्य सिंधी समाज तक पहुंचाना चाहते थे। लेकिन संस्कृत सभी नहीं जानते थे। इसलिए 'सामी' वेद–ज्ञान को जनसाधारण की

भाषा सिंधी में देना चाहते थे। अतः वेद–ज्ञान के हजारों श्लोकों को उन्होंने सिंधी में रचा और इस ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाया। उनका आध्यात्मिक ज्ञान असाधारण था। वे मानते थे कि सभी क्रियाशील शरीरों में एक ऐसा तत्व है जो पंचतत्वों के शरीर को क्रियाशील रखता है। वह तत्व है आत्मा। वह निकल जाने से शरीर निष्क्रिय हो जाता है। सब में आत्मा समान रूप से है ; यह समझ में आने पर समानता के भाव जागृत होते हैं। राग, द्वेष, मोह सब मिट जाते हैं। 'सामी' कहते हैं–

बिन आत्मज्ञान, ममता ना मिटे मन की
चाहे सब साधन कटें, पढ़ें वेद पुराण,
गीता में भगवान, अर्जुन को यूं कहा।

'सामी' कहते हैं कि इस चल–अचल को संचालित करने वाली परमशक्ति ही परमात्मा है। वे इसे समझाते हुए श्लोक में लिखते हैं कि समुद्र में हजारों बुलबुले उठते हैं, वे फूटकर उसी में समाते हैं। वे बुलबुले पहले भी पानी थे और बाद में भी पानी हो गए। इसी प्रकार सर्वव्यापक वह शक्ति है जिसमें से सब कुछ प्रकट होकर उसी में समा जाता है।

सामी जी कहें हे सतगुरु, कहां से जगत हुआ?
यह और कुछ नहीं हुआ, पानी बुदबुदा पानी सिवाय

संत भगत कंवर राम

संत भगत कंवर राम ऐसे महान संत थे, जिन्होंने अक्षरश: अपना सर्वस्व, अपनी हर सांस तक प्रभु चरणों में समर्पित कर दी थी। उनका जन्म वैशाख मास के दि. 8 विक्रम संवत 1942 अर्थात सन 1885 में सिंध के एक साधारण परिवार में हुआ। बचपन से ही परमात्मा के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति थी। उनके स्वर में कमाल का जादू था। उनके स्वर–माधुर्य एवं भक्ति से प्रभावित होकर गुरु संत सत्यराम दास ने उन्हें गुरु मंत्र दिया था। सिंधी समाज के भक्ति मार्ग में अमृत डालने की महान प्रभावी परंपरा है, कंवर राम उसके सर्वश्रेष्ठ संत माने जाते हैं।

जब आप भगत (साग्रसंगीत आराधना) करते थे तो आपके स्वर एवं नृत्य के प्रभाव से लोगों पर ऐसा जादू छा जाता था कि लोग पूरी-पूरी रात बैठे रहते थे। किसी का भी उठने का मन नहीं करता था। वे बड़े चमत्कारिक संत थे, लेकिन रत्ती भर भी चमत्कार दिखाने की इच्छा नहीं रखते थे। उनका बच्चों को बाहों में लेकर झूला झुलाते हुए लोरी गाना सारे सिंध में प्रसिद्ध था। जिन बच्चों को ऐसी लोरी मिल जाए, लोग उन बच्चों को और उनके मां-बाप को भाग्यशाली समझते थे।

एक बार एक मां ने अपना मृत बालक कपड़े में लपेट कर संत की गोद में दे दिया। लोरी के बाद कंवर राम ने बच्चा मां को वापस किया। मां ने बच्चे की ओर देखकर कहा- भगत जी यह बच्चा तो हिलता-डुलता नहीं है। संत कंवर राम समझ गए। उन्होंने बच्चा फिर गोद में लिया, प्रभु प्रार्थना की 'प्रभु मेरी लाज रखो' और लोरी गाने लगे। चमत्कार हो गया; बच्चे की किलकारी की आवाज सुनाई दी। उन्होंने बच्चा महिला को लौटा दिया और कहा, 'फिर किसी संत की ऐसी परीक्षा मत लेना।' उस दिन से बच्चों को लोरी तो देते थे, लेकिन बच्चा गोद में नहीं लेते थे। उन्होंने एक कुष्ठ रोगी को भी ईश्वर नाम देकर एवं हवन की राख देकर ठीक किया था। उनके गीतों को 'हिज मास्टर्स वॉयस' वालों ने जगह-जगह जाकर रिकॉर्ड किया था, जो सिंधी समाज की धरोहर है। वैष्णवों का गीत 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाणे रे' संत कंवर राम पर शत-प्रतिशत ठीक बैठता है। वे एक बार किसी कार्यक्रम में जाने के पूर्व भोजन कर रहे थे। बीच भोजन में ग्रास हाथ से छूट गया। संत कंवर राम ने थाली छोड़ दी और कहा कि यही मेरे जीवन का अंतिम भोजन था। उसी दिन रेलवे गाड़ी में बैठकर वे कार्यक्रम के लिए जा रहे थे तो रुकु स्टेशन पर दो मुसलमानों ने उन पर कई गोलियां चलाईं। 9 नवंबर 1939 को वहीं संत भगत कंवर राम शहीद हो गए।

साधु टी. एल. वासवाणी

दादा वासवाणी महान निष्काम कर्मयोगी थे। संसार से विरक्त थे। सब कुछ होते

हुए भी उन्होंने संन्यास धारण किया। महान ज्ञानी थे। उसी परमार्थ ज्ञान से लोगों को प्रभु भक्ति में लगाते थे, साथ ही सैकड़ों सेवा कार्य एवं विशेष रूप से शिक्षा के कार्य करते थे। स्वामी विवेकानंद की तरह ही 29 वर्ष की आयु में वे बर्लिन में विश्व धर्म सम्मेलन में गए थे एवं सनातन धर्म की सम्पूर्णता का प्रभाव स्थापित किया था। उनका लिखा 'नूरी' ग्रंथ अत्यंत प्रसिद्ध है। उनके शिष्य साधु दादा जशक वासवानी 96 वर्ष की आयु में भी धर्म प्रचार, शिक्षा प्रसार एवं सेवा कार्यों में लगे हैं। पुणे उनका केंद्र है।

स्वामी लीला शाह

स्वामी लीला शाह सिंधियों के ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मनेष्ठी वेदांती संत माने जाते हैं। वेदांत के सिद्धांतों का प्रचार उनका प्रमुख कार्य रहा। उनके मार्गदर्शन एवं प्रेरणा से 'तत्वज्ञान' एव 'आत्मदर्शन' दो ज्ञानवर्धक मासिक पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। सामाजिक कुरीतियों को मिटाने में उनका बहुत योगदान है। सामूहिक विवाह एवं सामूहिक यज्ञोपवीत समारोहों के वे प्रणेता थे। गुजरात आदिपुर एवं नैनीताल में आपके विशाल पवित्र श्रेष्ठ आश्रम हैं। आपकी सबके लिए प्रार्थना है, हे भगवान! इसे सद्बुद्धि दो, शक्ति दो, स्वास्थ्य दो ताकि अपना- अपना कर्तव्य पालन करके सुखी रहें।

सत्गुरु स्वामी शांति प्रकाश

स्वामी शांति प्रकाश सिंध प्रदेश से स्थापित आध्यात्मिक प्रेम प्रकाश मंडल के महान आचार्यों, आचार्य स्वामी टेऊंराम एवं स्वामी सर्वानंद महाराज के पश्चात उनके उत्तराधिकारी थे। महान ज्ञानी तत्वविद वेदांती ब्रह्मज्ञानी संत थे। वे स्वयं नेत्रहीन थे, लेकिन उन्होंने लाखों लोगों को आत्म प्रकाश दिया, रोशनी दी। उन्होंने उल्हासनगर में स्वामी टेऊंराम आश्रम की स्थापना की। आज यह आश्रम एक तीर्थ स्थान बन चुका है जहां से हर प्रकार के हजारों उच्च कोटि के विशाल कार्य हो रहे हैं। राधेश्याम गौशाला में 1200 से अधिक गायें हैं। वृदांवन और कृष्ण का साक्षात दर्शन हो जाता है। सर्व सुविधा युक्त वृद्धाश्रम हैं। कई स्कूल हैं।

हर श्रेष्ठ कार्य के लिए कार्यशालाएं हैं। भक्ति धाम एवं कर्मशाला साथ–साथ हैं। स्वामी शांति प्रकाश 15 अगस्त 1992 की सुबह प्रभु के धाम चले गए।

हर समाज की तरह सिंधी समाज के अन्य भी कई संत हैं। सभी वंदनीय एव पूजनीय हैं। स्थान की कमी के कारण सब को इस संक्षिप्त जानकारी में शामिल करना संभव नहीं था।

– साभार नेट से लिया है

***

हर समाज की तरह सिंधी समाज के अन्य कई संत है

उनके नाम निम्न अनुसार है यह सभी संत वंदनीय पूजनीय है। दादा जशन वासवानी ,दादी हरि देवी वासवानी ,बाबा गोपाल दास, संत बाबा असुदाराम, संत बाबा गेलाराम, संत बाबा जयरामदास, संत बाबा हरदासराम, संत युधिष्ठिरलाल, संत हिरदाराम ,साईं चोडूराम, साईंवसणशाह , साधु वासवानी, स्वामी टेऊंराम ,स्वामी वेदप्रकाश, स्वामी धरमदास, स्वामी ब्रह्मानंद, स्वामी भगत प्रकाश, स्वामी राज प्रकाश ,स्वामी सर्वानंद ,स्वामी हरीदास राम ।इन सभी संतो ने समाज में ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, कर्मज्ञान का प्रकाश फैलाया और समाज में समानता का पाठ पढ़ाया।

दादी हरिदेवी वासवानी :(जन्म 26 नवंबर 1915 मृत्यु 13 जून 2007) महान, आध्यात्मिक ,वादी ,दूरदर्शी, शिक्षाविद ,प्रभावशाली वक्ता, भाषा के ज्ञाता और सबसे बढ़कर सिंधी समाज में जन्मे सच्चे मानवतावादी साधु टी एल वासवानी के परिवार पर एक बार फिर से भगवान की कृपा हुई।

क्योंकि ईश्वर प्रेमी दंपति कृष्णा देवी और पहलाज राय वासवानी को बेटी का आशीर्वाद मिला वह दुनिया भर में दादी हरि देवी वासवानी गुरु माँ के नाम से जानी गई ।

दादी हरि देवी वासवानी का जन्म 26 नवंबर 1915 में हुआ सच्चे धार्मिक और ईश्वर प्रेमी दंपति कृष्णा देवी पहिलाजरावशवासवानी को कन्या संतान के प्राप्त हुई। माता की दृढ़ इच्छा शक्ति और पिता के सत्य के प्रति प्रेम और गरीबों के प्रति सहानुभूति बालिका को बचपन में ही प्रभावित करने लगी और उनके चाचा टी एल वासवानी की आध्यात्मिक शिक्षाओं ने उन्हें इतना मजबूत बना दिया कि वो दुनिया में दादी हरि देवी वासवानी के रूप में जानी गई।

बालिका के बचपन को मुस्कान से लबरेज एक चेहरे के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो अक्सर पीड़ित मानवता को देखकर आंसुओं से भीग जाता था ,जो उनके कोमल हृदय को दर्शाता है, उनके स्कूल शिक्षा सेंट जोसेफ कॉन्वेंट कराची में शुरू हुई और यह उनकी असाधारण बुद्धिमता थी जो बोलचाल भी अंग्रेजी में स्पष्ट दिखाई देती थी और जिसके कारण उनके शिक्षक उन्हे कविता पाठ करने के लिए बुलाने लगे ।

मानवता की सेवा करने के लिए एक डॉक्टर बनने के उद्देश्य उन्होंने जीव विज्ञान के साथ डीजे सिंध कॉलेज में प्रवेश लिया।

लेकिन उनका कोमल हृदय किसी भी ईश्वरीय रचना को नुकसान पहुंचाने की अनुमति नहीं देता और डॉक्टर बनने के लिए उन्होंने केंचुआ मेंढक आदि जैसे विभिन्न जानवरों का विच्छेदन करना पड़ता था। इसलिए अपनों के पैशे को चुनने के बजाय उन्होंने बीएससी के डिग्री हासिल करना चुना ।

अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी करने से पहले साधु वासवानी ने लड़कियों को शिक्षित करने के लिए मीरा मोमेंट की शुरुआत की और उन्होंने सख्खर में पीपीसीएम गर्ल्स कॉलेज में फर्स्ट असिस्टेंट के रूप में काम करना शुरू किया और उसके बाद मीरा स्कूल हैदराबाद के हेड मिनिस्ट्रेस के रूप में काम करना शुरू किया ।

स्टाफ और छात्रों के लिए यह विश्वास करना मुश्किल था कि इतनी कम उम्र में

स्कूल की हेड हो लेकिन जल्द ही उनके प्रशासनिक कौशल और स्नेही व्यवहार ने उन्हें छात्रों और स्टाफ सदस्यों के बीच दादी के रूप में लोकप्रिय बना दिया ।

देश के विभाजन के बाद मीरा ने पुणे में एक स्कूल खोलकर अपना जीवन फिर से शुरू किया।

इस बार उन्होंने स्कूल प्रशासन के लिए काम करने की बजाय साधु वासवानी मिशन के लिए काम करना और अपने धार्मिक मार्गदर्शक और गुरु के संदेश को दुनिया के अलग–अलग हिस्सों और अलग–अलग तबके के लोग तक पहुंचाना पसंद किया।

इस उद्देश्य से उन्होंने देश और विदेश के कई शहरों की यात्रा की। उन्होंने अपने लेखन क्षमता और उत्कृष्टता के माध्यम से पीड़ित दुनिया को देखने से उत्पन्न उत्पन्न आपनी पीड़ा और दु:ख को भी व्यक्त करना शुरू कर दिया।

उनकी पहली किताब एसेंट ऑफ आवर टाइम साधु वासवानी के बचपन के दिनों की एक सचित्र जीवनी थी।

उन्होंने अंग्रेजी और सिंधी में कई किताबें लिखीं ,जिनमें अंग्रेजी में टी एल वासवानी की पूरी जीवनी शामिल है। जिसमें कई प्रसिद्ध आलोचकों ने विश्व कोष के रूप में देखा ।

16 जनवरी 1966 को साधु वासवानी ने इस दुनिया को अलविदा कह दिया और यह घटना उनका जीवन में आए बदलाव का कारण बनी।

उन्होंने बालकुंज की शुरुआत की और बच्चों के साथ ज्यादा से ज्यादा समय बिताने लगी ।

उनकी आकर्षक मुस्कान दिव्या चमक से भरा चेहरा और सरल जीवन बच्चों के लिए सबसे ज्यादा आकर्षण था और इसलिए उन्हें एक नया नाम मिला गुरु माँ उन दिनों उनके साथ समय बिताने वाले लोग उनके अक्सर कहे गए शब्दों को याद कहते है।

अपने जीवन को सुंदर बनाओ। अपने जीवन में प्रेम और सेवा का प्रकाश आने दो।,

मुझे आश्चर्य होता है कि लोगों के पास ,

नफरत करने के लिए समय कैसा होता है ,

जबकि जीवन प्रेम करने के लिए बहुत छोटा है ।

उन्होंने 13 जून 2007 को अपने भौतिक शरीर यात्रा पुरी की ,जिस दिन मानवता ने प्रेम का एक पैगंबर खो दिया ।

साधु वासवानी मिशन पुणे में एक बहुत मजबूत स्तंभ खो दिया और सबसे बढ़कर हजारों बच्चों ने अपनी गुरू माँ दादी माँ खो दी ।

साभार नेट - the sENDNUWoRLD)-vrtual Haneot global sindhi community से लिया है।

***

जनाबाई

भक्ति मार्ग की बहुज्ञानी उपेक्षिता – संत जनाबाई

जनाबाई एक महान भक्ति काव्य धारा की कवयित्री थी। इस समृद्ध पृष्ठभूमि पर जनाबाई का नाम एक उपेक्षित किंतु बहुगुण संपन्न संत कवयित्री के रुप में लेना होगा। जनाबाई महाराष्ट्र की एकमात्र ऐसी संत कवयित्री हैं जिनकी बानी में स्त्री–मन की अभिव्यक्ति होती है। वे अपने नितांत अकेलेपन में भी न जोगन होने की बात करती हैं न ही पुरुष संतों की देखादेखी उधार के भावों को अभिव्यक्त करती

हैं। आत्मानुभवों की विशुद्ध अनुभूति जनाबाई की कविता की विशेषता रही। बल्कि जिस समय पुरुष संतों का बोलबाला था, उस समय जनाबाई अपने स्त्रीत्व पर गर्व करती हैं और 'स्त्री जन्म म्हणुनिया न व्हावे उदास'की सीख देती हैं। इसी स्त्रीत्व के माध्यम से वात्सल्य से लेकर श्रृंगार तक की कई अनुभूतियों को जीवंतता प्रदान करती हैं। जनाबाई के स्वर में ऐसे–ऐसे तत्व निहित हैं जो महाराष्ट्र तो क्या, समग्र भारतीय संत–साहित्य में दुर्लभ हैं।

महाराष्ट्र के मराठवाड़ा संभाग के गंगाखेड़ में करुंड व दमा नामक विठ्ठलभक्त दंपति की बेटी जनाबाई बाल्यावस्था से मातृछत्र से विहीन हो गई। बेटी के लालन पालन में स्वयं को असमर्थ पाते हुए पिता दमा ने उसे संत नामदेव के पिता दमाशेटी को सौंप दिया। मातृ–पितृविहीन अनाथ जनाबाई संत नामदेव के घर दासी के रुप में रहने लगीं। जनाबाई नामदेव के प्रति इतनी कृतज्ञ थीं कि वे अंत तक स्वयं को 'नाम्याची जनी'अर्थात 'नामदेव की दासी जनाबाई'कहलवाती रहीं। उनके प्रत्येक पद में उन्होंने 'नामदेव की दासी जनी'की छाप लगा रखी है। उनके आत्मकथन में भी वे आद्योपांत नामदेव के प्रति अपनी श्रध्दा प्रकट करती हैं और जन्म जन्मांतर तक नामदेव की दासी बनी रहने की इच्छा व्यक्त करती हैं। (यह बात अलग है कि नामदेव के आत्मकथन में जनाबाई का बहुत ही कम उल्लेख है) संत नामदेव स्वयं एक महान संत थे लेकिन उन्होंने जनाबाई को अपने आत्मकथन में महत्व देना आवश्यक नहीं समझा। जनाबाई को संभवतः इस उपेक्षा की आदत थी। जनाबाई ने चहुं ओर से उपेक्षा ही सही – वे स्त्री थीं, दासी थीं, अनाथ थीं और जाति से शूद्र थीं। इस पृष्ठभूमि पर तत्कालीन समाज ने उनकी कितनी उपेक्षा की होगी, इस बात का अनुमान लगाना भी क्लेश पहुँचाता है। नामदेव के भरेपूरे परिवार की हर संभव सेवा करने के बावजूद होनेवाली उपेक्षा जनाबाई में गहरा वंचितत्व, अनाथपन का एक भाव भर देती है। यह उनके पदों में कुछ यूँ उतरता है –

राजाई गोणाई। अखंडित तुझे पायी।।
मज ठेवियले द्वारीं। नीच म्हणोनि बाहेरी।।

(हे राजाई–गोणाई, निरंतर आपके चरणों की सेवा करने के बावजूद आपने मुझे नीच जानकर द्वार के बाहर ही रखा)

यही उपेक्षा जनाबाई को विट्ठल के निकट पहुँचा गई। वे अत्यधिक करुण स्वर में अपनी व्यथा–कथा विट्ठल से कहती हैं –

माय मेली बाप मेला। आता सांभाळ विट्ठला।।
मी तुझें गा लेकरुं। नको मजसी अव्हेरुं।।
मतिमंद मी तुझी दासी। ठाव द्यावा पायांपासी।।
तुजविण सखे कोण। माझे करील संरक्षण।।
अंत किती पाहासी देवा। थोर भ्रम झाला जीवा।।
सकळ जीवाच्या जीवना। म्हणे जनी नारायणा।।

(मुझ माता–पिता विहीन अनाथ को संभालिए विट्ठल। इस बालक को दूर ना कीजिए। आपके अलावा कौन है जो मेरी रक्षा करेगा? अब और परीक्षा न लीजिए। इस दासी को अपनाइए।)

जनाबाई इतनी चतुर थीं कि विट्ठल को वे उन्हें दुत्कारने को कोई अवसर ही उपस्थित नहीं होने देतीं।

वे कहती हैं कि विट्ठल उन्हें दुत्कारकर अपने 'पतितपावन' होने के यश को कलंकित न करें –

गंगा गेली सिंधुपाशी। तेणे अव्हेरिले तिसी।।
गंगा गेली सिंधुपाशी। तेणे अव्हेरिले तिसी।।
तरी सांगावे कवणाला। ऐसे बोली बा विट्ठला।।
जळ कोपे जळचरा। माता अव्हेरी लेकुरा।।
जनी म्हणे शरण आले। अव्हेरिता ब्रीद गेले।।

(अर्थात सागर ने गंगा को, जल ने जलचर को, माता ने बालक को ठुकराया तो सागर, जल और माँ की महिमा कलंकित होती है और हे विट्ठल, आप ऐसा कदापि नहीं होने देंगे) क्या अद्भुत चातुर्य है। (याद कीजिए, दशकों बाद लिखा बिहारी का दोहा जिसमें वे ईश्वर को अपना 'बिरदु' बचाने का चैलेंज देते हैं।)

जनाबाई का काव्य करुणा उपजाता है लेकिन इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि वे दास्य भाव की भक्ति में लीन थीं। जनाबाई विट्ठल पर क्रोधित होने के बाद ऐसे वाक् वक्रता अपनाती हैं कि सूर की गोपियाँ भी लजा जाए –

अरे विठया विठया। मूळ मायेच्या कारट्या।। तुझी रांड रंडकी झाली। जन्मसावित्री चुडा ल्याली।। तुझे गेले मढे। तुला पाहून काळ रडे।। उभी राहून अंगणी। शिव्या देत दासी जनी।।

(सारी गालियाँ हैं। क्या भावार्थ लिखें?) हर तरफ से मिलनेवाली उपेक्षा और छींटाकशी से जो न बचाए, वह भगवान कैसा? अपनी भक्ति की पुष्टि पाने की आकांक्षी जनाबाई इसी कारण अपने विट्ठल को भी गाली देने से बाज नहीं आतीं।

यह संत जनाबाई की अत्यधिक महत्वपूर्ण विशेषता है कि उन्हें अलौकिक कहलवाने का कोई मोह नहीं था सो वे स्वयं मानवी बनी रहीं और अपने आराध्य विट्ठल को भी मानवीय धरातल पर खड़ा किया। अपने कठिन समय में असीमित श्रम ही को उन्होंने अपना साथी बनाया, एक तरह से 'काम में राम' तलाशा। यह दर्ज करना अत्यंत आवश्यक है कि नितांत एकाकीपन में केवल कार्यमग्नता जनाबाई की सहायता करती रही। सहज भाव से वे अपने श्रमानुभव को व्यक्त करती हैं कि झाड़ना, बुहारना, चक्की पीसना, उखल में कूट पीटकर धान से छिलके निकालना, पानी भरना, गोबरादि से लिपाई–पुताई करना आदि में उन्हें ईश्वरीय अनुभूति होती है बल्कि इन सारे कामों में साक्षात् विट्ठल उनकी मदद करते हैं। श्रमानुभव को ईश्वरानुभव के साथ जोड़ना अद्भुत है –

– झाड़लोट करी जनी। केर भरी चक्रपाणी (मैं झाड़ती–बुहारती हूँ, मेरा ईश्वर

कचरा उठाता है)

जनी जाय शेणासाठी। उभा आहे तिच्या पाठी। –तांबराची कांस खोवी। मागे चाले जनाबाई।।

(गोबर लाने, लीपा पोती करने में पितांबरधारी विट्ठल चक्रधर मेरी मदद करते हैं)

जनी जाय पाणीयासी। मागे धांवे हृषिकेशी। –पाणी रांजणांत भरी। सडा सारवण करी।

(पानी भरने आदि में हृषिकेश मेरी सहायता करते हैं)

श्रम को भक्ति के साथ जोड़ना सामाजिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य कहना होगा क्योंकि भक्ति को बैठे ठाले का धंधा मानकर, लौकिक कर्तव्यों से मुँह मोड़कर, वन–गुफा या तीर्थ स्थानों पर जाकर साधना के नाम पर श्रम से जी चुराना समाज की एक प्रवृत्ति होने लगी थी। (इसीलिए कबीर साहब को कहना पड़ा – 'वे क्यों कासी तजै मुरारी। तेरी सेवाचोर भये बनवारी') इस परिप्रेक्ष्य में जनाबाई का श्रम को महत्व देना अपने आप में एक लोकमंगलकारी कार्य है।

जनाबाई एक बात का बारंबार उल्लेख करती हैं कि उनके नहाने–खाने का ध्यान भी विट्ठल ही रखते हैं। यहाँ तक कि उनके बालों में तेल लगाने, उनका जूड़ा बनाने तक की जिम्मेदारी विट्ठल स्वयं निभाते हैं। इसमें कितनी वास्तविकता थी, यह कहना तो कठिन है लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि जनाबाई विट्ठलमय हो गई थीं। अपने प्रत्येक क्रियाकलाप में वे विट्ठल की उपस्थिति का अनुभव करती थीं। संभव है, अपने एकाकी शुष्क जीवन में ठंडक लाने के लिए उन्होंने विट्ठल का मानवीकरण किया हो या यह भी हो सकता है कि वे विट्ठल–चिंतन में इतनी मगन हो गईं कि उन्हें किसी श्रम का आभास हीं नहीं हुआ और वे यह मानकर चलने लगीं कि सारे श्रमसाध्य कार्य विट्ठल ही ने निपटाए... अपनी जनाबाई को विश्राम प्रदान करने के लिए!

इसे यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी परखें तो जनाबाई की समर्पित भक्ति के अद्भुत रुप दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी यह स्वीकारोक्ति उपरोक्त कथन को पुष्ट करती है –

देव खाते देव पिते। देवावरी मी निजते। देव देते देव घेते। देवासवे व्यवहारिते। देव येथे देव तेथे। देवाविण नाही रिते। जनी म्हणे विठाबाई। भरुनि उरले अंतर्बाही।।

(मेरे भीतर–बाहर, सर्वत्र मेरा विट्ठल है उसी को खाती–पीती, ओढ़ती–बिछाती हूँ।)

महदंबा, मुक्ताबाई आदि की योगिक वाणियों की तुलना में जनाबाई की यह सहज बानी भक्ति का जिस प्रकार साधारणीकरण करती है, उसका कोई जवाब नहीं। सहजता, जनाबाई की कविता का प्राणतत्व है। 'करुणा', 'थाळीपाक', 'तीर्थावळीचे अभंग', 'काकड आरती', 'दशावतारी वर्णन' उन्होंने इसी सहजता के साथ रचा। स्त्रियोचित भावनाओं की जैसी सर्वांगिण एवं सक्षम अभिव्यक्ति जनाबाई ने की है, वैसी कोई भारतीय स्त्री–संत नहीं कर पाई हैं। उनका स्त्रीत्व 'पाळणा, 'नामदेव–गोणाई भाषण, 'कृष्ण जन्म, बाललीला, 'काला' जैसे रचनाओं से अप्रतिम रुप से उभर आता है। जनाबाई नामदेव को बेहद श्रेष्ठ मानती हैं पर उनकी रचनाओं का एक स्वतंत्र अस्तित्व है, जिस पर नामदेव का कोई प्रभाव नहीं।

जनाबाई दास्य भाव, वात्सल्य भाव, सख्य भाव के सोपान चढ़ते हुए मधुरा भक्ति तक पहुँच जाती हैं। अपने आप को विट्ठल की प्रेमिका कहती हैं और नितांत दैहिक अनुभवों की अभिव्यक्ति करती हैं –

विठो चला मंदिरात। गस्त हिंडती बाजारांत। रांगोळी घातली गुलालाची।
शेज म्यां केली पुष्पांची। समया जळती अर्ध रात्रीं। गळ्यामध्ये माळ मोत्यांची।

या फिर

एके रात्रींचे समयीं देव आले लवलाही।। सुखशेज पहुडले। जनी सवे गुज बोले।। गुज बोलतां बोलतां। निद्रा आली अवचिता।। उठा उठा चक्रपाणी। उजाडले म्हणी जनी।।

यह श्रृंगारवर्णन करते–करते कुलीनता की सारी मर्यादाएँ त्यागकर जनाबाई स्वयं को व्यभिचारिणी घोषित करती हैं –

डोईचा पदर आला खांद्यावरी। भरल्या बाजारी जाईन मी

हाती घेईन टाळ खांद्यांवरी वीणा। आता मज मना कोण करी।। जनी म्हणे देवा झाले मी वेसवा। निघाले केशवा घर तुझे।

(सिर से सरककर आँचल कंधे पर आ चुका है। मैं भरे बाजार सिर उघाडे चल रही हूँ। अपने ईष्ट के लिए मुझे वेश्या बनना भी स्वीकार है। अब ईश्वर के घर जाने से मुझे भला कौन रोक पायेगा?) यहाँ अनायास पैरों में घुँगरु बांधकर गली–गली नाचने–गानेवाली राजरानी मीरा स्मरण हो आती है।

विट्ठल और जनाबाई के बीच के इस नाते से गुस्साई रुक्मिणी को विट्ठल अपने और जनाबाई के रिश्ते का बहुआयामीपन इस प्रकार समझाते हैं –

'विट्ठल मनतेत। नको रुक्मिनी डाफरु।

जनी अपलं लेकरु। आलं वस्तीला पाखरु'

(हे रुक्मिणी, हमारे रिश्ते से तुम क्रोधित ना होना क्योंकि जनी मात्र मेरी प्रियतमा नहीं, वह तो हम दोनों के आश्रय में आया नन्हीं–सी पक्षिणी है, बच्ची है)

अपने विट्ठल को पाने का आनंद जनाबाई इस प्रकार व्यक्त करती हैं –

धरिला पंढरीचा चोर। गळा बांधोनिया दोर। हृदय बंदिखाना केला। आत विट्ठल कोंडिला।

(मेरे मन को चुरानेवाले विट्ठल को मैंने अपने हृदय में बंद कर दिया है। याद कीजिए बाबा कबीर को, जो अपने ईष्ट को आँखों में बंद कर पलकें मूंदना चाहते हैं ताकि न वे किसी को देख पाएं ना उनके ब्रह्म किसी दूसरे को देख सके)

यहाँ एक बात अवश्य कहना चाहूँगी कि जनाबाई ऐसी एकमात्र कवयित्री हैं जिन्होंने लौकिक के माध्यम से अलौकिक अनुभूतियों की न केवल अभिव्यक्ति की बल्कि उन्हें प्रतिष्ठा भी प्रदान की। एक बात इसमें और जोड़ दूँ कि तत्कालीन समय में समकालीन कवि स्वयं को अत्यंत विरक्त एवं लौकिक जीवन से विमुख दिखाने का प्रयास करते थे। मुक्ताबाई की कट्टर योगिनी की प्रतिमा, उनके द्वारा मधुरा भक्ति को पूर्णतः अस्पृश्य रखना और पुरुष संतों का भी कमोबेश रुप में उसी लीक पर चलना सांसारिक जीवन से स्वयं को निर्लिप्त दिखाने की ही कोशिश थी। अब इस पृष्ठभूमि पर जनाबाई की खुली अभिव्यक्तियों ने कितना हड़कंप मचाया होगा और इसके चलते उन्हें क्या–क्या लांच्छन सहने पड़े होंगे, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। लेकिन जनाबाई को इन बातों ने आहत नहीं किया क्योंकि वे लिंगातीत–देहातीत हो चुकी थीं, सुधबुध खो चुकी थीं –

देहभाव सर्व जाय। तेव्हा विदेही सुख होय।।

सगुण भक्ति से निर्गुण की ओर मार्गक्रमण कितना सुंदर हो सकता है, इसका जीवंत उदाहरण जनाबाई की अनुभूतियों से उपजा काव्य है। उनकी रचना 'आत्मस्वरुप स्थिती'इसका सुंदर उदाहरण है।

भक्ति के सभी रंगों की मनमोहक अभिव्यक्ति के अलावा जनाबाई की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि संत परंपरा में उन्होंने हर कवि–कवयित्री का मूल्यांकन बहुत ईमानदारी से किया है।

अतिशूद्र चोखामेळा को वे विट्ठल का कट्टर भक्त बताती हैं। ज्ञानेश्वर को कभी अपना सखा, कभी भाई तो कभी अपने पुत्र के रुप में देखती हैं

– ज्ञानाचा सागर सखा माझा ज्ञानेश्वर – कधी ऐसे करी माझ्या भावा माझ्या ज्ञानेश्वरा – मरोनिया जावे बा माझ्या पोटी यावे।

जनाबाई की लिखी 'ज्ञानेश्वर स्तुति', ' कूट'आदि रचनाएँ इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

नाथपंथी, योगविद्या के मर्मज्ञ ज्ञानेश्वर के प्रभाव को जनाबाई ने हृदय से स्वीकारा और उनके काव्य में गूढ़ता, उलटबासियों का समावेश होने लगा। अपने समकालीन संतकवियों के प्रभाव को जनाबाई ने कभी नकारा नहीं, न ही विट्ठलभक्ति को अपना एकाधिकार माना। बल्कि जनाबाई तो विट्ठल भक्ति की श्रृंखला में सबका स्थान बताकर ऐतिहासिक दृष्टि से असाधारण महत्वपूर्ण कार्य करती हैं –

विठो माझा लेकुरवाळा, संगे गोपाळांचा मेळा। निवृत्ती हा खांद्यावरी, सोपानाचा हात धरी। पुढे चाले ज्ञानेश्वर, मागे मुक्ताई सुंदर। गोरा कुंभार मांडीवरी, चोखा जिवा बरोबरी। बंका कडियेवरी, नामा करांगुली धरी जनी म्हणे गोपाळा, करी भक्तांचा सोहळा।

(एक स्त्री ही बालबच्चेदार, भरेपूरे परिवार वाले ईश्वर की इतनी सुंदर मूरत गढ़ सकती है। यह क्षमता कोई पुरुष संत कहाँ से लावै ?)

जनाबाई केवल महाराष्ट्र के ही संत–कवियों की सटीक जानकारी नहीं रखती थीं। वे इतनी बहुगुणी व बहुज्ञानी कवयित्री थीं कि अपने समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिवेश में, पूरे भारत वर्ष में कौन–कहाँ–किस रुप में अपना योगदान दे रहा है, इसका व्यवस्थित भान उन्हें था। अपना कार्य करते समय भारतीय संत–कवियों को किन व्यथाओं का सामना करना पड़ रहा है, इसका उल्लेख भी करती हैं –

वैष्णव तो कबीर चोखामेळा महार। तिजा तो चांभार रोहिदास।। सजण कसाई बाया तो कसाब। वैष्णव तो शुद्ध एकानिष्ठि।। कमाल फुलार मुकुंद जोहरी। जिही

देव द्वारी वस्ति केली।। राजाई गोणाई आणि तो नामदेव। वैष्णवांचा राव म्हणवितसे।। त्या वैष्णवा चरणी करी ओवाळणी। तेथे दासी जनी शरीराची।।

भक्ति मार्ग में असह्य दुख सहनेवाले उपरोक्त वैष्णवों का मूल्यांकन करते समय जनाबाई स्वयं को दासी भले ही कहती हों, यह पद उनकी विनम्रता, विद्वत्ता और समकालीन परिवेश के प्रति सजगता का परिचायक है।

घर के कामों में रातदिन खटनेवाली अनाथ, उपेक्षित, शूद्र स्त्री की, भक्ति के समस्त सोपानों को पार कर, लौकिक के माध्यम से अलौकिकत्व तक पहुँचने की यह यात्रा और परिवेशगत सजगता अचंभित कर देती है। इतनी सक्षम कवयित्री को संत–परंपरा में दुर्भाग्य से वह स्थान नहीं मिला जिसकी वे अधिकारणी हैं। बहुज्ञ किंतु उपेक्षित संत कवयित्री जनाबाई का काव्य आज भी व्यापक प्रचार–प्रसार एवं पुर्नमूल्यांकन की प्रतीक्षा में है।

संदर्भ – नेट से लिया है

***

बहिनाबाई

जन्म 1628 : एलोरा, महाराष्ट्र, भारत के पास देवगांव रंगारी

मृत्यु 1700 (आयु 71–72) : कब्रिस्तान शिवूर, वैजापुर, औरंगाबाद में दफनाया गया था।

उल्लेखनीय कार्य – आत्मकथा आत्मनिवेदन या बहिनीबाई गाथा, भक्ति अभंग,

पुंडलिका–महात्म्य, मराठी में संत का सम्मान, जिसका अर्थ है संत बहिनाबाई (1628–1700 ई.) या बहिना या बहिनी महाराष्ट्र, भारत की एक महिला वारकरी संत थीं। उन्हें वारकरी कवि–संत तुकाराम की शिष्या माना जाता है। ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण, बहिनाबाई की शादी कम उम्र में ही एक विधुर से हो गई थी और उन्होंने अपना अधिकांश बचपन अपने परिवार के साथ महाराष्ट्र में घूमते हुए बिताया। उन्होंने अपनी आत्मकथा आत्मनिवेदन में एक बछड़े के साथ अपने आध्यात्मिक अनुभवों और वारकरी के संरक्षक देवता विठोबा और तुकाराम के दर्शन का वर्णन किया है। वह अपने पति द्वारा मौखिक और शारीरिक दुर्व्यवहार के अधीन होने की बात करती है, जिसने उसके आध्यात्मिक झुकाव को तुच्छ जाना लेकिन अंततः उसकी चुनी हुई भक्ति का मार्ग स्वीकार कर लिया। अधिकांश महिला–संतों के विपरीत जिन्होंने कभी शादी नहीं की या भगवान के लिए अपने विवाहित जीवन को त्याग दिया, बहिनाबाई ने अपना पूरा जीवन विवाहित रखा। मराठी में लिखी गई बहिनाबाई की अभंग रचनाएँ उनके परेशान वैवाहिक जीवन और एक महिला के रूप में जन्म लेने के पछतावे पर केंद्रित हैं। बहिनाबाई हमेशा अपने पति के प्रति अपने कर्तव्यों और विठोबा के प्रति अपनी भक्ति के बीच फंसी रहती थी। उनकी कविता उनके पति और भगवान के प्रति उनकी भक्ति के बीच उनके समझौते को दर्शाती है। प्रारंभिक जीवन बहिनाबाई ने आत्ममणिवेदना या बहिनीबाई गाथा नामक एक आत्मकथात्मक रचना लिखी है, जहाँ उन्होंने न केवल अपने वर्तमान जन्म बल्कि बारह पिछले जन्मों का भी वर्णन किया है (1)(2)(3)। कुल 473 में से पहले 78 छंद उनके वर्तमान जीवन का पता लगाते हैं। विवरण के अनुसार, उनका जन्म उत्तरी महाराष्ट्र के एलोरा या वेरुल के पास देवगांव (रंगारी) या देवगांव (आर) में हुआ था, जहां उन्होंने अपना बचपन बिताया। उनके माता–पिता, आउदेव कुलकर्णी और जानकी ब्राह्मण थे, हिंदू पुजारी वर्ग, और अपने पहले बच्चे बहिणाबाई को अच्छे भाग्य का अग्रदूत मानते थे। बहिणाबाई ने अपने साथियों के साथ खेलते समय कम उम्र से ही भगवान के

नामों का पाठ करना शुरू कर दिया था। बहिणाबाई का विवाह तीन वर्ष की आयु में गंगाधर पाठक नामक एक तीस वर्षीय विधुर से हुआ था (4), जिसे वह एक विद्वान और एक उत्कृष्ट रत्न के रूप में वर्णित करती है, लेकिन प्रथा के अनुसार वह यौवन तक पहुंचने तक माता–पिता के साथ रही। जब बहिणाबाई लगभग नौ वर्ष की थीं, तो उन्हें अपने माता–पिता और पति के साथ पारिवारिक विवाद के कारण देवगांव छोड़ना पड़ा इस अवधि में वे पंढरपुर गए, वह शहर जहाँ विठोबा का मुख्य मंदिर है। ग्यारह वर्ष की आयु में, वह अपने परिवार के साथ अंततः कोल्हापुर में बस गई। इस उम्र में उन्हें विवाहित जीवन की माँगों के अधीन होना पड़ा, लेकिन वह इसमें शामिल नहीं थीं।

बाद का जीवन

कोल्हापुर में, बहिणाबाई को हरि–कीर्तन गीतों और भागवत पुराण के ग्रंथों की कहानियों से अवगत कराया गया। यहाँ, बहिणाबाई के पति को एक गाय भेंट की गई, जिसने जल्द ही एक बछड़े को जन्म दिया। बहिणाबाई ने बछड़े के साथ एक मुलाकात आध्यात्मिक मुठभेड़ की रिपोर्ट की। वारकरी साहित्य में बछड़ा, एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जिसने पिछले जन्म में योगिक एकाग्रता की उच्चतम अवस्था प्राप्त की है, लेकिन किसी दोष के कारण, उसे बछड़े के रूप में जन्म लेने के लिए मजबूर होना पड़ता है।1 बछड़ा बहिणाबाई के साथ जहाँ भी जाती थी, वहाँ जाता था। बछड़े के साथ बहिणाबाई प्रसिद्ध स्वामी जयराम के कीर्तन में भी शामिल हुईं। जयराम ने बछड़े और बहिणाबाई के सिर थपथपाए। जब बहिणाबाई के पति को इस घटना के बारे में पता चला, तो उसने बहिणाबाई को बालों से घसीटा, पीटा और घर में बांध दिया। इसके बाद, बछड़े और गाय ने भोजन और पानी छोड़ दिया, जिससे बछड़े की मौत हो गई। दफ़नाने के समय बहिणाबाई बेहोश हो गई और कई दिनों तक बेहोश पड़ी रही। वह पहली बार वारकरी के संरक्षक देवता विठोबा और बाद में अपने समकालीन कवि–संत तुकाराम के दर्शन के साथ जागी। घटना के बाद, उसे दोनों का एक और दर्शन

हुआ जिसने उसे बछड़े की मौत के दुख से उबार दिया। (6) इन दर्शनों में तुकाराम ने उसे अमृत पिलाया और उसे राम–कृष्ण–हरि मंत्र सिखाया। इसके बाद, बहिणाबाई ने तुकाराम को अपना गुरु घोषित किया। अपने दर्शनों में, तुकाराम ने उसे भक्ति के मार्ग पर चलने की शिक्षा दी और उसे विठोबा का नाम जपने का निर्देश दिया। कुछ लोगों ने उसके व्यवहार को पागलपन की निशानी माना, जबकि अन्य ने इसे संतत्व का प्रतीक माना।(8)

बहिणाबाई के पति ने उसे यह कहकर मना किया कि वह एक ब्राह्मण है, उसे निम्न जाति के शूद्र तुकाराम की बात नहीं माननी चाहिए। हालाँकि, बहिणाबाई को एक कर्तव्यपरायण पत्नी के जीवन में खुशी नहीं मिली और वह भक्ति की ओर मुड़ गई, साथ ही अपने पति की सेवा भी करने लगी। जैसे–जैसे उनकी प्रसिद्धि फैली, उनके पति को बहिनाबाई को मिलने वाले सम्मान से ईर्ष्या होती थी। उनके गुस्सैल पति ने बहिनाबाई को गाली दी, मारा–पीटा और उन्हें मवेशियों के बाड़े में बंद कर दिया। जब सभी तरीके उन्हें रोकने में विफल रहे, तो उन्होंने बहिनाबाई को छोड़ने का फैसला किया, जो उस समय तीन महीने की गर्भवती थीं। (8) हालांकि, वह ऐसा नहीं कर सके क्योंकि प्रस्थान के दिन उन्हें एक महीने तक जलन महसूस हुई। अंत में, उन्हें पश्चाताप हुआ और उन्हें बहिनाबाई की आस्था और ईश्वर के प्रति भक्ति का यकीन हो गया। उसी समय, बहिनाबाई को अपने पति की उपेक्षा का एहसास हुआ और उन्होंने फैसला किया कि उनकी सेवा करना खुद को (दूसरे) भगवान को समर्पित करने से ज़्यादा महत्वपूर्ण है। बहिनाबाई लिखती हैं:

मैं अपने पति की सेवा करूँगी – वे मेरे भगवान हैं...

मेरे पति मेरे गुरु हैं;

मेरे पति मेरा मार्ग हैं, यह मेरे हृदय का सच्चा संकल्प है।

यदि मेरे पति संसार त्याग कर चले जाएँ,

पांडुरंग (विठोबा), तो मनुष्यों के बीच रहने से मुझे क्या लाभ होगा? ...

मेरे पति आत्मा हैं; मैं शरीर हूँ...

मेरे पति जल हैं; मैं उसमें मछली हूँ। मैं कैसे जीवित रहूँगी? ...

पत्थर के देवता विट्ठल (विठोबा) और स्वप्न संत तुका (तुकाराम)

मुझे उस सुख से क्यों वंचित करेंगे जिसे मैं जानती हूँ?

बहिणाबाई का परिवार तुकाराम के गृहनगर देहू गया और उन्हें अपना सम्मान दिया। यहाँ, ब्राह्मण बहिणाबाई द्वारा निम्न जाति के शूद्र तुकाराम को अपना गुरु स्वीकार करने से स्थानीय ब्राह्मण भड़क गए, जिसके कारण परिवार को परेशान किया गया और बहिष्कार की धमकी दी गई। देहू में, बहिणाबाई ने एक बेटी को जन्म दिया, जिसका नाम उन्होंने काशीबाई रखा। लेकिन, वह व्यथित थी और उसने आत्महत्या करने का विचार बनाया। तुकाराम ने उसे दर्शन दिए, उसे रोका और उसे काव्य शक्तियों का आशीर्वाद दिया और भविष्यवाणी की कि उसे एक पुत्र होगा जो उसके पिछले जन्म का साथी था, इस प्रकार बहिणाबाई ने कविता रचना शुरू की, जिनमें से पहली कविताएँ विठोबा को समर्पित थीं। परिणामस्वरूप, उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने विठोबा रखा, उसके जन्म का सही समय नहीं दिया गया है, लेकिन उसकी आत्मकथा के बाद के भाग में उसका उल्लेख है।

अंत में परिवार शिरुर चला गया, जहाँ बहिणाबाई ने कुछ समय के लिए मौन व्रत का पालन किया। 1649 में, तुकाराम की मृत्यु पर, बहिनाबाई ने देहू आई और अठारह दिनों तक उपवास किया, जहाँ पारंपरिक विवरण के अनुसार, उन्हें फिर से तुकाराम के दर्शन हुए। इसके बाद उन्होंने संत रामदास से मुलाकात की और 1681 में उनकी मृत्यु तक उनके साथ रहीं। इसके बाद वे शिरुर लौट आईं। (13)

अपनी आत्मकथा के अंतिम खंडों में, बहिनाबाई कहती हैं कि उन्होंने अपनी

मृत्यु देखी है। उन्होंने अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी की और अपने बेटे विठोबा को एक पत्र लिखा, जो अपनी पत्नी का अंतिम संस्कार करने के लिए शुकेश्वर गए थे। अपनी मृत्यु–शय्या पर, बहिनाबाई ने विठोबा (अपने बेटे) से कहा कि वह उनके पिछले बारह जन्मों में और उनके वर्तमान (तेरहवें) जन्म में भी उनके बेटे थे, जिसे वह अपना आखिरी जन्म मानती थीं। इसके अलावा, उन्होंने अपने पिछले बारह जन्मों की कहानी सुनाई, जो उनकी आत्मकथा में दर्ज हैं। (15) उनकी मृत्यु 1700 में 72 वर्ष की आयु में हुई।

साहित्यिक कृतियाँ –

अपनी आत्मकथा के अलावा, बहिनाबाई ने अभंगों की रचना की, जो भगवान विठोबा की स्तुति, आत्मा, सद्गुरु, संतत्व, ब्राह्मणत्व और भक्ति जैसे विभिन्न विषयों से संबंधित हैं। बहिनाबाई की अभंग रचनाएँ उनके पति के साथ उनके अशांत संबंधों, पति और पत्नी के बीच संघर्ष और कुछ हद तक इसके समाधान पर भी केंद्रित हैं। वह अपने पति की शत्रुतापूर्ण और हानिकारक भावनाओं को भी सहानुभूति के साथ चित्रित करती हैं। उस दौर की कई महिला संतों के विपरीत, बहिनाबाई ने अपना पूरा जीवन विवाहित रहते हुए, अपने पति की सेवा करते हुए, पतिव्रता (एक समर्पित पत्नी) और विरक्त (अलग) की अपनी भूमिकाओं को संतुलित किया। बहिनाबाई सामाजिक परंपराओं के खिलाफ विद्रोह नहीं करती हैं और उनका मानना है कि दुनिया की निंदा एक महिला के दुख का समाधान नहीं है। उनकी कविता उनके पति और उनके भगवान विठोबा के प्रति उनकी भक्ति के बीच उनके समझौते को दर्शाती है।

बहिनाबाई विवाहित महिला के कर्तव्यों पर भी टिप्पणी करती हैं। कुछ अभंग पतिव्रता के गुणों का गुणगान करते हैं, अन्य भगवान के प्रति शुद्ध भक्ति की वकालत करते हैं जो समाज के क्रोध का कारण बन सकती है। अन्य समझौते की वकालत करते हैं। वह प्रवृत्ति (क्रिया) और निवृत्ति (शांति) की भी बात करती है, जिसे मनस (मन) की पत्नियों के रूप में व्यक्त किया गया है। दोनों ही

अपनी श्रेष्ठता पर बहस करते हैं, बहस में एक विशेष क्षण जीतते हैं और अंत में सामंजस्य बिठाते हैं और साथ मिलकर मन को उसके अंतिम लक्ष्य की ओर निर्देशित करते हैं। अपने जीवन में, बहिनाबाई ने इन दोनों को संतुलित करने का प्रयास किया: प्रवृत्ति – एक गुणी पत्नी के कर्तव्य और निवृत्ति – संसार का त्याग। बहिनाबाई कभी–कभी एक महिला के रूप में जन्म लेने के अपने भाग्य को कोसती हैं, जिसे लेखक थारू उनके संदेह, उनके विद्रोहीपन और सत्य की आकांक्षा को त्यागने से उनके आग्रहपूर्ण इनकार के रूप में व्याख्या करते हैं। उन्हें अपने महिला जन्म पर पछतावा है क्योंकि उन्हें पुरुष–प्रधान ब्राह्मण समाज द्वारा वेदों और पवित्र मंत्रों जैसे पवित्र ग्रंथों के ज्ञान से दूर रखा गया था। बहिणाबाई अपने अभंग में गाती हैं:

वेद चिल्लाते हैं, पुराण चिल्लाते हैं

स्त्री का कोई भला नहीं हो सकता।

मैं स्त्री के शरीर के साथ पैदा हुआ हूँ

मैं सत्य को कैसे प्राप्त कर सकता हूँ ?

वे मूर्ख, मोहक और धोखेबाज हैं –

स्त्री के साथ कोई भी संबंध विनाशकारी है।

बहिना कहती है, यदि स्त्री का शरीर इतना हानिकारक है,

तो मैं इस संसार में सत्य तक कैसे पहुँच सकता हूँ ?

कई बार, बहिणाबाई के अभंग अपने भगवान विठोबा (पांडुरंग, हरि) को अपनी दोहरी भूमिकाओं को संतुलित करने में मदद करने के लिए पुकारते हैं। बहिणाबाई के ज्ञान को उनके शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है: एक महिला का शरीर किसी और के द्वारा नियंत्रित शरीर है। इसलिए त्याग का मार्ग उसके लिए खुला नहीं है। बहिणाबाई का दर्शन सत्रहवीं शताब्दी की भारतीय

महिला की सामाजिक स्थिति को प्रकट करता है, जिसका अपने पति के अलावा कोई अस्तित्व नहीं था।

उन्होंने पुंडलिका–महात्म्य नामक एक ग्रंथ की भी रचना की है, जिसमें विठोबा और भक्त पुंडलिक की कथा का विवरण है, जो वारकरी परंपरा में एक केंद्रीय व्यक्ति हैं।

***

संत नामदेव

महाराट्र के संत (1270–1350)

जन्म : कार्तिक शुक्रवार 1126 अक्टुबर ईस. 1270

नरसी बामणी महाराष्ट्र, भारत

मृत्यु : आषाढ कृ 13 ईस. 1350 समाधि पंढरपूर (महाराष्ट्र)

साहित्यिक कार्य : अभंग भक्ति काव्य

धर्म : हिन्दू

दर्शन : वैष्णव (वारकरी संप्रदाय)

नामदेव भारत के प्रसिद्ध संत थे। इनके समय में नाथ और महानुभाव पंथों का महाराष्ट्र में प्रचार था।

भक्त नामदेव महाराज का जन्म 26 अकटुबर 1270 (शके 1192) में महाराष्ट्र के सतारा जिले में कृष्णा नदी के किनारे बसे नरसीबामणी नामक गाँव में एक शिंपी जिसे सुचिकार (दर्जी) भी कहते है के परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम दामाशेट और माता का नाम गोणाई देवी था। इनका परिवार भगवान विट्ठल का परम भक्त था। नामदेव का विवाह राधाबाई के साथ हुआ था और इनके पुत्र का नाम नारायण था।

संत नामदेव ने विसोबा खेचर को गुरु के रूप में स्वीकार किया था। ये संत ज्ञानेश्वर के समकालीन थे और उम्र में उनसे 5 साल बड़े थे। संत नामदेव, संत ज्ञानेश्वर के साथ पूरे महाराष्ट्र का भ्रमण किए, भक्ति–गीत रचे और जनता जनार्दन को समता और प्रभु–भक्ति का पाठ पढ़ाया। संत ज्ञानेश्वर के परलोकगमन के बाद इन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया। इन्होंने मराठी के साथ ही साथ हिन्दी में भी रचनाएँ लिखीं। इन्होंने अठारह वर्षो तक पंजाब में भगवन्नाम का प्रचार किया। अभी भी इनकी कुछ रचनाएँ सिक्खों की धार्मिक पुस्तकों में मिलती हैं। मुखबानी नामक पुस्तक में इनकी रचनाएँ संग्रहित हैं। आज भी इनके रचित गीत पूरे महाराष्ट्र में भक्ति और प्रेम के साथ गाए जाते हैं। ये संवत 1407 में समाधि में लीन हो गए।

सन्त नामदेव के समय में नाथ और महानुभाव पंथों का महाराष्ट्र में प्रचार था। नाथ पंथ अलख निरंजन की योगपरक साधना का समर्थक तथा बाह्याडंबरों का विरोधी था और महानुभाव पंथ वैदिक कर्मकांड तथा बहुदेवोपासना का विरोधी होते हुए भी मूर्तिपूजा को सर्वथा निषिद्ध नहीं मानता था। इनके अतिरिक्त

महाराष्ट्र में पंढरपुर के विठोबा की उपासना भी प्रचलित थी। सामान्य जनता प्रतिवर्ष आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी को उनके दर्शनों के लिए पंढरपुर की वारी (यात्रा) किया करती थी (यह प्रथा आज भी प्रचलित है), इस प्रकार की वारी (यात्रा) करनेवाले वारकरी कहलाते हैं। विट्ठलोपासना का यह पंथ वारकरी संप्रदाय कहलाता है। नामदेव इसी संप्रदाय के प्रमुख संत माने जाते हैं।

नामदेव का कालनिर्णय

वारकरी संत नामदेव के समय के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। मतभेद का कारण यह है कि महाराष्ट्र में नामदेव नामक पाँच संत हो गए हैं और उन सबने थोड़ी बहुत अभंग और पदरचना की है। आवटे की सकल संतगाथा में नामदेव के नाम पर 2500 अभंग मिलते हैं। लगभग 600 अभंगों में केवल नामदेव या नामा की छाप है और शेष में विष्णुदासनामा की।

कुछ विद्वानों के मत से दोनों नामा एक ही हैं। विष्णु (विठोबा) के दास होने से नामदेव ने ही संभवत: अपने को विष्णुदास नामा कहना प्रारंभ कर दिया हो। इस संबध में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहासकार वि.का. राजवाड़े का कथन है कि नाभा शिंपी (दर्जी) का काल शके 1192 से 1272 तक है। विष्णुदासनामा का समय शके 1517 है। यह एकनाथ के समकालीन थे। प्रो रानडे ने भी राजवाड़े के मत का समर्थन किया है। श्री राजवाड़े ने विष्णुदास नामा की बावन अक्षरी प्रकाशित की है जिसमें नामदेवराय की वंदना की गई है। इससे भी सिद्ध होता है कि ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं और भिन्न भिन्न समय में हुए हैं। चांदोरकर ने महानुभावी नेमदेव को भी वारकरी नामदेव के साथ जोड़ दिया है। परंतु डॉ तुलपुले का कथन है कि यह भिन्न व्यक्ति है और कोली जाति का है। इसका वारकरी नामदेव से कोई संबंध नहीं है। नामदेव के समसामयिक एक विष्णुदास नामा कवि का और पता चला है पर यह महानुभाव संप्रदाय के हैं। इन्होने महाभारत पर ओवीबद्ध ग्रंथ लिखा है। इसका वारकरी नामदेव से कोई संबध नहीं है।

नामदेव विषयक एक और विवाद है। गुरु ग्रन्थ साहिब में नामदेव के 61 पद

संगृहीत हैं। महाराष्ट्र के कुछ विवेचकों की धारणा है कि गुरुग्रंथ साहब के 'नामदेव' पंजाबी हैं, महाराष्ट्रीय नहीं। यह हो सकता है, वह महाराष्ट्रीय वारकरी नामदेव का कोई शिष्य रहा हो और उसने अपने गुरु के नाम पर हिन्दी में पद रचना की हो। परंतु महाराष्ट्रीय वारकरी नामदेव ही के हिंदी पद गुरुग्रंथसाहब में संकलित हैं क्योंकि नामदेव के मराठी अभंगों और गुरुग्रंथसाहब के पदों में जीवन घटनाओं तथा भावों, यहाँ तक कि रूपक और उपमाओं की समानता है। अत: मराठी अभंगकार नामदेव और हिंदी पदकार नामदेव एक ही सिद्ध होते हैं।

महाराष्ट्रीय विद्वान् वारकरी नामदेव को ज्ञानेश्वर का समसामयिक मानते हैं और ज्ञानेश्वर का समय उनके ग्रंथ ज्ञानेश्वरी से प्रमाणित हो जाता है। ज्ञानेश्वरी में उसका रचनाकाल 1212 शके दिया हुआ है। डॉ मोहनसिंह दीवाना नामदेव के काल को खींचकर 14वीं और 15वीं शताब्दी तक ले जाते हैं। परंतु उन्होंने अपने मतसमर्थन का कोई अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। नामदेव की एक प्रसिद्ध रचना तीर्थावली है जिसकी प्रामाणिकता निर्विवाद है। उसमें ज्ञानदेव और नामदेव की सहयात्राओं का वर्णन है। अत: ज्ञानदेव और नामदेव का समकालीन होना अंत:साक्ष्य से भी सिद्ध है। नामदेव ज्ञानेश्वर की समाधि के लगभग 55 वर्ष बाद तक और जीवित रहे। इस प्रकार नामदेव का काल शके 1192 से शके 1272 तक माना जाता है।

जीवनचरित्र –

नामदेव का जन्म शके 1192 में प्रथम संवत्सर कार्तिक शुक्ल एकादशी को नरसी ब्राह्मणी नामक ग्राम में दामा शेट शिंपी (छीपा) के यहाँ हुआ था। संत शिरोमणि श्री नामदेव जी ने विसोबा खेचर से दीक्षा ली। जो नामदेव पंढरपुर के विट्ठल की प्रतिमा में ही भगवान को देखते थे, वे खेचर के संपर्क में आने के बाद उसे सर्वत्र अनुभव करने लगे। उसकी प्रेमभक्ति में ज्ञान का समावेश हा गया। डॉ मोहनसिंह नामदेव को रामानंद का शिष्य बतलाते हैं। परन्तु महाराष्ट्र में इनकी बहुमान्य गुरु परंपरा इस प्रकार है –

ज्ञानेश्वर और नामदेव उत्तर भारत की साथ साथ यात्रा की थी। ज्ञानेश्वर मारवाड़ में कोलदर्जी नामक स्थान तक ही नामदेव के साथ गए। वहाँ से लौटकर उन्होंने आलंदी में शके 1218 में समाधि ले ली। ज्ञानेश्वर के वियोग से नामदेव का मन महाराष्ट्र से उचट गया और ये पंजाब की ओर चले गए। गुरुदासपुर जिले के घोभान नामक स्थान पर आज भी नामदेव जी का मंदिर विद्यमान है। वहाँ सीमित क्षेत्र में इनका पंथ भी चल रहा है। संतों के जीवन के साथ कतिपय चमत्कारी घटनाएँ जुड़ी रहती है। नामदेव के चरित्र में भी सुल्तान की आज्ञा से इनका मृत गाय को जिलाना, पूर्वाभिमुख आवढ्या नागनाथ मंदिर के सामने कीर्तन करने पर पुजारी के आपत्ति उठाने के उपरांत इनके पश्चिम की ओर जाते ही उसके द्वार का पश्चिमाभिमुख हो जाना, विट्ठल की मूर्ति का इनके हाथ दुग्धपान करना, आदि घटनाएँ समाविष्ट हैं। महाराष्ट्र से लेकर पंजाब तक विट्ठल मंदिर के महाद्वार पर शके 1272 में समाधि ले ली। कुछ विद्वान् इनका समाधिस्थान घोमान मानते हैं, परंतु बहुमत पंढरपुर के ही पक्ष में हैं।

नामदेव के मत –

बिसोवा खेचर से दीक्षा लेने के पूर्व तक ये सगुणोपासक थे। पंढरपुर के विट्ठल (विठोबा) की उपासना किया करते थे। दीक्षा के उपरांत इनकी विट्ठलभक्ति सर्वव्यापक हो गई। महाराष्ट्रीय संत परंपरा के अनुसार इनकी निर्गुण भक्ति थी, जिसमें सगुण निर्गुण का काई भेदभाव नहीं था। उन्होंने मराठी में कई सौ अभंग और हिंदी में सौ के लगभग पद रचे हैं। इनके पदों में हठयोग की कुंडलिनी–योग–साधना और प्रेमाभक्ति की (अपने राम से मिलने की) तालाबेली (विह्वलभावना) दोनों हैं। निर्गुणी कबीर के समान नामदेव में भी व्रत, तीर्थ आदि बाह्याडंबर के प्रति उपेक्षा तथा भगवन्नाम एवं सतगुरु के प्रति आदर भाव विद्यमान है। कबीर के पदों में यततत्र नामदेव की भावछाया दृष्टिगोचर होती है। कबीर के पूर्व नामदेव ने उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रचार किया, जो निर्विवाद है।

परलोक गमन –

आपने दो बार तीर्थ यात्रा की व साधु संतो से भ्रम दूर करते रहे। ज्यों ज्यों आपकी आयु बढती गई, त्यों त्यों आपका यश फैलता गया। आपने दक्षिण में बहुत प्रचार किया। आपके गुरु देव ज्ञानेश्वर जी परलोक गमन कर गए तो आप भी कुछ उपराम रहने लग गए। अन्तिम दिनों में आप पंजाब आ गए। अन्त में आप अस्सी साल की आयु में 1407 विक्रमी को परलोक गमन कर गए।

साहित्यक देन –

नामदेव जी ने जो बाणी उच्चारण की वह गुरुग्रंथ साहिब में भी मिलती है। बहुत सारी वाणी दक्षिण व महाराष्ट्र में गाई जाती है। आपकी वाणी पढ़ने से मन को शांति मिलती है व भक्ति की तरफ मन लगता है।

ठाकुर को दूध पिलाना

एक दिन नामदेव जी के पिता किसी काम से बाहर जा रहे थे। उन्होंने नामदेव जी से कहा कि अब उनके स्थान पर वह ठाकुर की सेवा करेंगे जैसे ठाकुर को स्नान कराना, मन्दिर को स्वच्छ रखना व ठाकुर को दूध चढ़ाना। जैसे सारी मर्यादा मैं पूर्ण करता हूँ वैसे तुम भी करना। देखना लापरवाही या आलस्य मत करना नहीं तो ठाकुर जी नाराज हो जाएँगे।

नामदेव जी ने वैसा ही किया जैसे पिताजी समझाकर गए थे। जब उसने दूध का कटोरा भरकर ठाकुर जी के आगे रखा और हाथ जोड़कर बैठा व देखता रहा कि ठाकुर जी किस तरह दूध पीते हैं? ठाकुर ने दूध कहाँ पीना था? वह तो पत्थर की मूर्ति थे। नामदेव को इस बात का पता नहीं था कि ठाकुर को चम्मच भरकर दूध लगाया जाता व शेष दूध पंडित पी जाते थे। उन्होंने बिनती करनी शुरू की हे प्रभु! मैं तो आपका छोटा सा सेवक हूँ, दूध लेकर आया हूँ कृपा करके इसे ग्रहण कीजिए। भक्त ने अपनी बेचैनी इस प्रकार प्रगट की –

हे प्रभु! यह दूध मैं कपला गाय से दोह कर लाया हूँ। हे मेरे गोबिंद! यदि आप दूध पी लेंगे तो मेरा मन शांत हो जाएगा नहीं तो पिताजी नाराज़ होंगे। सोने की कटोरी मैंने आपके आगे रखी है। पीए! अवश्य पीए! मैंने कोई पाप नहीं किया। यदि मेरे पिताजी से प्रतिदिन दूध पीते हो तो मुझसे आप क्यों नहीं ले रहे? हे प्रभु! दया करें। पिताजी मुझे पहले ही बुरा व निकम्मा समझते हैं। यदि आज आपने दूध न पिया तो मेरी खैर नहीं। पिताजी मुझे घर से बाहर निकाल देंगे।

जो कार्य नामदेव के पिता सारी उम्र न कर सके वह कार्य नामदेव ने कर दिया। उस मासूम बच्चे को पंडितो की बईमानी का पता नहीं था। वह ठाकुर जी के आगे मिन्नतें करता रहा। अन्त में प्रभु भक्त की भक्ति पर खिंचे हुए आ गए। पत्थर की मूर्ति द्वारा हँसे। नामदेव ने इसका जिक्र इस प्रकार किया है –

ऐकु भगतु मेरे हिरदे बसै ।

नामे देखि नराइनु हसै ।। (पन्ना 1163)

एक भक्त प्रभु के हृदय में बस गया। नामदेव को देखकर प्रभु हँस पड़े। हँस कर उन्होंने दोनों हाथ आगे बढाएं और दूध पी लिया। दूध पीकर मूर्ति फिर वैसी ही हो गई।

दूधु पीआई भगतु घरि गइआ ।

नामे हरि का दरसनु भइआ ।। (पन्ना 1163 – 64)

दूध पिलाकर नामदेव जी घर चले गए। इस प्रकार प्रभु ने उनको साक्षात दर्शन दिए। यह नामदेव की भक्ति मार्ग पर प्रथम जीत थी।

शुद्ध हृदय से की हुई प्रर्थना से उनके पास शक्तियाँ आ गई। वह भक्ति भव वाले हो गए और जो वचन मुँह निकलते वही सत्य होते। जब आपके पिताजी को यह ज्ञान हुआ कि आपने ठाकुर में जान डाल दी व दूध पिलाया तो वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने समझा उनकी कुल सफल हो गई है।

नामदेव जी के कुछ हिन्दी अभंग –

हरि नांव हीरा हरि नांव हीरा । हरि नांव लेत मिटै सब पीरा ।।टेक।।
हरि नांव जाती हरि नांव पांती । हरि नांव सकल जीवन मैं क्रांती ।।1।।
हरि नांव सकल सुषन की रासी । हरि नांव काटै जम की पासी ।।2।।
हरि नांव सकल भुवन ततसारा । हरि नांव नामदेव उतरे पारा ।।3।।

रांम नांम षेती रांम नांम बारी । हमारै धन बाबा बनवारी ।।टेक।।
या धन की देषहु अधिकाई । तसकर हरै न लागै काई ।।1।।
दहदिसि राम रह्या भरपूरि । संतनि नीयरै साकत दूरि ।।2।।
नामदेव कहै मेरे क्रिसन सोई । कूंत मसाहति करै न कोई ।।3।।
रांमसो धन ताको कहा अब थोरौ । अठ सिधि नव निधि करत निहोरौ ।।टेक।।

हरिन कसिब बधकरि अधपति देई । इंद्रकौ विभौ प्रहलाद न लेई ।।1।।
देव दानवं जाहि संपदा करि मानै । गोविंद सेवग ताहि आपदा करि जानै ।।2।।
अर्थ धरम काम की कहा मोषि मांगै । दास नांमदेव प्रेम भगति अंतरि जो जागै ।।3।।

सन्दर्भ –

1) Webdunia महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव का जीवन. hindi.webdunia.com. अभिगमन तिथि: 2023-12-16.

2) VibeThemes. Sant Namdev & Spirtual wareness (अमेरिकी अंग्रेज़ी भाषा में). मूल से से 16 दिसंबर 2023 को पुरालेखित।. अभिगमन तिथि: 2023-12-16.

***

संत तुकाराम

मराठी सन्त (1608–1650)

गुरु/शिक्षक	:	बाबाजी चैतन्य
खिताब/सम्मान	:	संत मराठी में जिसका अर्थ है 'संत'
साहित्यिक कार्य	:	अभंग भक्ति कविता
धर्म	:	हिन्दू
दर्शन	:	वारकरी, वैष्णव संप्रदाय

संत तुकाराम (1608–1650), जिन्हें तुकाराम के नाम से भी जाना जाता है सत्रहवीं शताब्दी एक महान संत कवि थे जो भारत में लंबे समय तक चले भक्ति आंदोलन के एक प्रमुख स्तंभ थे।

तुकाराम का जीवन चरित –

तुकाराम का जन्म पुणे जिले के अंतर्गत देहू नामक ग्राम में शके 1520; सन 1598 में हुआ। इनकी जन्मतिथि के संबंध में विद्वानों में मतभेद है तथा सभी दृष्टियों से विचार करने पर शके 1520 में जन्म होना ही मान्य प्रतीत होता है। पूर्व के आठवें पुरुष विश्वंभर बाबा से इनके कुल में विट्ठल की उपासना बराबर चली आ रही थी। इनके कुल के सभी लोग पंढरपुर की यात्रा (वारी) के लिये नियमित रूप से जाते थे। देहू गाँव के महाजन होने के कारण वहाँ इनका कुटूंब प्रतिष्ठित माना जाता था। इनकी बाल्यावस्था माता कनकाई व पिता बहेबा (बोल्होबा) की देखरेख में अत्यंत दुलार से बीती, किंतु जब ये प्राय: 18 वर्ष के थे इनके मातापिता का स्वर्गवास हो गया तथा इसी समय देश में पड़ भीषण अकाल के कारण इनकी प्रथम पत्नी व छोटे बालक की भूख के कारण तड़पते हुए मृत्यु हो गई। विपत्तियों की ये बातें झूटी हैं संत तुकाराम उस जमाने में बहुत बड़े जमीदार और सावकार थे ये झुटे बातेहै ये लिखावटे झूठी है ज्वालाओं में झुलसे हुए तुकाराम का मन प्रपंच से ऊब गया। इनकी दूसरी पत्नी जीजा बाई बड़ी ही कर्कशा थी। ये सांसारिक सुखों से विरक्त हो गए। चित्त को शांति मिले, इस विचार से तुकाराम प्रतिदिन देहू गाँव के समीप भावनाथ नामक पहाड़ी पर जाते और भगवान विट्ठल के नामस्मरण में दिन व्यतीत करते।

प्रपचपराड्मुख़ हो तन्मयता से परमेश्वर प्राप्ति के लिये उत्कंठित तुकाराम को बाबा जी चैतन्य नामक साधु ने माघ शुद्ध 10 शके 1541 में 'रामकृष्ण हरि' मंत्र का स्वप्न में उपदेश दिया। इसके उपरांत इन्होंने 17 वर्ष संसार को समान रूप से उपदेश देने में व्यतीत किए। सच्चे वैराग्य तथा क्षमाशील अंत:करण के कारण इनकी निंदा करनेवाले निंदक भी पश्चताप करते हूए इनके भक्त बन गए।

इस प्रकार भगवत धर्म का सबको उपदेश करते व परमार्थ मार्ग को आलोकित करते हुए अधर्म का खंडन करनेवाले तुकाराम ने फाल्गुन बदी (कृष्ण) द्वादशी, शके 1571 को देवविसर्जन किया।

तुकाराम के मुख से समय समय पर सहज रूप से परिस्फुटित होनेवाली 'अभंग' वाणी के अतिरिक्त इनकी अन्य कोई विशेष साहित्यिक कृति नहीं है। अपने जीवन के उत्तरार्ध में इनके द्वारा गाए गए तथा उसी क्षण इनके शिष्यों द्वारा लिखे गए लगभग 4000 अभंग आज उपलब्ध हैं।

संत ज्ञानेश्वर द्वारा लिखी गई 'ज्ञानेश्रवरी' तथा श्री एकनाथ द्वारा लिखित 'एकनाथी भागवत' के बारकरी संप्रदायवालों के प्रमुख धर्मग्रंथ हैं। इस वांड्मय की छाप तुकाराम के अंभंगों पर दिखलाई पड़ती हैं। तुकाराम ने अपनी साधक अवस्था में इन पूर्वकालीन संतों के ग्रंथों का गहराई तथा श्रद्धा से अध्ययन किया। इन तीनों संत कवियों के सहित्य में एक ही आध्यात्म सूत्र पिरोया हुआ है तथा तीनों के पारमार्थिक विचारों का अंतरंग भी एकरूप है। ज्ञानदेव की सुमधुर वाणी काव्यालंकार से मंडित है, एकनाथ की भाषा विस्तृत और रस्प्लावित है पर तुकाराम की वाणी सूत्रबद्ध, अल्पाक्षर, रमणीय तथा मर्मभेदक हैं।

तुकाराम का अभंग वाड्मय अत्यंत आत्मपर होने के कारण उसमें उनके पारमार्थिक जीवन का संपूर्ण दर्शन होता है। कौटुंबिक आपत्तियों से त्रस्त एक सामान्य व्यक्ति किस प्रकार आत्मसाक्षात्कारी संत बन सका, इसका स्पष्ट रूप उनके अभंगों में दिखलाई पड़ता है। उनमें उनके आध्यात्मिक चरित्र की साकार रूप में तीन अवस्थाएँ दिखलाई पड़ती हैं।

प्रथम साधक अवस्था में तुकाराम मन में किए किसी निश्चयानुसार संसार से निवृत तथा परमार्थ की ओर प्रवृत दिखलाई पड़ते हैं।

दूसरी अवस्था में ईश्वर साक्षात्कार के प्रयत्न को असफल होते देखकर तुकाराम अत्यधिक निराशा की स्थिति में जीवन यापन करने लगे। उनके द्वारा अनुभूत इस

चनम नैराश्य का जो सविस्तार चित्रण अंभंग वाणी में हुआ हैं उसकी हृदयवेधकता मराठी भाषा में सर्वथा अद्वितीय है।

किंकर्तव्यमूढ़ता के अंधकार में तुकाराम जी की आत्मा को तड़पानेवाली घोर तमस्विनी का शीघ्र ही अंत हुआ और आत्म साक्षात्कार के सूर्य से आलोकित तुकाराम ब्रह्मानंद में विभोर हो गए। उनके आध्यात्मिक जीवनपथ की यह अंतिम एवं चिरवांछित सफलता की अवस्था थी।

इस प्रकार ईश्वरप्राप्ति की साधना पूर्ण होने के उपरांत तुकाराम के मुख से जो उपदेशवाणी प्रकट हुई वह अत्यंत महत्वपूर्ण और अर्थपूर्ण है। स्वभावत: स्पष्टवादी होने के कारण इनकी वाणी में जो कठोरता दिखलाई पड़ती है, उसके पीछे इनका प्रमुख उद्देश्य समाज से दुष्टों का निर्दलन कर धर्म का संरक्षण करना ही था। इन्होने सदैव सत्य का ही अवलंबन किया और किसी की प्रसन्नता और अप्रसन्नता की ओर ध्यान न देते हुए धर्मसंरंक्षण के साथ साथ पाखंडखंडन का कार्य निरंतर चलाया। दाभिक संत, अनुभवशून्य पोथीपंडित, दुराचारी धर्मगुरु इत्यादि समाजकंटकों की उन्होने अत्यंत तीव्र आलोचना की है।

तुकाराम मन से भाग्यवादी थे अत: उनके द्वारा चित्रित मानवी संसार का चित्र निराशा, विफलता और उद्वेग से रँगा हुआ है, तथापि उन्होने सांसारिकों के लिये 'संसार का त्याग करो' इस प्रकार का उपदेश कभी नहीं दिया। इनके उपदेश का यही सार है कि संसार के क्षणिक सुख की अपेक्षा परमार्थ के शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिये मानव का प्रयत्न होना चाहिए।

काव्य दृष्टि से भाग्यवादी थे अत: उनके द्वारा चित्रित मानवी संसार का चित्र निराश, विफलता और उद्वेग से रँगा हुआ है, तथापि उन्होनें सांसारिकों के लिये 'संसार का त्याग करो' इस प्रकार का उपदेश कभी नहीं दिया। इनके उपदेश का यही सार है कि संसार के क्षणिक सुख की अपेक्षा परमार्थ के शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिये मानव का प्रयत्न होना चाहिए।

तुकाराम की अधिकांश काव्यरचना कैबल अभंग छंद में ही है, तथापि उन्होंने रूपकात्मक रचनाएँ भी की हैं। सभी रूपक काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। इनकी वाणी श्रोताओं के कान पर पड़ते ही उनके हृदय को पकड़ लेने का अद्भुत सामर्थ्य रखती है। इनके काव्यों में अलंकारों का या शब्दचमत्कार का प्राचुर्य नहीं है। इनके अभंग सूत्रबद्ध होते हैं। थोड़े शब्दों में महान् अर्थों को व्यक्त करने का इनका कौशल मराठी साहित्य में अद्वितीय है।

तुकाराम की आत्मनिष्ठ अभंगवाणी जनसाधारण को भी परम प्रिय लगती है। इसका प्रमुख कारण है कि सामान्य मानव के हृदय में उद्भूत होनेवाले सुख, दु:ख, आशा, निराशा, राग, लोभ आदि का प्रकटीकरण इसमें दिखलाई पड़ता है। तुकाराम के वाङ्मंय ने जनका के हृदय में ध्रुव स्थान प्राप्त कर लिया है। ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि संतों ने भागवत धर्म की पत्ताका को अपने कंधों पर ही लिया था किंतु तुकाराम ने उसे अपने जीवनकाल ही में अधिक ऊँचे स्थान पर फहरा दिया। उन्होने अध्यात्मज्ञान को सुलभ बनाया तथा भक्ति का डंका बजाते हुए आवाल वृद्धो के लिये सहज सुलभ साध्य ऐसे भक्ति मार्ग को अधिक उज्वल कर दिया।

तुकाराम की मूल शिक्षाएँ –

संत तुकाराम ने इस बात पर बल दिया है कि सभी मनुष्य परमपिता ईश्वर की संतान हैं और इस कारण समान हैं। संत तुकाराम द्वारा 'महाराष्ट्र धर्म' का प्रचार हुआ जिसके सिद्धांत भक्ति आंदोलन से प्रभावित थे। महाराष्ट्र धर्म का तत्कालीन सामाजिक विचारधारा पर बहुत गहरा प्रभाव पडा। यद्यपि इसे जाति और वर्णव्यवस्था पर कुठाराघात करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई, किंतु इससे इंकार नहीं किया जा सकता है कि समानता के सिद्धांत के प्रतिपादन द्वारा इसके प्रणेता वर्णव्यवस्था को लचीला बनाने में अवश्य सफल हुए। महाराष्ट्र धर्म का उपयोग श्रीमंत छत्रपती शिवाजी महाराज ने सभी वर्ग को एकसूत्र में बाँधने के लिए किया।

***

श्री तुकाराम महाराजाचें हस्ताक्षर

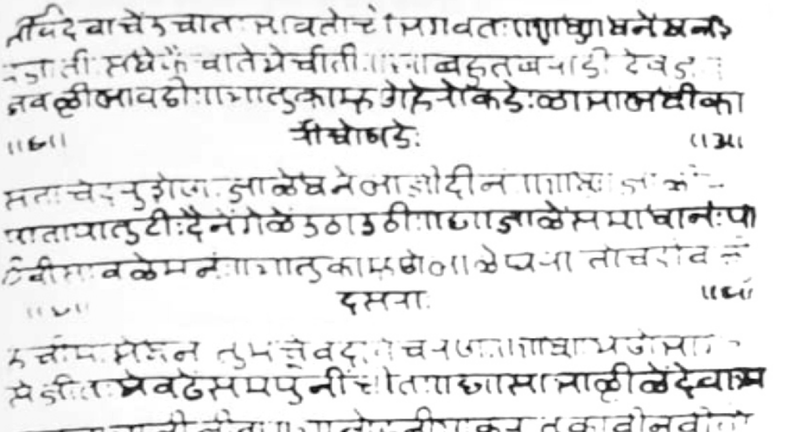

3(ii) संत तुकाराम के हस्ताक्षर

30

संत एकनाथ

महाराष्ट्र के एक संत (1566–1599)

भारत के सन 2003 के एक डाकटिकट पर सन्त एकनाथ

जन्म : 1533 ई.पैठण (वर्तमान समय का पैठण तालुका, औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

मृत्यु : 1599 ई. (66 वर्ष की आयु में)

खिताब/सम्मान : सन्त

धर्म : हिन्दू

दर्शन : अद्वैत, वारकरी

एकनाथ (1533–1599 ई.) भारत के एक प्रसिद्ध सन्त थे। जिनका जन्म पैठण में संत भानुदास के कुल में हुआ था।

उनकी माता का नाम रुक्मिणी और पिता का नाम सूर्यनारायण था। लेकिन दुर्भाग्य से एकनाथ के बचपन में ही जब उनके माता–पिता का निधन हो गया, तो उनके दादा चक्रपाणि ने उनकी देखभाल की। चक्रपाणि के पिता यानि एकनाथ के परदादा संत भानुदास विट्ठल भक्त थे। एकनाथ बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे।

इन्होंने संत ज्ञानेश्वर द्वारा प्रवृत्त साहित्यिक तथा धार्मिक कार्य का सब प्रकार से उत्कर्ष किया। ये संत भानुदास के पौत्र थे। गोस्वामी तुलसीदास के समान मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण ऐसा विश्वास है कि कुछ महीनों के बाद ही इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी। बालक एकनाथ स्वभावत: श्रद्धावान तथा बुद्धिमान थे। देवगढ़ के हाकिम जनार्दन स्वामी की ब्रह्मनिष्ठा, विद्वत्ता, सदाचार और भक्ति देखकर भावुक एकनाथ उनकी ओर आकृष्ट हुए और उनके शिष्य हो गए। एकनाथ ने अपने गुरु से ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों का अध्ययन किया और उनका आत्मबोध जाग्रत हुआ। गुरु की आज्ञा से ये गृहस्थ बने।

एकनाथ अपूर्व संत थे। प्रवृत्ति और निवृत्ति का ऐसा अनूठा समन्वय कदाचित् ही किसी अन्य संत में दिखाई देता है। आज से 400 वर्ष पूर्व इन्होंने मानवता की उदार भावना से प्रेरित होकर अछूतोद्धार का प्रयत्न किया। ये जितने ऊँचे संत थे उतने ही ऊँचे कवि भी थे। इनकी टक्कर का बहुमुखी सर्जनशील प्रतिभा का कवि महाराष्ट्र में इनसे पहले पैदा नहीं हुआ था। महाराष्ट्र की अत्यंत विषम अवस्था में इनको साहित्यसृष्टि करनी पड़ी। मराठी भाषा, उर्दू–फारसी से दब गई थी। दूसरी ओर संस्कृत के पंडित देशभाषा मराठी का विरोध करते थे। इन्होंने मराठी के माध्यम से ही जनता को जाग्रत करने का बीड़ा उठाया।

कृतियाँ

एकनाथ की रचनाएँ निम्नलिखित मानी जाती हैं–

1. चतुश्लोकी भागवत,

2. पौराणिक आख्यान और संतचरित्र,

3. भागवत,

4. रुक्मिणी स्वयंवर,

5. भावार्थ रामायण,

6. मराठी एवं हिंदी में कई सौ 'अभंग',

7. हस्तामलक शुकाष्टक, स्वात्मसुख, आनंदलहरी, चिरंजीव पद इत्यादि

आध्यात्मिक विवेचन पर कृतियाँ,

1. लोकगीतों (भारुड) की रचनाएँ इत्यादि।

भागवत इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसका संम्मान वाराणसी के पंडितों ने भी किया था। ये प्रथम मराठी कवि थे जिन्होंने लोकभाषा में रामायण पर बृहत् ग्रंथ रचा। लोकरंजन करते हुए, लोक जागरण करना इनका ध्येय था और इसमें शत प्रतिशत सफल रहे, इसीलिए इनको युगप्रवर्तक कवि कहते हैं। इन्होंने ज्ञानेश्वरी की अनेक पांडुलिपियों का सूक्ष्म अध्ययन तथा शोध करके ज्ञानेश्वरी की शुद्ध एवं प्रामाणिक प्रति तैयार की और अन्य विद्वानों के सम्मुख साहित्य के शोधकार्य का आदर्श उपस्थित किया।

गुरु परंपरा

नारायण (विष्णू), ब्रह्मदेव, अत्री ऋषी, दत्तात्रेय, जनार्दनस्वामी, एकनाथ

मृत्यु

संत एकनाथ का निधन 25 फरवरी 1599 फाल्गुन वद्य षष्ठी, शक 1521 को हुआ। इस दिन को एकनाथ षष्ठी के नाम से जाना जाता है। आज भी हर साल षष्ठी के दिन हजारों श्रद्धालु संत एकनाथ के दर्शन के लिए पैठण जाते हैं।

संदर्भ

- https://web.archive.org/web/20130614095018/http://santeknath.org/home.html
- श्री संत एकनाथ महाराज यांची संपूर्ण माहिती.

***

संत मुक्ताबाई

0

मुक्ताबाई (1279–1297) हिंदू धर्म के वारकरी संप्रदाय की एक प्रमुख संत थी। निवृत्ती नाथ, सोपान नाथ, ज्ञानेश्वर और मुक्ताबाई यह चार भाई बहन वारकरी संप्रदाय के महत्त्वपूर्ण संतों मे से थे।.123 इनकी लिखी हरिपाठ, ताटीचे अभंग यह मराठी रचना प्रसिद्ध है।

संत मुक्ताबाई का जन्म ई.पू. में महाराष्ट्र के आपेगांव में वर्ष 1279 में हुआ था।

संत मुक्ताबाई को मुक्ताई के नाम से जाना जाता है। उनके माता–पिता रुक्मिणीबाई और विठ्ठलपंत हैं। संत निवृत्तिनाथ, संत ज्ञानेश्वर और संत सोपानदेव मुक्ताबाई के बड़े भाई थे।

माता–पिता की मृत्यु के बाद इस अनूठे साधारण परिवार की गृहिणी की नाजुक जिम्मेदारी मुक्ताबाई पर आ गयी। उसने उसे उठाया और उतनी ही कुशलता से ले गई। वह अपने भाई–बहनों के लिए माँ की तरह बन गईं। अतः मुक्ताई खेलने–कूदने की उम्र में ही परिपक्व, गम्भीर एवं समझदार हो गयी।5

1. मुक्ताबाई का जन्म

संतश्रेष्ठ ज्ञानेश्वर महाराज की बहन संत मुक्ताबाई ने जलगांव जिले के एदलाबाद (आज का मुक्ताईनगर) में समाधि ली थी । मुक्ताबाई का जन्म इंद्रायणी नदी के तट पर बसे आळंदी गांव के निकट सिद्धबेट पर अश्विन शुद्ध प्रतिपदा शुक्रवार शके 1201 अर्थात इ. सन. 1279 में हुआ । उनके माता–पिता का मूल गांव, संभाजीनगर जिले की पैठण तालुका में आपेगांव था । संत मुक्ताबाई का नाम मुक्ताई विठ्ठलपंत कुलकर्णी था । निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान और मुक्ताई ; इनमें सबसे छोटी मुक्ताबाई थी । बचपन में ही निवृत्तिनाथ एवं उनके भाईयों को स्वजातीयों ने 'संन्यासी के बच्चे' कहते हुए उन्हें बहुत कष्ट दिए, परंतु समस्त दुःख सहते हुए इन चारों बहन–भाईयों ने ब्रह्मविद्या की अखंड उपासना की । 'हमारे पश्चात अपने बच्चे तो सुखी रहेंगे', इस आशा से विठ्ठलपंत–रुक्मिणी ने निर्दयी समाज द्वारा दिए गए 'देहांत प्रायःश्चित' का निर्णय स्वीकारते हुए त्रिवेणी संगम में देहविसर्जन किया ।

2. गुरुपरंपरा

मच्छिंद्रनाथ ऊर्फ मत्स्येंद्रनाथ – गोरखनाथ ऊर्फ गोरक्षनाथ – गहिनीनाथ – निवृत्तिनाथ – मुक्ताबाई, ऐसी यह गुरुपरंपरा है । इस महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वरादि चारों में मुक्ताबाई अपनी विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध हैं । चौदह सौ वर्ष जीवित

रहनेवाले योगेश्वर चांगदेव को गर्व हो गया था। उन्हीं की गुरू मुक्ताई थीं।

(मूल मराठी)

चौदह सौ वर्ष शरीर केले जतन। नही अज्ञानपन गेले माझे ।।
अहंकारें माझें बुडविलें घर। जालों सेवा थोर स्वामीसंगे ।।
अभिमानें आलों श्रीआळंकापुरीं। अज्ञान केलें दुरी मुक्ताईनें ।।

(हिन्दी अनुवाद)

1400 वर्ष शरीर का जतन किया। पर अज्ञान नहीं मेरा दूर हुआ ।।
अहंकार ने मेरा घर जलाया। मुक्ताबाई ने मेरा अज्ञान दूर किया ।।

ऐसी चांगदेव की स्वीकृति है। समाज से हो रहे तिरस्कार से ऊबकर संत ज्ञानेश्वर खिन्न हो गए और कक्ष में बैठ गए। उन्होंने कक्ष का दरवाजा अंदर से बंद कर लिया। तब 'ताटी उघडा ज्ञानेश्वरा' मुक्ताबाई द्वारा रचा गया यह अभंग 'ताटीचे अभंग' के रूप में प्रसिद्ध है।

अपना अवतारकार्य समाप्त कर संतश्रेष्ठ ज्ञानेश्वर और संत सोपानदेव समाधिस्त हो गए थे। इसलिए मुक्ताई खिन्न हो गई थी।

(मूल मराठी)

मुक्ताई उदासी जाली असे फार।
आत्मा हें शरीर रक्षूं नये ।।

(हिन्दी अनुवाद)

मुक्ताबाई अत्यंत उदास हो गई।
आत्मा की रक्षा करनी है, शरीर की नहीं ।।

उनके मन में भी ब्रह्मलीन होने के विचार आने लगे। वैशाख माह की कडी धूप पड रही थी। तापी के तट पर वैष्णवों का बडा समुदाय जमा था। एदलाबाद से दो मीलों के अंतर पर माणेगांव के एकांत में संत निवृत्ती महाराज ने गंगाधारा के निकट मुक्ताईं को उसके ब्रह्मभाव का स्मरण करवाया।

अंतर बाहेर स्वामीचें स्वरूप ।
स्वयें नंदादीप उजळिला ।।

हिन्दी अनुवाद
अंदर–बाहर स्वामी का स्वरूप ।
दिखाएं स्वयं नंदादीप ।।

अर्थात, अंदर और बाहर स्वामी का ही स्वरूप है, यह स्वयं नंदादीप ने अर्थात आत्मा ने प्रकाशित होकर दिखा दिया ।

ऐसा कहते हुए स्वरूपाकार स्थिति में आकाश गरजे और बिजली कडकी । इसके साथ ही संत मुक्ताबाई सहजस्वरूप में मिल गई ।

एक प्रहर जाला प्रकाश त्रिभुवनीं ।
जेव्हां निरंजनीं गुप्त जाली ।।

हिन्दी अनुवाद
एक प्रहर हुआ प्रकाश त्रिभुवन में ।
जब निरंजन गुप्त हो गया ।।

वैशाख कृष्ण 10, इस तिथि को संत मुक्ताबाई अंतर्धान हो गई । संत मुक्ताबाई जहां अंतर्धान हुईं वहां पास ही उनका मंदिर बनाया गया है ।'

(साभार : 'दिनविशेष')

<u>अध्याय – द्वितीय</u>

महात्मा किसे कहते है?

महात्मा शब्द दो शब्दों महा और आत्मा के मेल से बना है और इसका अर्थ होता है एक महान व्यक्ति यह शब्द संस्कृत का है पर अब यह शब्द हिन्दी साहित्य विश्व की प्रमुख भाषाओं में इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। ऋग्वेद में सभी मनुष्य जो पृथ्वी पर विचरण करते है, और महान कार्यों को करने के बाद जगत का कल्याण करने की कामना हमेशा अपने मन, कर्म और वाणी के अन्दर रखते है महात्मा कहलाते है। महात्मा शब्द आधुनिक **ईसाई** वाले सेंट (संत) शब्द से बहुत हद तक मेल खाता है।

इस उपाधि को प्रमुख हस्तियों जैसे मोहनदास करमचंद गांधीह और ज्योतिका फुले के लिए आमतौर पर प्रयुक्त किया जाता है। कई स्त्रोंतों जैसे दत्ता और रॉबिन्सन की रवीन्द्रनाथ टैगोरः एक संकलन के अनुसार रवीन्द्रनाथ टैगोर व्यक्ति थे जिन्होंने गांधी जी को पहले यह उपाधि प्रदान की थी। नाम से पुकारा था, जबकि कुछो के मुताबिक नौत्तम लाल भगवानजी मेहता ने जैतपुर के कमरीबाई विद्यालय में पहली बार 21 जनवरी 1915 को गांधीजी को महात्मा शीर्षक प्रदान किया था। गांधीजी को वैद्य जीवनराम कालीदास ने 21 जनवरी 1915 को 'महात्मा' कहकर संबोधित किया था। शब्द का इस्तेमाल सिद्ध, मुक्त आत्माओं और पेशेवरों का उल्लेख करने के लिये किया जाता है। तकनीकी अर्थ में इस शब्द को लोकप्रियता विश्व में थियोसोफिकल साहित्य में प्रयोग होने के बाद मिली 19 वीं सदी के अंत में जब मदान हेलेना पी. ब्लावात्सकी, थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापकों में से एक ने दावा किया कि उनके गुरू एक सिद्ध या महात्मा है जो तिब्बत में रहते है।

1. महात्मा गौतम बुद्ध
2. महावीर स्वामी
3. अश्वघोष, नागार्जुन, वसुबन्धु
4. शंकराचार्य
5. रामानुजाचार्य
6. मध्वाचार्य
7. चैतन्य महाप्रभु
8. वल्लभाचार्य
9. स्वामी रामानंद
10. तिरूवल्लुवर
11. कवि कम्ब
12. शंकरदेव
13. सायणाचार्य
14. माधवाचार्य
15. पुरंदरस्वामी
16. दयानंद सरस्वती
17. महात्मा ज्योतिबा फुले
18. महात्मा गांधी

<u>महात्मा बुद्ध</u>

1. **महात्मा बुद्ध** ईसा से 600 वर्ष पूर्व कपिल वस्तु में शाक्य राजा शुद्धोधन के यहा अवतरित हुए। शीघ्र ही वैराग्य लेकर घर से निकल गये गया में पीपल के वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ और बौद्ध धर्म की स्थापना की गौतम बुद्ध का नारा था – ''अतीत में मत रहे। भविष्य सपने मत देखो, मन को वर्तमान पर केन्द्रित करो'' बुद्ध के अनुसार मनुष्य के दुःख का मूल कारण है कि हर दुःख की वजह तृष्णा यानी तेज इच्छा हैं। इसलिये किसी भी चीज के लिए तृष्णा नहीं रखना चाहिए। याने किसी चीज या इंसान से उम्मीद नही चाहिए।

बुद्ध कहते है दुःखी होने से पेरशानियां समाप्त नही होती हर इंसान को दुःख से छुटकारा पाने के लिए उससे जुड़ी बातों पर विचार करना चाहिए। भगवान बुद्ध द्वारा दी गई सीख आज भी प्रासंगिक है। गौतम बुद्ध ने सारनाथ में दिए अपने पहले उपदेश में भी दुःख के बारे में बात की है। उन्होंने कहा है कि दुःख के बारे में अच्छे से जान लेने के बाद ही सुख मिलता है। उन्होंने बताया है कि हर व्यक्ति कभी न कभी दुःखी होता है, हर इन्सान को ये जान लेना चाहिए कि दुःख का कारण क्या है क्यों दुःख आता है। हर तरह के दुःख से छुटकारा पाया जा सकता है। और दुख को खत्म करने के क्या उपाय है। इन बातों को जो इंसान समझ लेता है वो किसी भी हालत में परेशान नहीं होता है।

बुद्ध की 4 सीख :– 1. दुःख है – महात्मा बुद्ध की पहली सीख कहती है कि संसार में दुःख है। बुद्ध कहते हैं कि इस संसार में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है। जिसे दुख ना हो उनके मुताबिक दुःख को एक सामान्य स्थिति समझना चाहिए इस खुद पर हावी नही होने देना चाहिए। इसलिए हर इंसान को दुःखी होने पर चिंतित और परेशान नहीं होना चाहिए। इसके उलट खुद को खुश रखने की कोशिश करना चाहिए।

2. **दुःख का कारण है –** महात्मा बुद्ध ने अपनी दुसरी सीख में दुःख के कारण का जिक्र किया है। बुद्ध का कहना है कि हर दुख की वजह तृष्णा यानी तेज इच्छा है। इसलिए किसी भी चीज के लिए तृष्णा नही रखना चाहिए। यानी कहा जा सकता है कि किसी चीज या इन्सान से उम्मीद नही रखना चाहिए।

3. **दुख का निवारण है :—** महात्मा बुद्ध ने तीसरी सीख में बताया है कि किसी भी तरह का दुःख हो उसको दूर किया जा सकता है उनका कहना है कि हर इंसान को ये समझना चाहिए कि कोई भी दुख हमेशा नही रह सकता है उसको खत्म किया जा सकता है।

4. दुःख निवारण का उपाय है :— बुद्ध का कहना है कि दुख को दुर करने का उपाय मौजूद होता है। निवारण के उपाय भी मौजूद है। दुःख को दूर करने के लिए इंसान को भगवान बुद्ध के बताए गए सद् मार्ग यानी अर्ष्टागिक मार्ग को जानना चाहिए। जिससे कभी दुख महसूस नही होगा।

बौद्ध धर्म के पांच उपदेश — जीवित प्राणियों की हत्या, चोरी, यौन दुर्व्यवहार झुठ, और नशा से दूर रहने की प्रतिबध्दता है।

बुद्ध की शिक्षाऐं जिन्हें धर्म या धम्म के नाम से भी जाना जाता है का उद्देश्य पूरी तरह से मनुष्यों को पीड़ा से मुक्ति दिलाना है। यह बुद्ध द्वारा सिखाए गए सत्य को प्रकट करता है और लोगों को महान अष्टांगिक मार्ग का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो उन्हें ज्ञान प्राप्त करने की ओर ले जाएगा। बुद्ध ने सदगुणों को महत्व दिया : ज्ञान, दया, धैर्य, उदारता और करूणा। बौद्ध धर्म का मूल बुद्ध की शिक्षाओं से बना है जो है।

- तीन सार्वभौमिक सत्य,
- चार आर्य सत्यः तथा
- अष्टागिक आर्य मार्ग

पांच उपदेश — बुद्ध ने व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए पांच सुझाव भी दिए (बुद्ध की शिक्षाएँ) ये सुझाव, जिन्हें सामूहिक रूप से पंचशील कहा जाता है।

आर्य सत्य (पालि : अरियसच्च) की संकल्पना बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धांत है। इसे संस्कृत में 'चत्वारि आर्यसत्यानि' और पाली में ''चत्तारि अरियस च्यानि कहते हैं (1)

बुद्ध दर्शन के सकारात्मक पहलू बुद्ध दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण विचार ''आत्म दीपों भवः अर्थात् अपने दीपक स्वयं बनो। इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति को अपने जीवन का उद्देश्य या नैतिक—अनैतिक प्रश्न का निर्णय स्वयं करना चाहिए यह विचार इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ज्ञान और नैतिकता के क्षेत्र में एक छोटे से बुद्धिजीवी वर्ग के एकाधिकार को चुनौती देकर हर व्यक्ति को उसमें प्रविष्ट होने का अवसर प्रदान करता है।

''बुद्ध दर्शन का दुसरा प्रमुख विचार' 'मध्ययम मार्ग' के नाम से जाना जाता है सूक्ष्म दार्शनिक स्तर पर तो इसका अर्थ कुछ भिन्न है किंतु लौकिकता के स्तर पर इसका अभिप्राय सिर्फ इतना है कि किसी भी प्रकार के अतिवादी व्यवहार से बचना बुद्ध दर्शन का तीसरा प्रमुख विचार ''संवेदनशीलता'' है। यहाँ संवेदनशीलता का अर्थ है दूसरों के दुखों का अनुभव करने की क्षमता। वर्तमान में मनोविज्ञान जिसे सहानुभूति (Empathy) कहता है, वह प्रायः वही है जिसे भारत में ''संवेदनशीलता कहा जाता रहा है।

''बुद्ध दर्शन का चौथा प्रमुख विचार यह है कि वे परलोकवाद की बजाय इहलोक वाद पर अधिक बल देते है। गौरतलब है कि बुद्ध के समय प्रचलित दर्शनों में चार्वाक के अलावा लगभग सभी दर्शन परलोक पर अधिक ध्यान दे रहे थे। उनके विचारों का सार यह था कि इहलोक मिथ्या है और परलोक ही वास्तविक सत्य है। इससे निरर्थक कर्मकांडो तथा अनुष्ठानों को बढ़ावा मिलता था।

- बुद्ध ने जानबूझकर अधिकांश पारलौकिक धारणाओं को खारिज किया
- बुद्ध दर्शन का पांचवा प्रमुख विचार यह है कि वे व्यक्ति को अहंकार से मुक्त होने की सलाह देते है। अहंकार का अर्थ है 'मैं' की भावना यह मैं ही अधिकांश झगड़ों की जड़ है इसलिये व्यक्तित्व पर अहंकार करना एकदम निरर्थक है।
- बुद्ध दर्शन का छठा प्रमुख विचार 'हृदय परिवर्तन के विश्वास से संबंधित है। बुद्ध को इस बात पर अत्याधिक विश्वास था कि हर व्यक्ति के भीतर अच्छा बनने की संभवनाएँ होती हैं, जरूरी यह है कि उस पर विश्वास किया जाए और उसे समूचित परिस्थितियाँ प्रदान की जाए।

महात्मा बुद्ध के विचारों की प्रासंगिकता – महात्मा बुद्ध भारतीय विरासत के एक महान विभूति है। उन्होंने संपूर्ण मानव सभ्यता को एक नयी राह दिखाई। उनके विचार उनकी मृत्यु के लगभग 2500 वर्षो के पश्चात आज भी हमारे समाज के लिये प्रासंगिक बने हुए है।

वर्तमान समय में बुद्ध के 'स्व' निर्णय के विचार का महत्व बढ़ जाता है दरअसल आज व्यक्ति अपने घर ऑफिस, कॉलेज आदि जगहों पर अपने जीवन के महत्वपूर्ण फैसले भी स्वयं न लेकर दूसरों की सलाह पर लेता है। अतः वह वस्तु

बन जाता है। बुद्ध का ''आत्म दीपो भव'' का सिद्धांत व्यक्ति को व्यक्ति बनने पर बल देता है।

- बुद्ध का 'मध्यम मार्ग सिद्धांत आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना बुद्ध के समय था। उनके इन विचारों की पुष्टि इस कथन से होती है कि वीणा के तार को उतना नही खींचना चाहिए कि वह टूट ही जाए या फिर उतना भी उसे ढीला नहीं छोड़ा जाना चाहिए कि उससे स्वर ध्वनि ही न निकले।

दरअसल आज दुनिया में तमाम तरह के झगड़े हैं जैसे सांप्रदायिकता आतंकवाद चाहिए। नक्सलवाद तथा जातिवाद इत्यादि इन सारे झगड़ों के मूल में बुनियादी दार्शनिक समस्या यही है कि कोई भी व्यक्ति देश या संस्था अपने दृष्टिकोण से पीछे हटने को तैयार नहीं है। इस दृष्टि से इस्लामिक स्टेट जैसे आंतकवादी समूह हो या मौब लिंचि (Mob Liaching) विचारधारा को कट्टर रूप में स्वीकार करने वाला कोई समूह हो या अन्य समूह सभी के साथ मूल समस्या नजरिये की ही है। महात्मा बुद्ध के ''मध्यम मार्ग सिवद्धांत को स्वीकार करते ही हमारा नैतिक दृष्टिकोण बेहतर हो जाता है। यह विचार हमें विभिन्न दृष्टिकोणों के मेल–मिलाप तथा आम सहमति प्राप्त करने की ओर ले जाता है।

महात्मा बुद्ध का यह विचार की दुखों का मूल कारण इच्छाएँ है, आज के उपभोक्तावादी समाज के लिए प्रासंगिक प्रतीत होता है। दरअसल प्रत्येक इच्छाओं की संतुष्टि के लिए प्राकृतिक या सामाजिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में अगर सभी व्यक्तियों के भीतर इच्छाओं की प्रबलता बढ़ जाए तो प्राकतिक संसाधन नष्ट होने लगेगे, साथ ही सामाजिक संबंधों के तनाव उत्पन्न हो जाएगा ऐसे में अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करना समाज और नैतिकता के लिये अनिवार्य हो जाता है। इस बात की पुष्टि हाल ही मैं ''अर्थ आवर शूट डे'' के रिपोर्ट से होती है जिससे यह पता चलता है कि जो संसाधन वर्ष भर चलना चाहिए था। वह आठ मास में ही समाप्त हो गया।

1. **छः कलायें** :– जैन पुराण साहित्य में अहिंसा, अस्तेय, अचार्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और कला का उपदेश ऋषभदेव जी ने दिया।

2. **ऋषभदेव** :– नाभीराय तथा मेरूदेवी के पुत्र। जैन धर्म के 24 तीर्थकारों में से प्रथम, इन्होंने भी अपने तरह से मानव की सेवा की है।

3. **महावीर स्वामी :–** जैन धर्म के 24 वें अंतिम तीर्थंकर जन्म 599 ई.पूर्व कुन्डग्राम या कुण्डलपुर में राजा सिद्धार्थ एवं त्रिशलादेवी के घर हुआ। 527–28 ई.पूर्व पावापुरी नामक स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान महावीर वर्तमान अवसर्पिणी काल की चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर थे और हिंसा, पशुबलि जातपात का भेदभाव जिस युग में बढ़ गया उसी युग में भगवान महावीर का जन्म हुआ। उन्होंने दुनिया को सत्य अहिंसा का पाठ पढ़ाया तीर्थंकर महावीर स्वामी ने अंहिसा को सबसे बड़ा उच्चतम नैतिक गुण बताया। उन्होंने दुनिया को जैन धर्म के पंचशील सिद्धांत बताए, जो है – अहिंसा, सत्य अपरिग्रह, अचौर्य (अस्तेय), ब्रह्मचर्य। उन्होंने अनेकांतवाद, स्वादवाद और अपरिग्रह जैसे अभ्दुत सिद्धांत दिए। महावीर के सर्वोदयी तीर्थों में क्षेत्र, काल, समय या जाति की सीमाएँ नहीं थी। भगवान महावीर का आत्म धर्म जगत की प्रत्येक आत्मा के लिए समान था। दुनिया की सभी आत्माएँ एक सी हैं इसलिए हम दुसरो के प्रति वही विचार एवं व्यवहार रखें जो हमें स्वयं को पसंद हो। यही महावीर का जियो और जीने दो'' का सिद्धान्त है।

जैन ग्रंथो के अनुसार केवल ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान महावीरजी ने उपदेश दिया। उनके 11 ''गणधर (मुख्य शिष्य) थे जिनमें प्रथम इंद्रभूमि थे।

पाँच व्रत –

- **सत्य –** सत्य के बारे में भगवान महावीर स्वामी कहते है हे पुरूष! तू सत्य को ही सच्चा तत्व समझ। जो बुद्धिवान सत्य की ही आज्ञा में रहता है, वह मृत्यु को तैरकर पार कर जाता है।

- अहिंसा इस लोक में जितने भी त्रस जीव (एक, दो, तीन, चार, और पांच इंद्रियों वाले जीव है उनकी हिंसा मत कर उनको उनके पथ पर जाने से न रोको। उनके प्रति अपने मन में दया भाव रखो। उनकी रक्षा करो। यहि अहिंसा का संदेश भगवान महावीर अपने उपदेशों से हमें देते है।

- **अचौर्य –** दूसरों के वस्तु बिना उसके दिए हुआ ग्रहण करना जैन ग्रंथों में चोरी कहा गया है।

- **अपरिग्रह –** आवश्यक चीजों के उपयोग ही किया जाए।

- **ब्रह्मचर्य –** महावीर स्वामी ब्रह्मचर्य के बारे में अपने बहुत ही अमूल्य उपदेश देते है कि ब्रह्मचर्य उत्तम तपस्या, नियम, ज्ञान, दर्शन, चरित्र संयम और विनय की जड़ है। तपस्या में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तपस्या है। जैन मुनि, जैन साध्वी इन्हें पूर्णरूप से पालन करते है, इसलिए उनके महाव्रत होते है और श्रावक, श्राविका इनका एकदेश पालन करते है, इसलिए उनके अणुव्रत कहे जाते है।
- **क्षमा –** क्षमा के बारे में भगवान महावीर कहते हैं, – मैं सब जीवों से क्षमा चाहता हूँ जगत के सभी जीवों के प्रति मेरा मैत्रीभाव है। मेरा किसी से बैर नही है। मैं सच्चे हृदय से धर्म में स्थिर हुआ है। सब जीवों से मैं सारे अपराधों की क्षमा मांगता हूँ। सब जीवों ने मेरे प्रति जो अपराध किए है, उन्हें मैं क्षमा करता हूँ। वे यह भी कहते है मैंने अपने मन में जिन–जिन पाप की वृत्तियों का संकल्प किया हो, वचन से जो–जो पापवृत्तियाँ की हों, मेरी वो सभी पापवृत्तियाँ विफल हों। मेरे वे सारे पाप मिथ्या हों।''
- **धर्म –** धर्म सबसे उत्तम मंगल है। अंहिसा, संयम, तप ही धर्म है। महावीरजी कहते हैं जो धर्मात्मा है, जिसके मन में सदा धर्म रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

भगवान महावीर ने अपने प्रवचनों में धर्म, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, क्षमा पर सबसे अधिक जोर दिया है। त्याग और संयम, प्रेम और करूणा, शील और सदाचार ही उनके प्रवचनों का सार था।

वर्तमान में – महावीर स्वामी की अंहिसा केवल सीधे वध को ही हिंसा नहीं मानती है, अपितु मन में किसी के प्रति बुरा विचार भी हिंसा है। वर्तमान युग में प्रचलित नारा 'समाजवाद' तब तक सार्थक नही होगा जब तक आर्थिक विषमता रहेंगी। एक ओर अथाह पैसा दूसरी ओर अभाव। इस असमानता की खाई को केवल भगवान महावीर का अपरिग्रह का सिद्धांत भर सकता है। अपरिग्रह का सिद्धांत कम साधनो अधिक संतुष्टि पर बल देता है। यह आवश्यकता से ज्यादा रखने की अनुमति नही देता।

भगवान महावीर के अनुयायी उनके नाम का स्मरण श्रद्धा और भक्ति से लेते है। उनका यह मानना है कि महावीर ने इस जगत को न केवल मुक्ति का संदेश दिया, अपितु मुक्ति की सरल और सच्ची राह भी बताई। भगवान महावीर ने आत्मिक और शाश्वत सुख की प्राप्ति हेतु अंहिसा धर्म का उपदेश दिया।

विकिपीडिया से साभार लिया। इस तरह महावीर स्वामी ने समाज को दिशा दर्शन किया। मानवों की सेवा की।

4. **अश्वघोष –** सम्राट कनिष्क के समय प्रसिद्ध विद्वान, दार्शनिक एवं कवि गीतों के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार किया। बुद्ध चरितम् के लेखक बुद्धचरितम संस्कृत का महाकाव्य है। इसके रचयिता अश्वघोष हैं। इसकी रचनाकाल दूसरी शताब्दी है। इसमें गौतम बुद्ध का जीवन चरित वर्णित हैं। इस महाकाव्य का आरम्भ बुद्ध के गर्भाधान से तथा इसकी परिणति बुद्धत्व प्राप्ति में होती है। यह महाकाव्य भगवान बुद्ध के संघर्षमय सफल जीवन का उज्जवल तथा मूर्त चित्रपट है। इसकी कथा का रूप–विन्यास वालमीकि कृत रामायण से मिलता जुलता है।

सन् 420 में धर्मरक्षा ने इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया तथा 7वीं, 8 वीं शती में इसका अत्यन्त शुद्ध तिब्बती अनुवाद किया गया। दुर्भाग्यवश यह महाकाव्य मूल रूप में अपूर्ण ही उपलब्ध है। 28 सर्गो में विरचित इस महाकाव्य के द्वितीय से लेकर त्रयोदश सार्ग तक तथा प्रथम एवं चर्तुथ सर्ग के कुछ अंश ही मिलते है। इस महाकाव्य के शेष सर्ग संस्कृत में उपलब्ध नहीं है। इस महाकाव्य के पूरे 28 सर्गो का चीनी तथा तिब्बती अनुवाद अवश्य उपलब्ध है। इसका चीनी अनुवाद पांचवी शताब्दी के प्रारम्भ में 'धर्मरक्ष', 'धर्मक्षेत्र' अथवा 'धर्माक्षर' नामक किसी भारतीय विद्वान ने ही किया था तथा तिब्बती अनुवाद 9 वीं शताब्दी से पूर्ववर्ती नहीं है। (3)

5. नागार्जुन – नागार्जुन ने 'शून्यवाद' सिद्धांत को व्यवस्थित किया इसे मध्यममार्ग या मध्यमिका दर्शन के नाम से जाना जाता है। मध्यमिका के कुछ संप्रदायों के अनुसार ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु चाहे वह सजीव हो या निर्जीव बुद्ध का कार्य करती है और उनके आध्यात्मिक प्रभाव से प्रेरित होती है। वास्तव में यह न तो शून्य है और नही अशून्य।

6. वसु बन्धु बौद्धाचार्य वसुबन्धु की बौद्ध जगत में एक प्रकाण्ड पण्डित और शास्त्रार्थ–पटुता के कारण बड़ी प्रतिष्ठा है। अपनी अनेक कृतियों द्वारा उन्होंने बुद्ध के मन्तव्य का लोक में प्रसार करके लोक का महान कल्याण सिद्ध किया है। उनके इस परहित कृत्य को देखकर विद्वानों ने उन्हें ''द्वितीय बुद्ध'' की उपाधि से विभूषित किया। आचार्य वसुबन्धु शास्त्रार्थ में अत्यन्त निपुण थे। उन्होंने महावैयाकरण वसुरात को शास्त्रार्थ में पराजित किया था सुना जाता है कि सांख्याचार्य विन्ध्यवासी ने उनके गुरू बुद्धमित्र को पराजित किया था। इस पराजय का बदला लेने वसुबन्धु विन्ध्यवासी के पास शास्त्रार्थ करने

पहुँचे, किन्तु तब तक विन्धवासी का निधन हो गया था। फलतः उन्होंने विन्धवासी के सांख्यसप्तति' ग्रन्थ के खंडन में 'परमार्थसप्तति नामक ग्रंथ की रचना की वसुबन्धु के काल की तिथि के विषय में विद्वानों में काफी विवाद है। वसुबन्धु का सर्वाधिक मान्य समय चौथी शताब्दी ईसवी सन् है। बौद्ध न्याय शास्त्र के मुख्य प्रवर्तक आचार्य दिङ्नाग इनके शिष्य थे। वसुबन्धु का समय 360–440 ई. अस्थाई रूप से स्वीकार किया जाता है। भोटदेशीय इतिहासकार लामा तारानाथ और बुदोन के अनुसार इन्होंने संघभद्र से विद्याध्ययन किया था। आचार्य परमार्थ के अनुसार इनके गुरू बुद्धमित्र थे।

ग्रंथ रचना – वसुबन्धु ने वैभाषिक सिद्धांतो का सम्यक प्रतिपादन करने के लिए 'अभिधर्मकेश' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमें छः सौ कारिकाऐं है। बाद में आचार्य ने इसका एक भाष्य भी लिखा। परम्परा से ज्ञान होता है कि भाष्य में आचार्य वसुबन्धु ने सौत्रान्तिक नये को स्वीकार किया था, जिसके खंडन के लिए आचार्य संघभद्र ने पच्चीस हजार श्लोकों में 'न्यायनुसार' शास्त्र की रचना की थी। 'कर्मसिद्धि प्रकरण' आचार्य की दूसरी रचना है जिसमें सौत्रान्तिक दृष्टि होते हुए भी महायान का प्रभाव लक्षित होता है। मानो वे हीनयान से महायान में परिवर्तन की संक्रमण रेखा पार करते हुए विज्ञानवादी योगाचार दृष्टि कोण का समर्थन कर रहे थे। पच्चस्कधं प्रकरण और व्याख्यायुक्ति आचार्य वसुबंधु की दूसरी रचनाएं है। ''त्रिस्वभाव निर्देश' में महायान सिद्धांतो का विशेष रूप में परतंत्र परिकल्पित और परिनिष्पन्न इन तीन स्वभावों लक्षणों का संग्राम रीति से प्रतिपादन किया गया है। शिवतिका (सवृत्ति) और त्रिशिका कारिकाओं में आचार्य वसुबन्धु के महायान दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। जबकि विशिंका कारिका और उसकी वृत्ति में योगाचार के दृष्टिकोण से बाह्यर्थ का प्रतिषेध है, त्रिशिंका की तीस कारिकाओं में विज्ञानवाद के आलय विज्ञान सिद्वांत का क्रमबद्ध निरूपत्र किया गया है। मध्यान्तसूत्र विभाग सूत्रभाष्य आर्य मैत्रेयनाथ के मध्यान्तसूत्र विभाग की विस्तृत टीका है। इसके अतिरिक्त परमार्थ सप्तति, सध्दर्मपुण्डरीकोपदेश, वज्रच्छैदिका, प्रज्ञापारमिताशास्त्र, आर्यदेव के शतशास्त्र की व्याख्या प्रभृति ग्रन्थ भी वसुबन्धु की कृतियों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। आचार्य वस्तुबन्धु ने सर्वस्तिवाद दृष्टिकोण से अभिधर्मकोश (कारिका तथा भाष्य) के आठ कोशस्थानोधातु, इन्द्रिय लोक धातु, कर्म, अनुशय आर्यपुग्दल, ज्ञान और ध्यान तथा परिशिष्ट रूप पुदग्लकोश (भाष्य) में अभिधर्म के सिद्वांतो का विशद रूप से उपन्यास किया है। वसुबन्धु का महत्व – वसुबन्धु का बौद्ध परम्परा में न केवल अभिधर्म और योगाचार दर्शन को एक व्यवस्थित और क्रमबद्ध

स्वरूप प्रदान करने के कारण महत्व है अपितु उनका महत्व बौद्ध विचार पद्धति में हेतु विद्या, वादविधि और प्रमाण व्यवस्था को एक निश्चित भूमि प्रदान करने में भी है, जो आगे चलकर दिड्.नाग धर्मकीर्ति, ईश्वरसेन तथा अन्य बौद्ध नैयायिक आचार्यो की कृतियों में विस्पस्ट रूप से स्फुट हुई।

11. शंकराचार्य – यह तथ्य कि हिन्दू धर्म अभी भी एक गतिशील और सर्वव्यापी धर्म है, आदि शंकराचार्य के कार्यो का पर्याप्त प्रमाण है। अद्वैत दर्शन के प्रणेता होने के अलावा, हिन्दू धर्म के प्रति उनके अमूल्य योगदान में से एक प्राचीन संन्यास संप्रदाय का पुनर्व्यवस्थापन और पुर्नगठन था। ये संन्यासी वेदों में निहित जीवन के शास्वत नियम को आज भी प्रवाहित करते हैं जो मानवता को जोड़ने वाली और उसे एकीकृत करने वाली गतिशील शक्ति के रूप में जन–जन तक पहुंचती है। भगवान आदि शंकराचार्य को आदर्श संन्यासी माना जाता है। उनका जन्म केरल (मलाबार) के कालंडी ग्राम में शिवगुरू माता श्रीमती सुभद्राजी के (आर्यम्बा) के घर भगवान शक्कर के आर्शिवाद से सन् 788 ई. में हुआ। उन्होंने गुरू गोविन्दपाद से सन्यास की दीक्षा ली। तीन वर्ष की अवस्था में पहुँचते–पहुँचते ही उनके पिता परलोकवासी हो गए। पांच वर्ष की अवस्था में इन्हें पढ़ने के लिये गुरूकुल भेजा गया सात वर्ष की आयु में ये सम्पूर्ण वेदशास्त्र में पारंगत होकर घर वापस आ गए। इनकी अवधारणा प्रतिभा को देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे। विद्याध्ययन समाप्त होने के बाद भगवान शंकराचार्य ने सन्यास लेना चाहा किन्तु उनकी माता ने अनुमति नही दी। एक दिन ये अपनी माता के साथ नदी में स्नान करने गये। स्नान करते समय इन्हें एक मगर ने पकड़ लिया। इन्होंने अपनी माता से कहा अगर मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दे देंगी तो मगर छोड़ देगा। विवश होकर माता को संन्यास की अनुमति प्रदान करनी पड़ी। आठ साल की छोटी सी उम्र में, मुक्ति की इच्छा से जलते हुए, उन्होंने अपने गुरू की तलाश में घर छोड़ दिया। जाते समय माता की मृत्यु के समय उपस्थित रहने का वचन देकर ये संन्यास लेने के लिये चल दिए। दक्षिण राज्य केरल से युवा शंकराचार्य लगभग 2000 कि.मी. पैदल चलकर भारत के मध्य मैदानों में नर्मदा नदी के तट पर अपने गुरू गोविंदपाद के पास पहुंचे। वे वहां चार साल तक अपने गुरू की सेवा करते रहे। अपने गुरू के दयालु मार्गदर्शन में युवा शंकराचार्य ने सभी वैदिक शास्त्रों में महारथ हासिल कर ली। बारह वर्ष की आयु में ही उनके गुरू ने मान लिया था कि शंकराचार्य प्रमुख धर्मग्रंथों पर भास्य लिखने के लिये तैयार है। अपने गुरू के आदेश या

धर्मग्रंथों की शिक्षाओं में छिपें सूक्ष्म अर्थो को स्पष्ट करने वाले भाष्य लिखीं। सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने सभी प्रमुख ग्रंथ लिखने के बाद कलम छोड़ दी।

गुरू के साथ रहने के बाद इस काल में युवा शिष्य के बारे में एक किवदंती प्रचिलित है। वर्षा ऋतु में नर्मदा नदी उफान पर थी। बाढ़ का पानी बढ़ता जा रहा था और उस गुफा में घुसने वाला था जिसमें उनके गुरू गहरी समाधी में लीन बैठै थे। उनके शिष्यों ने उन्हें परेशान करने की हिम्मत नही की, हाँलाकि उनका जीवन खतरे में था। तब शंकराचार्य ने गुफा के द्वार पर अपना कमंडल रखा और कहा यह बाढ़ के सभी पानी को सोख लेगा। उनकी बात सच साबित हुई। बाढ़ का पानी उनके गुरू के ध्यान को भंग नही कर सका। गुरू गोविंदपाद ने उन्हें आशिर्वाद देते हुए कहा, ''जिस तरह तुमने बाढ़ के पानी को अपने कमंडल में रोक रखा था उसी तरह तुम्हें वेदान्तिक शास्त्रों के सार से यक्त भाष्य लिखना चाहिए। इस कार्य से तुम्हें अनंत यश प्राप्त होगा।''

सोलह वर्ष की आयु से बत्तीस वर्ष की आयु तक शंकराचार्य प्राचीन भारत के कौने–कौने में भ्रमण करते रहे और जन–जन के हृदय में वेदों का जीवनदायी संदेश पहुंचाते रहे। ''ब्रह्म, शुद्ध चेतना, परम सत्य है। संसार मिथ्या है। शास्त्रों की यही सही समझ है, यह वेदान्त की गर्जनापूर्ण घोषणा है'' ब्रह्म सत्यं जमत मिथ्या, जीवो ब्रह्मेव न परा'' कथन द्वारा उन्होंने विशाल शास्त्रों का सार संक्षेपित कर दिया। उन दिनों प्राचीन भारत अंधविश्वासों और शास्त्रों की गलत व्याख्याओं के दलदल में डुबा हुआ था। निकृष्ट कर्मकाण्ड फल–फुल रहे थे। सनातन धर्म का सार, जिसमें प्रेम करूणा और मानवता की सार्वभौमिकता का सर्वव्यापी संदेश था, इन कर्मकांड के अंधाधुंध प्रदर्शन में पुरी तरह से खो गया था। शंकराचार्य ने विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के विभिन्न विद्वानो और नेताओं को जोरदार विवादों में चुनौती दी। उन्होंने शास्त्रों की अपनी–अपनी व्याख्याएं प्रस्तुत की लेकिन विलक्षण बालक ऋषि ने आसानी से उन सभी को पराजित कर दिया और उन्हें शिक्षाओं का ज्ञान समझाया। इन प्रतिष्ठित लोगों ने तब शंकराचार्य को अपना गुरू स्वीकार कर लिया।

उन्होंने उनके मार्गदर्शन के अनुसार अभ्यास करना शुरू कर दिया और उनके जीवन में हुए इस परिवर्तन से उनके असंख्य अनुयायियों के जीवन में भी परिवर्तन आया, जो समाज के सभी वर्गो से आये थे। उन्होंने भारत के चार कानों में चार आश्रम स्थापित

किये और अपने चारो शिष्यों को उनके माध्यम से अद्वैत की शिक्षा और प्रचार का कार्य सौंपा।

शंकराचार्य के समय में असंख्य संप्रदाय थे जो अपने संकीर्ण दर्शन और पूजा पद्धतियों का पालन करते थें। लोग एक इश्वर के अंतनिर्हित सामान्य आधार के प्रति पूरी तरह से अंधे थे। उनके लाभ के लिये शंकराचार्य ने पूजा की छह संप्रदाय प्रणाली तैयार की, जिसमें मुख्य देवताओं–विष्णु, शिव, शक्ति, गुरूका, गणेश और सूर्य को सामने लाया गया। उन्होंने भारत के अधिकांश प्रमुख मंदिरों में पालन किए जाने वाले अनुष्ठानों और अनुष्ठानों को भी तैयार किया।

अपनी असीम बौद्धिक और संगठनात्मक क्षमताओं के अलावा, शंकराचार्य एक उत्कृष्ट कवि भी थे, जिनका हृदय इश्वरीय प्रेम से भरा हुआ था। उन्होंने 'सौदर्य कहरी', शिवानंद लहरी, निर्वाण शालकम, मनीषा पंचकम जैसो 72 भक्ति और ध्यान भजनों की रचना की। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, भगवत गीता और 12 प्रमुख उपनिषदों सहित प्रमुख धर्मग्रंथो पर 18 टिप्पनियां भी लिखी। उन्होंने अद्वैत वेदांत दर्शन के मूल सिद्धांतो पर 23 पूस्तकें भी लिखीं। जो अद्वैत ब्रह्म के सिद्धांतो की व्याख्या करती हैं। इनमें विवेक चूडामणि, आत्मबोध, वाक्य वृत्ति, उपदेश सहस्त्री आदि शामिल है।

भगवान शिव के अवतार माने जाने वाले श्री शंकराचार्य का जीवन काल केवल 32 वर्ष था। उनके बारे में कई प्रेरक किवंदतियाँ हैं।

चार मठ–चार धाम–शंकर द्वारा स्थापित –

भारत भार में अपनी यात्राओं के दौरान उन्होंने संन्यासियों के बिखरे और विविध समूहों को एकजुट करने के लिये चार मठ (आश्रम) स्थापित किए। लगभग 700 ई. शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ

मठ	**प्रदेश**
ज्योतिषपीठ मठ, बद्रीनाथ	उत्तराखण्ड (हिमालय में स्थित)
गोवर्धनपीठ, पुरी	उड़ीसा
शारदापीठ, द्वारिका	गुजरात
श्रृंगेरीपीठ, मैसूर	कर्नाटक – (1)

जगत का कारण – ईश्वर

यह निर्गुण निराकार अविकार, चित् ब्रह्म ही जगत का कारण है। जगत के कारण के रूप में उसे ईश्वर कहा जाता है। मायोपहितं ब्रह्म ही ईश्वर हैं। अतः ब्रह्म और ईश्वर दो तत्व नहीं है दोनों एक ही है। जगत का कारण होना–यह ब्रह्म की तटस्थ लक्षण है। तटस्थ लक्षण का अर्थ है, वह लक्षण जो ब्रह्म का अंग न होते हुए भी ब्रह्म की ओर संकेत करें। जगत् ब्रह्म पर आश्रित है, परन्तु ब्रह्म जगत पर किसी भी प्रकार आश्रित नहीं है, वह स्वतंत्र है। जगत का कारण प्रकृति, अणु या स्वभाव में से कोई नहीं हो सकता है। इसी से उपनिषदों ने स्पष्ट कहा है कि ब्रह्म वह है जो जगत् की सृष्टि स्थिति और लय का कारण है। जगत् की सृष्टि आदि के लिए ब्रह्म को किसी अन्य तत्व की आवश्यकता नहीं होती। इसी से ब्रह्म को अभिन्न निमित्तोपादान कारण कहा गया है, जगत की रचना ब्रह्ममाश्रित माया से होती है, परंतु माया कोई स्वतंत्र तथ्य नहीं है। यह मिथ्या है, इसलिए ब्रह्मा को ही कारण कहा गया है। माया या अविद्या के कारण ही जहाँ कोई नाम रूप नहीं है जहाँ भेद नहीं है, वहाँ नाम–रूप और भेद का आभास होता है। इसी से सृष्टि को ब्रह्म का दिवर्त भी कहा गया है। विवर्त का अर्थ है कारण या किसी वस्तु का अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए अन्य रूपों में अवभाषित होना, अर्थात परिवर्तन वास्तविक नहीं बल्कि आभास मात्र है।

शंकराचार्य जी ने अपने अकाट्य तर्को से शैव–शाक्त वैष्णवों का द्वंद समाप्त किया और पंचदेवोपासना का मार्ग प्रशस्त किया। ''उन्होंने आसेतु हिमालय संपूर्ण यात्रा की और चार मठों की स्थापना करके पूरे देश को सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक और भौगोलिक एकता के अविच्छिन्न सूत्र में बान्ध दिया। उन्होंने समस्त मानव जाति को जीवनमुक्ति का एक सूत्र दिया – (2)

'दुर्जनः सज्जनों भूयात सज्जनाः शांतिमापुयात।
शान्तो मुच्येत बंधेम्यो मुक्तः चान्यान विभोच्येत्।। (3)

अर्थात् दुर्जन सज्जन बने सज्जन शांति बनें। शान्तजन बन्धनों से मुक्त हों और मुक्त अन्य जनों को मुक्त करें। अपना प्रयोजन पूर्ण होने के बाद ही बत्तीस वर्ष की अल्पायु में उन्होंने इस नश्वरदेह को छोड़ दिया। संक्षेप में अद्वैत – शंकराचार्य एक महान समन्वयवादी थे। उन्हें सनातन धर्म को पुनः स्थापित एवं प्रतिष्ठित करने का श्रेय दिया जाता है। एक तरफ उन्होंने अद्वैत चिंतन को पुर्नजिवित करके सनातन हिन्दू धर्म के दार्शनिक आधार को सुदृढ़

किया तो दूसरी तरफ उन्होंने जन सामान्य में प्रचलित मूर्ति पूजा का औचित्य सिद्ध करने का भी प्रयास किया।

उन्होंने कहा कि ज्ञान दो प्रकार के होते है। एक परा विद्या कहा जाता है और अन्य में अपर विद्या कहा जाता है। पहल सगुण ब्रह्म ईश्वरा होता है। लेकिन दूसरा निर्गुण ब्रह्म होता है।

शंकर के अद्वैत का दर्शन का सार

ब्रह्म और जीव मूलतः और तत्वतः एक है। हमें जो भी अंतर नजर आता है उसका कारण अज्ञान है। जीव की मुक्ति के लिये ज्ञान आवश्यक है। जीव की मुक्ति ब्रह्म में लीन हो जाने में है।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रभाव :–

शंकराचार्य ने अपने वेदान्त को सुप्रतिष्ठ करने के लिए निम्नांकित कार्य सम्पादित किए उन्होंने स्पष्ट किया कि वैशेषिष्क न्याय तथा सांख्य वैदिक दर्शन नहीं है। यद्यपि यह वेद में आस्था रखते हैं। सांख्या के ईश्वरवादी तथा स्वयं को वेदाश्ररित होने के दावे को आचार्य बादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र में तथा शंकराचार्य ने अपने भाष्य में किया। शंकराचार्य ने सांख्य को वेदान्त का 'प्रधानमल्ल अर्थात् मुख्य प्रतिद्वन्दी बताया।

2. आचार्य ने पूर्वमीमांसाकृत वेद की कर्मपरख व्याख्या कर खण्डन किया। पूर्व मींमासा के अनुसार वेद के वह भाग जो स्पष्ट रूप से कर्मपरक नहीं है वह परोक्ष रूप से कर्म के अप्र बनकर ही सार्थक होते हैं। शंकराचार्य ने यह सिद्ध किया कि वेद का मुख्य लक्ष्य परमतत्व को प्रकाशित करना है। अतः वेद के ज्ञानपूर्ण मन्त्र भाग और उपनिषद् भाग मुख्य हैं। वेद के उपासना और कर्मपरक भाग गौण है क्योंकि इनका उद्देश्य चित्त की शुद्धि करना है।

3. इन्होंने उपनिषद् के प्राचीन व्याख्याकार जैसे भर्तृप्रपञ्च आदि के ब्रह्मपरिणामवाद अथवा भेदाभेदवाद मत का खण्डन किया। उसके स्थान पर आचार्य के अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया।

4. इन्होंने सिद्ध किया कि निर्विशेष या निर्गुण ब्रह्म 'शून्य' नही है ''नेति नेति' ब्रह्म विषयक निर्वचनों का निषेध करता है स्वयं ब्रह्म का नहीं। निर्विशेष ब्रह्मवाद निरपेक्ष अद्वैतवाद है।

5. आचार्य ने बौद्धों के विज्ञानवाद का मार्मिक खण्डन किया तथा अपने नित्य औपनिषद् आत्मचैतन्यवाद को उससे पृथक सिद्ध किया।

6. उन्होंने सिध्द किया कि माया या अविद्या ब्रह्म की अनिर्वाचनीय शक्ति के रूप में उपनिषद् सिद्वान्त है। उपनिषद् मैं तात्विक भेद, द्वैत, परिणाम आदि का कोई स्थान नहीं है।

संदर्भ –

1. लुचियान बग्गन धर्म के दर्शन का कोर्स पेरिस, अल्बा, यूलिया, फरोनदे का प्रकाशन संस्था, एक हजार नौ सौ नब्बे–चार, उनहत्तर पृष्ठ (ISBN 973–963–1215)

2. मीर्ची ईटु, भारतीय दर्शन और भारतीय धर्म, ब्राशोव लैटिन पूरबी का प्रकाशन संस्था, दो हजार चार सड़सठ और अड़सठ के पृष्ठों (ISBN 973–9338–70...4)

रामानुजाचार्य – 10 वीं शताब्दी के महान संत इनके पिता का नाम केशवभट्‌ट था ये दक्षिण के तेरूँकुदूर क्षेत्र में रहते थे। इन्होंने काच्ची में यादव प्रकाश नामक गुरू से वेदाध्ययन किया। कुशाग्र बुद्धी के कारण अपने गुरू की व्याख्या मे भी दोष निकाल दिया करते थे, गुरू ने ईर्ष्यावश क्रोध में इनकी हत्या की योजना बना ली किन्तु प्रभु कृपा में एक व्याध और उसकी पत्नी ने इनके प्राणों की रक्षा की। आगे चलकर गुरू को (यादव प्रकाश) को अपनी करनी पर पश्चाताप हुआ और वे भी सन्यास की दिक्षा लेकर श्रीरंगम जहाँ रामानुजाचार्य जी ने ग्रहस्थ धर्म त्यागने के बाद आकर यतिराज नामक सन्यासी से संन्यास धर्म की दीक्षा ले ली थी वहां श्रीरंगम् में श्रीरामानुजाचार्य की अपने शिष्य की सेवा में रहने लगे।

श्रीरामानुजाचार्य बड़े ही विद्वान, सदाचारी, धैर्यवान, और उदार थे। चरित्रबल और भक्ति में तो ये अद्वितीय थे। इन्हें योग सिद्धियाँ भी प्राप्त थी। ये श्री यामुनाचार्य शिष्य–परम्परा में थे। जब श्री यामुनाचार्य मृत्यु सन्निकट थी, तब उन्होंने अपने शिष्य के द्वारा श्रीयामुनाचार्य को अपने पास बुलवाया, किन्तु उनके पहुँचने के पूर्व ही श्रीयामुनाचार्य की मृत्यु हो गयी। वहाँ पहुँचने पर इन्होंने देखा कि श्रीयामुनाचार्य की तीन अंगुलियाँ मुड़ी हुई थीं। श्रीयामुनाचार्य ने समझ लिया कि श्रीयामुनाचार्य इनके माध्यम से 'ब्रह्मसूत्र', 'विष्णुसहस्त्र–नाम' और अल्वन्दारों के 'दिव्य प्रबन्धम्' की टीका करवाना चाहते हैं। इन्होंने श्रीयामुनाचार्य के मृत शरीर को प्रणाम किया और कहा भगवन्। मैं आपकी इस अन्तिम इच्छा को अवश्य पूरी करूंगा।

गृहस्थ धर्म में रहकर अपने उद्देश्य को पूरा करना कठिन हैं, तब उन्होंने गृहस्थ धर्म का त्याग किया और भक्तिमार्ग का प्रचार करने के लिये सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। इन्होंने भक्तिमार्ग के समर्थन में गीता और ब्रह्मसूत्र पर भाष्यि लिखा। वेदान्त सूत्रों पर इनका भाष्य 'श्रीभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके द्वारा चलाये गये सम्प्रदाय नाम भी 'श्रीसम्प्रदाय' है। इस सप्रदाय की आद्यप्रवर्तिका श्रीमहालक्ष्मीजी मानी जाती है। श्रीरामानुजाचार्य ने देशभर में भ्रमण करके लाखों नरनारियों को भक्तिमार्ग में प्रवृत्त किया। इनके (74) चौहत्तर शिष्य थे। इन्होंने महात्मा पिल्ललेकाचार्य को अपना उत्तराधिकारी बनाकर एक सौ बीस वर्ष की अवस्था में इस संसार से प्रयास किया। इनके सिद्धान्तानुसार भगवान विष्णु ही पुरूषोत्तम है। वे ही प्रत्येक शरीर में साक्षी रूप से विद्यमान है। भगवान नारायण ही सत् है उनकी शक्ति महालक्ष्मी चित्त है और यह जगत उनके आनंद का विलास है। भगवान श्री लक्ष्मीनारायण इस जगत से माता पिता है और सभी जीव उनकी संतान है। 1. प्रमुख ऋषि–मुनि गीता प्रेस गौरवपुर प्र.स.15 श्री मध्वाचार्य – श्री मध्वाचार्य जी का जन्म विक्रम संवत 1295 की माघ, शुक्ल, सप्तमी के दिन तमिलनाडु के मंगलूर जिले के अंतर्गत बेललिं ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीनारायण भट्ट और माता का नाम श्रीमती वेदवती था। ऐसा कहा जाता है कि भगवान नारायण की आज्ञा से भक्ति सिद्धांत की रक्षा और प्रचार के लिये स्वयं श्रीवायु देव ने ही श्री मध्वाचार्य के रूप में अवतार लिया था। अल्प काल में ही इनको सम्पूर्ण विधाओं का ज्ञान प्राप्त हो गया। जब इन्होंने सन्यास लेने की इच्छा प्रकट की तब इनके माता पिता ने मोहवश विरोध किया पर श्रीमध्वाचार्य ने अपने मातापिता के तत्कालीन मोह को अपने अलौकिक ज्ञान के द्वारा निर्मूल कर दिया। इन्होंने मात्र ग्यारह वर्ष की अल्पायु में अद्वैतमत के विद्वान संन्यासी श्रीअच्युतपक्षाचार्य से संन्यास की दीक्षा ली। इनका संन्यास का नाम पूर्णप्रज्ञ रखा गया। सन्यास के बाद इन्होंने वेदान्तका गम्भीर अध्ययन किया, विलक्षण बुद्धिमता के कारण इनके गुरू भी इनकी अलौकिक प्रतिभा से आश्चर्यचकित रह जाते थे। थोड़े ही समय में इनकी विद्वता की धूम चारों और मच गयी। इन्होंने संपूर्ण भारत का भ्रमण किया और स्थान–स्थान पर शास्त्रार्थ करके विद्वानों में दुर्लभ ख्याति अर्जित की इनके शास्त्रार्थ का उद्देश्य भगवत भक्ति का प्रचार, वेदों की प्रामाणिकता की स्थापना, माया वाद का खण्डन तथा शास्त्र मर्यादा का संरक्षण करना था। गीता भाष्य का निर्माण करने के बाद इन्होंने बदीनारायण की यात्रा की वहां इनको भगवान वेदव्यास के दर्शन हुए। अनेक राजा इनके शिष्य हुए। अनेक विद्वानों ने

इनसे प्रभावित होकर इनका मत स्वीकार किया। इन्होंने अनेक प्रकार की योग–सिद्धियाँ प्राप्त कीं। बदरीनारायण में व्यासजी ने इन पर प्रसन्न होकर इन्हें तीन शाल्ग्राम–शिलाऐं दी थीं, जिनको इन्होंने सुबह्मण, मध्य तल और उडुपी में पधराया।

श्री मध्वाचार्य ने अनेक ग्रंथों की रचना की एक बार किसी व्यापारी का जहाज द्वारका से मालवार जा रहा था। तुलुब के पास वह डुब गया। उसमें गोपीचन्द से ढकी हुई भगवान श्रीकृष्ण की एक मूर्ति थी। मध्वाचार्य को भगवान की आज्ञा प्राप्त हुई और उन्होंने जल से मूर्ति निकालकर उडपी में उसकी स्थापना की तभी से वह स्थान मध्वामतानुयायियों का श्रेष्ठ तीर्थ हो गया। इन्होंने उडुपी में और भी आठ मंदिरों की स्थापना की। आज भी उनका दर्शन करके जीवन का वास्तविक लाभ दर्शनार्थी प्राप्त करते है।

मध्वाचार्य अपने जीवन के अन्तिम समय में सरिदन्तर नामक स्थान में रहते थे। यहीं पर इन्होंने अपने पाञ्चभौतिक शरीर का त्याग किया। देहत्याग के अवसर पर इन्होंने अपने शिष्य पद्मनाभतीर्थ को श्रीरामजी की मूर्ति और व्यासजी की दी हुई शालीग्राम शिला देकर अपने मत के प्रचार की आज्ञा दी। इनके शिष्यों के द्वारा अनेक मठ स्थापित हुए।

श्रीमध्वाचार्य ने ग्रंथों की रचना के साथ–साथ पाखाण्डवाद का खाण्डण और भगवानजी के भक्ति का प्रचार करके लाखों लोगों को कल्याणपथ का अनुगामी बनाया। गीता प्रेस गोरखपुर की पुस्तक प्रमुख ऋषि मुनि से आभार (पृ. 21)

चैतन्यमहाप्रभु – चैतन्यमहाप्रभु ने 14 वीं शताब्दी में बंगाल के नवदीप ग्राम में जन्म लिया। शक संवत 1407 की फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा) इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र और माता का नाम शचीदेवी था वे भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इन्हें लोग श्री राधा का अवतार मानते है। बंगाल के वैष्णव तो इन्हें भगवान का ही अवतार मानते हैं। चौबीस वर्ष की अवस्था में श्री चैतन्य महाप्रभु ने ग्रहस्थाश्रम का त्याग करके संन्यास लिया। इनके गुरू का नाम श्रीकेशव भारती था। इनके जीवन में अनेक अलौकिक घटनाऐं हुई। जिनसे इनके विशिष्ठ शक्ति सम्पन्न भगवद्विभूति होने का परिचय मिलता है। इन्होंने एक बार अद्वैत प्रभु को अपने विश्व रूप का दर्शन कराया था। नित्यानन्द प्रभु ने इनके नारायणरूप और श्रीकृष्णरूप का दर्शन किया था। इनकी माता शचीदेवी ने नित्यानन्द प्रभु और इनको बलराम और श्रीकृष्णरूप में देखा था। चैतन्य चरितामृत के अनुसार इन्होंने कई कोढ़ियो और असाध्य रोगों से पीड़ित रोगियों को रोगमुक्त किया था।

श्री चैतन्य महाप्रभु विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। न्याय शास्त्र में इनको प्रकाण्ड पाडित्य प्राप्त था। कहते हैं कि इन्होंने न्यायशास्त्र पर एक अपूर्व ग्रन्थ लिखा था। जिसे देखकर इनके एक मित्र को बड़ी ईर्ष्या हुई। क्योंकि उन्हें भया था कि इनके ग्रन्थ को प्रकाशन में आने पर उनके द्वारा प्रणित ग्रंथ का आदर कम हो जायेगा। इस पर श्री चैतन्यजी ने अपने ग्रंथ को गंगाजी में बहा दिया।

श्री चैन्य महाप्रभु के जीवन के अंतिम छः वर्ष तो राधा भाव में ही बीते। जिस समय ये श्रीकृष्ण प्रेम में उन्नत होकर नृत करने लगते थे। लोग देखते ही रह जाते थे इनकी विलक्षण प्रतिभा और श्रीकृष्ण भक्ति का लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वासुदेव सार्वभौम और प्रकाशनन्द सरस्वती जैसे देशन्ती भी इनके क्षण मात्र के सत्संग से श्रीकृष्ण प्रेमी बन गए इनके प्रभाव से इनके विरोधी वेदान्ती भी इनके भक्त बन गये और जगाई–मंगाई जैसे दुराचारी भी संत हो गये। ''इनका प्रधान उद्देश्य भगवन्नामका प्रचार करना था और संसार में भगवत भक्ति और शान्ति की स्थापना करना था। इनके भक्ति सिद्धांत में द्वैत और अद्वैत का बड़ा ही सुंदर समन्वय हुआ है। इन्होने कलिमलग्रसित जीवों के उधार के लिये भगवन्नाम संकीर्तन को ही प्रमुख उपाय माना है। इनके उपदेशों का सार है :– मनुष्य को चाहिए की वह अपने जीवन का अधिक से अधिक समय भगवान के सुमधुर नामों को संकीर्तन में लगावे। यही अतःकरण की शुद्धि का सर्वोत्तम उपाय है। कीर्तन के समय वह प्रेम में इतना मग्न हो जाया करते थे उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगती थी। उनकी वाणी गदगद हो पुलकित हो जाया करती थी भगवान नाम के उच्चारण में देशकालका कोई बंधन नही है। भगवान ने अपनी सारी शक्ति और अपना सारा माधुर्य अपने नाम में भर दिया है। यद्यपि भगवान के सभी नाम मधुर और कल्याणकारी हैं, किन्तु हरेराम हरेराम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे'' यह महामंत्र सबसे अधिक मधुर और भगवत्प्रेम को बढाने वाला है। इन्होंने कीर्तन परिपाठी का आरम्भ किया। गौडिय वैष्णव सम्प्रदाय के संस्थापक बंगाल इनका मुख्य कार्यक्षेत्र था।

संदर्भ – 'प्रमुख ऋषि–मुनि' गीताप्रेस गोरखपुर (पृ. सं. 31)

श्री वल्लभाचार्य – श्री वल्लभाचार्य का जन्म 15 वीं शताब्दी (विक्रम संवत् 1535) वैशाख कृष्ण एकादशी को चम्पारण्य में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री लक्ष्मण भट्ट तथा माता का नाम इल्लमा था। इनके पिता सोमयज्ञ की आहुति पर काशी में एक लाख ब्राम्हणों को भोजन कराने जा रहे थे। उसी समय रास्ते में चम्पारण्य में श्री वल्लभाचार्य का

जन्म हुआ था। इनके अनुयायी इन्हें अग्निदेव का अवतार मानते है। उपनयन संस्कार के बाद इन्होंने काशी में श्री माधवेन्द्रपुरी से वेद शास्त्रों का अध्ययन किया ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने वेद उपनिषद, व्याकरण आदि में पांडित्य प्राप्त कर लिया उसके बाद श्री वल्लभाचार्य तीर्थाटन के लिये चले गये इनका मत ''शुद्धाद्वैत'' कहलाता है। जिसके अनुसार ब्रह्म ही स्वेच्छा से जगत रूप बन जाते है।

श्री वल्लभाचार्य ने विजयनगर के राजाकृष्णदेव की सभा में उपस्थित होकर वहां के बड़े–बड़े विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। वही इन्हें वैष्णवाचार्य की उपाधि प्राप्त हुई। राजा कृष्णदेव ने स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर इनकी सविधि पूजन किया। पुरस्कार में इन्हें बहुत सी स्वर्णमुद्राऐ प्राप्त हुई, जिनको इन्होंने वहां के विद्वान ब्राम्हणों में वितरित करा दिया। विजय नगर से चलकर श्री वल्लभाचार्य उज्जैन आये और वहां क्षिप्रा के तट पर उन्होंने एक पीपल के वृक्ष के नीचे साधना की। वह स्थान आज भी उनकी बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने वृदावन, गिरिराज आदि कई स्थानों में रहकर भगवान श्रीकृष्ण की आराधना की। अनेक बार इन्हें भगवान श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। इनके जीवनकाल में ऐसी अनेक घटनाएँ हुई, जिन्हें सुनकर महान आश्चर्य होता है।

एक बार की बात है एक सज्जन शालीग्राम शिला और भगवान की प्रतिमा दोनों की एक साथ पूजा करते थे। वे शिला से प्रतिमा को कनिष्ठ श्रेणीका समझते थे। श्री वल्लभाचार्य ने उन्हें समझाया कि भगवत–विग्रह में भेदबुद्धि अनुचित है। इस पर उस सज्जन ने आचार्य के सुझाव को अपना अपमान समझा और अहंकार में शालीग्राम शिला को रात में प्रतिमा के उपर रख दिया। प्रातःकाल जब उन्होंने देखा तो प्रतिमा के उपर रखी हुई शालीग्राम शीला चूर–चूर हो गयी थी। इस घटना को देखकर उनके मन में पश्चाताप का उदय हुआ है और उन्होंने श्रीवल्लभाचार्य से अपनी भूल के लिये क्षमा याचना की। आचार्य ने उन्हें पूर्ण शिला को भगवान के चरणामृत में भिगोकर गोली बनाने का आदेश दिया ऐसा करने पर शालीग्राम शिला पूर्ववत हो गयी। श्री वल्लभाचार्य ने लोक कल्याण के उद्देश्य से अनेक ग्रन्थों की रचना की। अपने जीवन के अन्तिम समय में ये काशी में निवास करते थे। एक दिन ये जब हनुमान घाट पर स्नान कर रहे थे, उसी समय वहां एक ज्योति प्रकट हुई और देखते ही देखते श्री वल्लभाचार्य का शरीर उस ज्योति में उपर उठकर आकाश में विलीन हो गया। इस प्रकार विक्रम संवत 1587 में 52 वर्ष की

अवस्था में अनेक नर–नारियों को भक्तिपथ का पथिक बनाकर श्री वल्लभाचार्य ने अपनी लौकिक लीला का सवंरण किया।

संदर्भ – गीता प्रेस गोरखपुर – पुस्तक प्रमुख ऋषि–मुनि (पृष्ठ 19)

रामानन्द – रामानंदचार्य को ही यह श्रेय है कि उन्होंने प्रेम और रामभक्ति को उत्तर भारत में जनव्यापी एक सांस्कृतिक आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया। रामभक्ति के माध्यम से उन्होंने देश में नवजागरण किया। उन्होंने भारतीय समाज में आत्मविश्वास व सामाजिक चेतना जगाई। इसके फलस्वरूप धर्म मन परिवर्तन की प्रक्रिया अवरूद्ध हुई। जनभाषा के माध्यम से उनके द्वारा फैलाया यह आंदोलन शीघ्र ही भक्ति आंदोलन के रूप में व्यक्त हुआ और जिसे कबीर तथा तुलसी ने रक्षात्मक के साथ–साथ आक्रमक स्वरूप प्रदान किया। वही राष्ट्रभक्ति की अविरल धारा आज भी भारतीय समाज को समेटे हुए प्रेरणा व राष्ट्रीय जागरण का स्त्रोत बनी हुई है।

भक्ति यात्रा – स्वामी रामानंद ने भक्ति मार्ग का प्रचार करने के लिए देश भर की यात्राएं की। वे पूरी और दक्षिण भारत के कई धर्मस्थानों पर गए और रामभक्ति का प्रचार किया। रामभक्ति की पावन धारा को हिमालय की पावन ऊँचाईयों से उतारकर **स्वामी रामानंद** जी ने गरीबों और वंचिती की झोपड़ी तक पहुंचाया, वे भक्तिमार्ग के ऐसे सोपान थे जिन्होंने भक्ति साधना को नया आयाम दिया। उनकी पवित्र चरण पादुकाऐं आज भी श्रीमठ काशी में सुरक्षित हैं, जो करोड़ो रामनंदियों की आस्था का केन्द्र है। स्वामीजी ने भक्ति के प्रचार में संस्कृत की जगह लेकभाषा को प्राथमिकता दी। उन्होंने कई पुस्तकों की रचना की जिसमें 'आनंद भाष्य' पर टीका भी शामिल है। वैष्णवमताब्ज भास्कर भी उनकी प्रमुख रचना है।

आरंभिक जीवन – स्वामी रामानन्द का जन्म प्रयागराज में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम सुशीलदेवी तथा पिता का नाम पुण्य सदन शर्मा था। आरंभिक काल में ही उन्होंने कई तरह के अलौकिक चमत्कार दिखाने शुरू किये। धार्मिक विचारों वाले उनके माता–पिता ने बालक को शिक्षा पाने के लिये काशी में स्वामी राघवानंद के पास श्रीमठ भेज दिया। श्रीमठ में रहते उन्होंने वेद पुराणों और दूसरे धर्मग्रंथों का अध्ययन किया और प्रकांड विद्वान बन गए। पंचगंगा घाट स्थित श्रीमठ में रहते हुए उन्होंने कठोर साधना की उनके जन्मदिन को लेकर कई तरह की भ्रांतिया प्रचलित है लेकिन अधिकांश विद्वान मानते हैं कि स्वामीजी का जन्म 1199 ई.वी. में हुआ था।

गुरू शिष्य परंपरा – स्वामी रामानंद श्रीराम गंगराज की परम्परा में 22 वें स्थान पर आते हैं, जैसा कि स्वामी अनन्तानंद के द्वारा कही गई गुरू परम्परा में वर्णित है :–

रामानंद स्वामी ने सबके लिये राम भक्ति का द्वार सुलभ कर दिया। साथ ही ग्रहस्थों में वर्ण संवरता ना फैले, इस हेतु विरक्त संन्यासी के लिए कठोर नियम भी बनाए। उन्होंने अनंतानंद, भावानंद पीपा, सेनबाई, धन्ना नाभादास रनध्यानंद, सुखानंद, कबीर रैदास, सुरसरी पदमावती जैसे बारह लोगो को अपना प्रमुख शिष्य बनाया, जिन्हें द्वादश महाभागवत के नाम से जाना जाता है, इन्हें अपने–अपने जाति समाज में, और इनके क्षेत्र में भक्ति का प्रचार करने का दायित्व सौंपा, इनमें कबीरदास और रैदास आगे चलकर काफी ख्याति अर्जित किये। कालांतर मैं कबीर पंथ रामानंदी संप्रदाय से अलग रास्ते पर चल पड़ा। रामानंदी संप्रदाय सुगुण उपासक है और विशिष्टाद्वैत सिध्दान्त को मानते है। कबीर और रविदास ने निर्गुण राम की उपासना की। इस तरह कहें तो स्वामी रामानंद ऐसे महान संत थे जिसकी छाया सगुण और निर्गुण दोनो तरह के संत उपासक विश्राम पाते थे। जब समाज में चारो और आपसी और वैमनस्य का भाव भरा हुआ था, वैसे समय में स्वामी रामानंद ने भक्ति करने वाले के लिए नारा दिया'' जातपात पूछे ना कोई–हरि को भेजे सो हरि का होई उन्होंने 'सर्वे प्रपतेधिकादिंणो मताः का शंखनाद किया और भक्ति का कार्य सबके लिए खोल दिया। किन्तु वर्ण संवरता ना हों, इसलिये संन्यासी वैरागी के लिये कठोर नियम बनाए, उन्होंने महिलाओं को भी भक्ति के वितान में समान स्थान दिया।

चिन्तनधारा – भारतीय धर्म दर्शन, साहित्य और संस्कृति के विकास में भागवत धर्म तथा वैष्णव भक्ति से संबंध वैचारिक क्रांति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वैष्णव भक्ति के महान संतो की उसी श्रेष्ठ परंपरा में आज से लगभग 709 वर्षो पूर्व स्वामी रामानंद का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने श्री सीतारामजी द्वारा पृथ्वी पर प्रवर्तित 'विशिष्टाद्वैत' (राममय जगत की भावधारा) सिद्वांत तथा रामभक्ति की धारा को मध्यकाल में अनुपम तीव्रता प्रदान की। उन्हें उत्तरभारत सें आधुनिक भक्ति मार्ग का प्रचार करने वाला और वैष्णव साधना के मूल प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

रामानंद का समन्वयवाद – स्वामी रामानंद ने तत्कालीन समाज में विभिन्न पंथ संप्रदायों में घोर वैमनस्यता और कटुता को दूर कर हिंदू समाज को एक सूत्र में बांधने का महनीय कार्य किया। स्वामीजी ने मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम को आदर्श मानकर रामभक्ति मार्ग का निदर्शन किया। उनकी शिष्य मंडली में उस काल के महान सन्त कबीरदास,

रैदास सेनबाई जैसे निर्गुणदारी संत थे। तो दुसरे पक्ष में अवतारवाद के पूर्ण समर्थक अर्चावतार मानकर मूर्तीपूजा करने वाले स्वामी अनन्तानंद, भावानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द जैसे वैष्णव ब्राह्मण सगुणोपासक आचार्य भक्त थे। गागरौनगढ़ नरेश 'पीपाजी' जैसे क्षत्रिय सगुणोपासक भक्त भी उनके शिष्य थे। आचार्य रामानंद के बारे में प्रसिद्ध है कि तारक राममंत्र का उपदेश उन्होंने पेड़ पर चढ़कर दिया था। ताकि सब जाति के लोंगो के कान में पड़े और अधिक से अधिक लोगों का कल्याण हो सके। आचार्य श्री ने स्वतंत्र रूप से रामानन्दी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया इस संप्रदाय को 'रामावत' अथवा बैरागी संप्रदाय भी कहते हैं। इसके 32 ऋषि गोत्री गृहस्थ अनुयायी वैष्णव ब्राह्मण हैं। इस संप्रदाय के सन्यासियों को बैरागी, कहा जाता है। अन्य कई समाज जैसे, धन्नावंशी समाज, समाज इत्यादि रामानन्दाचार्य के अनुयायी है। रामानन्दाचार्यजी ने बिखरते और नीचे गिरते हुए हिन्दू धर्म को मजबूत बनाने की भावना से भक्ति मार्ग में जाति–जाति के भेद को व्यर्थ बताया और कहा कि भगवान की शरणागति का मार्ग सबके लिए समान रूप से खुला है। ''सर्व प्रपतिधरकारिणों मताः कहकर उन्होंने किसी भी जाति–वर्ग के व्यक्ति को राममंत्र देने में संकोच नहीं किया। चर्मकार जाति में जन्में रैदास और जुलहे के घर पढ़े–बढ़े कबीरदास इसके अनुपम उदाहरण है।

धार्मिक अवदान – मध्ययुगीन धर्म साधना के केन्द्र में स्वामी जी की स्थिति चतुष्पथ के दीप–स्तंभ जैसी है। उन्होंने अभूतपूर्व सामाजिक क्रांति का श्रीगणेश करके बड़ी जीवटता से समाज और संस्कृति की रक्षा की। उन्हीं के चलते उत्तरभारत में तीर्थ क्षेत्रों की रक्षा और सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना संभव हो सकी। उस युग की परिस्थितियों के अनुसार वैरागी साधुओं को अस्त्र–शस्त्र से सज्जित अनी के रूप में संगठित कर तीर्थव्रत की रक्षा के लिये, धर्म का सक्रिय, मूर्तिमान स्वरूप खड़ा किया। तीर्थ स्थानों से लेकर गांव–गांव में बैरागी साधुओं ने अखाड़े स्थापित किये। मूल्य–हास की इस विषम अवस्था में भी संपूर्ण संसार में रामानंद संप्रदाय के सर्वाधिक मठ, संत रामगुणगान, अखंड रामनाम संकीर्तन आज भी व्यवस्थित हैं और सर्वत्र आध्यात्मिक आलोक प्रसारित कर रहे हैं। वैष्णवों के बावन द्वारों में सर्वाधिक बत्तीस द्वारे इसी संप्रदाय से जुड़े है। रामानन्दाचार्य जी स्पष्ट रूप से सगुण उपासक थे। उनका विशिष्टाद्वैत सिध्दान्त था। यह स्वामी रामानंद के ही व्यक्तित्व का प्रभाव था कि हिंदू मुस्लिम वैमनस्य शैव–वैष्णव विवाद, वर्ण–विद्वेष, मत–मतांतर का झगड़ा और परस्पर सामाजिक कटुता बहुत हद तक कम हो गई। उनके ही यौगिक शक्ति के

चमत्कार से प्रभावित होकर तत्कालीन मुगल शासक मोहम्मद तुगलक संत कबीरदास के माध्यम से स्वामी रामानंद की शरण में आया और हिंदूओं पर लगे समस्त प्रतिबंधी और जिजिया कर को हटाने का निर्देश जारी किया। ''बलपूर्वक इस्लाम धर्म में दीक्षित हिंदूओं को फिर से हिन्दू धर्म में वापस लाने के लिए परावर्तन संस्कार का महत्वपूर्ण कार्य सर्वप्रथम स्वामी रामानंदचार्य ने ही प्रारंभ किया। इतिहास साक्षी है कि अयोध्या के राजा हरिसिंह के नेतृत्व में चौंतीस हजार राजपूतों को एक ही मंच से स्वामी जी ने स्वधर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया था। ऐसे महान संत, परम विचारक समन्वयी महात्मा का प्रादुर्भाव तीर्थराज प्रयाग में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार से हुआ था।

स्वामी रामानंद के व्यक्तित्व की इस व्यापकता का रहस्य, उनकी उदार एवं सारग्राही प्रवृत्ति और समन्वयकारी विचारधारा में निहित है। निश्चय ही उनके विराट व्यक्तित्व एवं व्यापक महत्व के अनुरूप कतिपय आर्यग्रंथ एवं संत–साहित्य में उल्लेखित उनके रामावतार होने का वर्णन अक्षरशः प्रमाणित होता है।

रामानंदः स्वयं रामः प्रादुर्भुतो महीतले।

रामानंद का रचना संसार – उनके द्वारा विरचित ग्रंथो की सूची निम्नलिखित है।

1. वैष्णवमताष्ण भास्कर (संस्कृत)
2. श्रीरामार्चनपध्दति (संस्कृत)
3. ब्रम्हसूत्र आनन्दभाष्य (संस्कृत)
4. उपनिषद् आनन्दभाष्य (संस्कृत)

(5) श्रीमद् भागवत गीता आनन्द भाष्य (संस्कृत) :–

तिरूवल्लुवर – यह एक प्रख्यात तमिल कवि हैं जिन्होनें तमिल साहित्य में नीति पर आधारित कृति थिरूकुरल का सृजन किया। उन्हें थेवापुलवर वल्लुवर और पोयामोड़ी पुलवर जैसे अन्य नामों से भी जाना जाता है।

तिरूवल्लुवर के अस्तित्व का समय पुरातात्विक साक्ष्य के बजाय ज्यादातर भाषाई सबूतों पर आधरित है क्योंकि किसी पुरातात्विक साक्ष्य को अभी–अभी तक निर्धारित नही किया गया है। उनके काल का अनुमान 200 ई.पू. और 30 ई.पू. के बीच लगाया गया है। (3)

तिरूवल्लुवर का जन्म मायलपुर में हुआ था वो बुनकर व्यवसायी थे। उनकी पत्नी वासुकी एक पवित्र सुशील और समर्पित महिला थी, एक ऐसी आदर्श पत्नी जिसने कभी अपने पति के आदेशों की अवहेलना नहीं की और उनका शतशः पालन किया। तिरूक्कुरल

ने लोगों को बताया कि एक व्यक्ति गृहस्थ या गृहस्थस्वामी का जीवन जीने के साथ–साथ एक दिव्य जीवन या शुद्ध और पवित्र जीवन जी सकता है। उन्होंने लोगों को बताया कि शुद्ध और पवित्रता से परिपूर्ण दिव्य जीवन जीने के लिये परिवार को छोड़कर सन्यासी बनने की आवश्यकता नहीं है। उनकी ज्ञानपूर्ण बातें और शिक्षा अब तक एक पुस्तक के रूप में मौजूद है जिसे 'तिरूक्कुरल' के रूप में जाना जाता है। (1) तमिल कैलेन्डर की अवधि उसी समय से है और उसे तिरूवल्लुवर आन्दु (वर्ष) के रूप में संदर्भित किया जाता है। (2)

पारंपरिक वृत्तान्त– तिरूवल्लुवर (तिरूवल्लुवर) नाम एक तमिल शब्द जिसका अर्थ माननीय होता है, जो श्री के समान है। (4) और वल्लवुर (तमिल परंपरा के अनुसार वल्लुवन के लिए एक विनम्र नाम) से बना है। उनके वास्तविक नाम के बजाय वल्लुवन नाम एक सामान्य नाम है। उनकी जाति, व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करता है। बहरहाल, थीरूकुरल (वल्लुवन) के लेखक का नाम उनके समुदाय पर रखा गया है। या उसके विपरीत, यह सवाल आज तक अनुत्तरित बना हुआ है। शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध सम्प्रदायों का तर्क है कि तिरूवल्लुवर उनसे संबंधित है। तिरूवल्लुवर की जानकारी जैन ग्रंथों में भी मिलती है। जिसमें उन्हें एक श्वेतांबर जैन श्रमण कहा गया है। कमात्वों श्रीनिवासन ''कुरल कुराम समयम'' तिरूक्कुरल प्रकाशन, मदुरै कामराज विश्वविद्यालय 1979। इस कृति का आरम्भ सर्व शक्तिमान जैन तीर्थकर श्री ऋषभदेव भगवान को सादर प्रणाम करते हुए एक अध्याय से होता है। इसलिए कहा जाता है कि तिरूवल्लुवर आस्तिक थे। लेकिन उनके परमेश्वर सर्वशक्तिमान हैं, सारे संसार के निर्माता हैं और जो अपने भक्तों की रक्षा करते है। दरअसल कुरल किसी भी विशिष्ट या सांप्रदायिक, धार्मिक आस्था की वकालात नहीं करता है। एक कथा में उन्हें पंडया शासकों की प्राचीन राजधानी मदुरै से जोड़ा जाता है, जिन्होंने तमिल साहित्य को सख्ती से बढ़वा किया था। एक अन्य के अनुसार उनका जन्म और पालन–पोषण मायलापुर में हुआ था जो वर्तमान में मद्रास शहर का एक हिस्सा है और उन्होनें अपनी कृति तिरूवकुरल को जमा करने के लिए मदुरै की यात्रा की ताकि वे राजा (पंडियन) और उनके कवियों के समूह से अनुमोदन प्राप्त कर सकें उनकी पत्नी का नाम वासुकी है। (5)

वहां और भी अधिक परंपरागत कहानियाँ है जिसमें कहा गया है कि मदुरै का तमिल संगम (नियमित तौर पर आयोजित किया जाने वाला प्रख्यात विद्वानों और

शोधकर्ताओं का सम्मेलन/सभा) वह प्राधिकरण था जिसके माध्यम से तिरूक्कुलर को विश्व के सामने पेश किया गया। हो सकता है कि तिरूक्ल्लुकर ने अपना अधिकांश जीवन मदुरै में बिताया हो क्योंकि वह पंडया शासकों के अधिन था, जहां कई तमिल कवि आगे बढ़े, अभी हाल ही में कन्याकुमारी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक केन्द्र (KHCRC) द्वारा दावा किया गया कि वल्लुवर एक राजा थे जिन्होने तमिलनाडु के कन्याकुमारी जिले के एक पहाड़ी इलाके वल्लुवनाडु पर शासन किया। (6)

जार्ज उग्लों पोप या जी.यू. पोप जैसे अधिकांश शोधकर्ताओं और तमिल के महान शोधकर्ताओं ने जिन्होनें तमिलनाडु में कई वर्ष बिताए और अंग्रेजी में कई पाठों का अनुवाद किया है जिसमें तिरूक्कुरल शामिल है उन्होंने तिरूवल्लुवर को परैयार के रूप में पहचाना है। कार्ल ग्रौल (1814–1864) ने पहले ही 1855 तक तिरूक्कुरल को बौद्ध पंथ की एक कृति के रूप में चित्रित किया था। (गौल ने जैनियों को भी बौद्धों के अन्तर्गत सम्मिलित किया) इस संबंध में यह विशेष दिलचस्पी का विषय था कि तिरूक्कुरल के लेखक तिरूवल्लुवर को तमिल परंपरा में परैयार के रूप में पहचाना गया (जैसा कि, संयोग से, अन्य प्रसिद्ध प्राचीन तमिल लेखकों के मामले में था, जैसे औबेयार, (सी.एफ. पोप 1886 : i - ii, x - xi) हो सकता है ग्रौल ने जैनियों को भी बौद्धों के अन्तर्गत सम्मिलित किया 1865 : xi नोट)

जैन–जैन विद्वान और कई हिन्दू इतिहासकार मानते है कि तिरूवल्लुवर एक जैन मुनि थे। वे जैन धर्म की मूल शाखा श्वेतांबर जैन श्रमण संस्कृति से संबंधित थे, क्यूकि तिरूवक्कुरल का पहला अध्याय जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव को समर्पित है। इसके अलावा तिरूक्कुरल की शिक्षाऐं जैन धर्म की शिक्षाओं से मेल खाती हैं। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक कुरल काव्य में भी तिरूवल्लुवर के जैन होने की बात स्पष्ट लिखी है।

तिरूक्कुरल – तिरूक्कुरल तमिल की एक सबसे श्रद्धेय प्राचीन कृति है। (7) कुरल की ''दुनिया का आम विश्वास'' (उद्धरण चाहिए) माना जाता है क्योंकि यह मानव नैतिकता और जीवन में बेहतरी का रास्ता दिखलाता है। संभवतः :– बाइबल, कुरान और गीता के बाद कुरल का सबसे अधिक भाषओं में अनुवाद किया गया है। (उद्धरण चाहिए 1730 में तिरूक्कुरल का लैटिन अनुवाद कोरटांजों बेरची द्वारा किया गया जिससे युरोपीय

बुद्धिजीवियों को उल्लेखनीय रूप से तमिल साहित्य के सौंदर्य और समृद्धि को जानने में मदद मिली।

तिरूक्कुरल का निर्माण तिरू और कुरल दो शब्दों को जोड़कर हुआ है। अर्थात् तिरू + कुरल = तिरूक्कुरल.

तिरूक्कुरल तीन वर्गों में विभाजित है। पहले खंड में अरम, विवेक और सम्मान के साथ अच्छे नैतिक व्यवहार (सहि आचरण) को बताया गया है। खण्ड दो में पोरूल सांसारिक मामले की सही ढंग से चर्चा की गई है। और तिसरे अनुभाग इनबम, पुरूष और महिला के बीच प्रेम संबंधो पर विचार किया गया है। प्रथम खण्ड में 38 अध्याय है, दूसरे में 70 अध्याय और तिसरे में 25 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में कुल 10 दोहे या कुरल है और कुल मिलाकर कृति में 1330 दोहे हैं।

मूर्ति – भातीय उपमहाद्वीप (कन्याकुमारी) के दक्षिण सिरे पर संत तिरूवल्लुवर की 133 फूल लम्बी प्रतिमा बनाई गई है जहाँ अरब सागर, बंगाल की खाड़ी और हिंद महासागर मिलते है। 133 फुट तिरूवकुरल के 133 अध्यायों या अथियाकरम का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनकी तीन अंगुलिया अरम, पोरूल, और इनबम नामक तीन विषय अर्थात् नैतिकता, धन और प्रेम के अर्थ को इंगित करती हैं।

- तिरूवल्लुवर को दक्षिण भारत का कबीर भी कहा जाता है। ये तमिल के महान संत थे।
- इन्हें शैव, वैष्णव, बौद्ध और जैन सहित हर मतवाले लोग मानते थे, इन्होने संन्यास को महत्व देने के बजाय इन्सान गृहस्थ रहकर भी भगवान में आस्था के साथ पवित्र जीवन जी सकता है।
- संत तिरूवल्लुवर ने लोगों को जीने की राह दिखाते हुए छोटी–छोटी कविताऐं लिखी थी। जिनको इकट्ठा कर तिरूक्कुलर ग्रंथ लिखा गया। इनके इस ग्रंथ में कबीर की तरह सदाचार, प्रेम आनंद और एकता के बारे में बताया है इस तरह उनके और कबीर के जीवन मूल्य एक तरह के थे।
- तिरूवल्लुवर की, 133 फीट ऊँची प्रतिमा कन्याकुमारी के विवेकानन्द स्मारक के पास छोटे चट्टानी द्वीप पर बनाई गयी, यह तिरूक्कुलर ग्रंथ के 133 अध्यायों को ध्यान में रख्ते हुए बनाई है। इस स्टेच्यु की वास्तविक ऊँचाई तो 95 फीट है, लेकिन ये

38 फीट ऊँचे मंच पर है। 1979 में इस स्मारक के लिये उस वक्त के प्रधानमंत्री मोराईजी देसाई ने आधार शिला रखी थी, लेकिन इसका काम शुरू न हो सका। सन् 2000 में ये स्मारक जनता के लिए खोला गया।

- 'तिरूवल्लुवर दिवस' के अवसर पर उन्हें याद किया जाता है। वर्तमान समय में इसे आमतौर पर तमिलनाडु में 15 या 16 जनवरी को मनाया जाता है और यह पोंगल समारोह का एक हिस्सा है।
- तिरूक्कुरल में 10 कविताऐं व 133 खंड (अध्याय) शामिल है, जिनमें से प्रत्येक को तीन पुस्तकों में विभाजित किया गया है।
    - अरम (ARAM) सद्‌गुण Virtue धर्म
    - पोरूल (Porul) (संरकार और समाज) अर्थ
    - कामम (Kamam) प्रेम
- तिरूक्कुरल की तुलना विश्व के प्रमुख धर्मो की महान पुस्तकों से की गई है।
- यह सार्वजनिक और सामाजिक गतिविधियों जैसे – सरकार, युद्ध, दान, व्यापार, पूजा, कृषि आदि धर्म निरपेक्ष मामलों से संबंधित है।
- संगम साहित्य – 'संगम' शब्द संस्कृत शब्द संघ का तमिल रूप पांड्य राजाओं के संरक्षण में तीन अलग–अलग कालों में अलग–अलग जगहों पर फली–फली ।
- इसी तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से तीसरी शताब्दी ई. के दौरान संकलित किया गया था और प्रेम एवं युद्ध के विषयों के आस–पास काव्य प्रारूप में रचा गया था।
- तमिल किवंदतियों के अनुसार प्राचीन दक्षिण भारत में तीन संगमौं (तमिल कवियों का समागम) का आयोजन किया गया था, जिसे मुच्यंगम (Muchangam) कहा जाता था।

कवि कंब :– एक हजार वर्ष पूर्व तमिलनाडू में जन्में प्रसिद्ध राम भक्त उन्होनें तमिल में 'कंब रामायण' लिखकर दक्षिण भारत में राम जी की मर्यादा, सत्यवचन, मानवता की सेवा इन्ही गुणों का वर्णन करके भक्तजनों को श्रीराम की कथासागर में डूबोये रखा, मानवता की सेवा की। कंबन रामायण तमिल साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति एवं एक बृहत ग्रंथ है। कंब 'कवि चक्रवर्ती' की उपाधी से प्रसिद्ध है। इनकी रचनओं के रचनाकाल के विषय में

मतभेद नही है। राघव आयंगर की बहुमूल्य खोंजों के आधार पर यह मान लिया गया कि रामवतारम् 1178 ई. में समाप्त हुआ और प्रकाशन 1185 ई. में हुआ। श्री वी.वी.एस.अय्यर के अनुसार ''कब रामायण विश्वसाहित्य में उत्तम कृति है। इलियड़, पैराडाइज़ लॉस्ट और महाभारत से ही नहीं, वरन् आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण की तुलना में भी यह अधिक सुन्दर है।''

कंबन चोल राजा कुल्लोतुंग तृतीय (1178–1202 ई.) के दरबार में थे। उन्होने रामायण की रचना अपने संरक्षक सदयप्पा वल्लाण के प्रोत्साहन से की उनका जन्म तिरेवेन्नैनलुर जिला तंजौर (मद्रास) में हुआ। उनका संरक्षण कृपालु सदयप्पा ने किया जिनका उल्लेख कंबन की रचनाओं में मिलता है। कंबन विरूतम काव्य में दक्ष थे। उनकी समृधि उस काल में हुई जब भक्तिपन्थ नयनमरो तथा आलवरों द्वारा लोकप्रिय हो रहा था। उत्कट वैष्णव होते हुए भी कंबन का दृष्टिकोण यथेष्ट उदार था। उन्होने भगवान शिव की प्रशंसा अपनी रामायण में की है। उनके युग में कई ग्रंथों की रचना हुई किन्तु उनका रामवतारम् उनमें सर्वोपरि है। उपलब्ध ग्रंथ में 10,050 पद्य हैं और बलाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक छह काण्डों का विस्तार इसमें मिलता है इससे संबंधित एक उत्तरकांड भी प्राप्त है, जिसके रचयिता कंबन के समसामयिक एक अन्य महाकवि ''ओट्टककूत्तन'' माने जाने है। पौराणिकों के कारण कंबन रामायण में अनेक प्रक्षेप भी जुड़ गए है किन्तु इन्हें बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है क्यों कि कंबन की सशक्त भाषा और विलक्षण प्रतिपादन शैली का अनुकरण शुक्य नहीं है।

कम्ब रामायण के छः काण्ड निम्नलिखित हैं :–

(1) बालकाण्डम् (2) अयोध्याकाण्डम् (3) अरण्यकाण्ड्म (4) किष्किन्धा काण्डम् (5) सुन्दर काण्डम् (6) युद्ध काण्डम् ।

कंब ने उत्तरकाण्ड के विषय में कुछ नही लिखा और उनकी रामायण राम के राज्याभिषेक पर समाप्त हो जाती है। इसमें 123 पादम् (अध्याय) है। कंब रामायण में वाल्मिकी और तुलसीरामायण से कई प्रसंग अलग हैं और इनकी भाषा शैली जनजन के दिलो दिमाग में अपना अलग ही प्रभाव डालती है। श्रीराम के लंका से अयोध्या लौटने का वर्णन, स्वयंवर पूर्व श्रीराम सीता का एकदुसरे से मिलना, और कई अन्य प्रसंग/भ्रातृप्रेम से ओतप्रोत यह रामायण सर्वोकृष्ट है।

रावणवध के बाद भगवान श्रीराम पुष्पक विमान से वापस आ रहे है। विजयोल्लास से सभी भरे थे, सभी शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या लौटना चाहते थे। कंब रामायण के अनुसार अशोक वाटिका में सीताजी का विशेष ध्यान रखने वाली त्रिजटा को सीताजी आशीर्वाद देती है कि तुम संकट रहित हो। अब तुम लंका में देवी के समान रहो। पुष्पक विमान अंडाकार था और अनेक लोगों के बैठने पर भी खाली रहता था। श्रीराम ने विभीषण को सलाह दी कि तुम लंका पर राज्य करते हुए अपने देशवासियों की प्रशंसा के पात्र बनो। श्रीराम ने सुग्रीव, जाम्बवन, नील तथा हनुमान आदि सभी वानर समूहों को अपने–अपने स्थान पर लौट जाने को कहा तो वे सभी होने लगे और दुःखी हो गए। सुग्रीव आदि वानरों ने कहा कि हम आपका अयोध्या में राज्याभिषेक का उत्सव देखना चाहते है। इस उत्सव को देखकर ही हमारी थकान दूर होगी –

पार मामदि लयोत्तिर्यि नयिदनिन् पैम्बान्
आर मामुदिक कोलमुअ जब्बियु मक्कहुम्
शोर्वि लादियाड़ गाणगुरू मकवैथुन दौडन्र्दु
पेर बेयरू कनने रूककनबु पिणिप्पार

(कम्ब रामायण तमिल युद्ध काण्ड उत्तरार्ध 4045) श्रीराम ने उन सभी को विमाण में बैठा लिया। श्रीराम सीताजी सहित पुष्पक विमान में सुशोभित दिखाई दे रहे है। सीताजी पुछती है कि हनुमान आपको कहां मिले। श्रीराम कहते है कि यही किष्कंधा में। यह सुनकर सीताजी कहती है कि विमान में पुरूषों की संख्या अधिक है। अयोध्या पहुंचूंगी तो मेरे स्त्रीत्व की कमी मानी जाएगी। यदि पुष्पगुच्छों से सुसज्जित केशवाली तन्विया साथ तो उचित रहेगा।

सुग्रीव ने हनुमान जी से कहकर असीम वानरियों को बुला भेजा। वे सभी स्त्रीत्व के श्रृंगार में सीताजी के सम्मुख उपस्थित हो गयी और नमस्कार करके उनके चारो और खड़ी हो गई। पुष्पक विमान चलता गया। भारद्वाज आश्रम आया। विमान आता देख गुरू भारद्वाज उनके स्वागत के लिए संतों के साथ आगे आए पुष्पक विमान वहाँ रूका। श्रीराम ने ऋषि भारद्वाज के चरणों में नमस्कार किया। मुनिवर ने उन्हे ंउठाया और उनकी जटा की धूल हटाई। विमान स्थित सभी यात्रियों ने गुरूवंदन किया। गुरूजी उन्हें आश्रम में लाए और प्राचीन स्मृतियों का स्मरण किया। उन्होने सूचित किया कि भरत फलाहार लेते हैं और घांस की शय्या पर सोते है। भारद्वाज मुनि ने वानर दलों को आशीर्वाद दिया कि उन्हें

हमेशा जल, मधु, कन्द मूल, फल मिलते रहें। उन्होनें श्रीराम से कहा कि वे यहाँ अपनी संपूर्ण सेना के साथ भोजन ग्रहण करें।

श्रीराम ने हनुमान जी को भाई भरत के पास जाने को कहा कि तुम जाकर हमारे आगमन की सूचना दो। भरत के बारे में जानकारी लेकर यहाँ आ जाना। मेरे समय पर न पहुंचने पर वह दुःखी है। श्रीराम ने हनुमानजी को एक अंगूठी दी कि तुम भरत को दे देना।

इन्नु नाम्बदि वरदुमुन मारूदि यीण् डचू

चन्नु तीदिन मैं शप्पियत् तीयवित् तकयोन

निन्न नीर्मैयु निनैवुनी तेर्नदम्मि नेर्दल्

नन्न नाववन मोदिरड् गैकाडु नडन्दान्

(कम्बरामायण – तमिल युद्धकाण्ड उत्तरार्द्ध 4088)

श्रीराम नियत समयावधि में अयोध्या नहीं पहुंचे तो भरत जी ने सोचा किसी घटनादश वे नही आए है। व्यग्रता बढ़ने लगी। उन्होने शत्रुध्न को बुलाने को कहा। शत्रुध्न के आने पर उसे गले लगाया। श्रीराम नही आए हैं, इसलिए मैं जलती आग में कूदकर प्राण त्याग दूंगा। तुम राजा बन जाओं। छोटे भाई ने कहा कि क्या मैं निर्लज्ज होकर राजा बनूंगा। कौशल्या समाचार सुनकर विलाप करती हुई आई। अन्य अयोध्यावासी भी वहाँ आए।

कौशल्या ने कहा ऐसा मत सोचो। आज नही तो कल वह अवश्य आऐंगे। भरत अग्नि के निकट पहुंच गये। इतने में भीड़ में हनुमान जी ने जोर से कहा आर्य पधार चुके हैं हनुमानजी ने आग बुझा दी और बोले की अभी दिन बीत जाने में चालीस घड़ी शेष है। सूर्य उदयगिरि पर उदित न हो तब तक मेरी बात पर विश्वास कीजिए। यदि यह समय बीत गया तो आप क्या सारा लोक नष्ट हो जाएगा। भारद्वाज आश्रम के मधुर भोज के कारण श्रीराम को वहां रूकना पड़ा। श्रीराम ने आपके लिए यह अभिज्ञान दिया है। अंगूठी को भरत जी ने माथे पर लगाया। उनका कृशकाय शरीर एकदम फूल गया। भरत आनंदित हो गए। भरत हनुमान जी से पुछते हैं कि ब्राह्मणवेशधारी आप कौन हैं?

हनुमानजी उन्हें अपना परिचय देते है और ब्राह्मण वेश छोड़ भव्यरूप धारण कर लेते है। सभी उन्हें विस्मय से देखते है। भरत उनसे कहते हैं कि आप पर्वताकार रूप बदलकर छोटा रूप धारण कर लीजिए। भाई शत्रुध्न से कहा कि अयोध्या की सजावट करो और

श्रीराम के आगमन की मुनादी पिटवा दो पुष्पक विमान का आगमन हुआ सभी अतिहर्ष से मिले और श्रीराम, भरत, माताओं, गुरूओं सभी अयोध्यावासियों का मिलन हुआ।

श्रीराम चरितमानस में हमें श्रीराम का हनुमानजी को भरत की अंगुठी देने का वर्णन नहीं मिलता है। भरत जी का अग्नि में कुदने जाने का वर्णन भी अन्यत्र नही है। पुष्पक विमान में सीताजी अपने स्त्रीत्व के लिए वानरियों को बैठाने को कहती है, यह वर्णन भी श्री रामचरितमानस में नही है। अंगूठी के प्रभाव से भरत का दौर्बल्य समाप्त होना भी एक आश्चर्य जनक घटना है।

श्रीराम चरितमानस में समस्त मताऐं अयोध्यापुरी के द्वार पर श्रीराम के स्वागत में तत्तपर रहती है, किन्तु कम्ब रामायण में कौशल्या नंदीग्राम में भरत के अग्नि प्रवेश का समाचार सुनकर विलाप करते हुए अयोध्यावासियों के साथ आती हैं। सुधीजन की कम्बरामायण के युद्धकाण्ड का उत्तरार्ध एक अलग कथानक के साथ पढ़ने को प्राप्त होता है।

वाल्मीकि ने राम के रूप में ''पुरूष पुरातन'' का नहीं, अपितु ''महामानव का चित्र उपस्थित किया था, जबकि कंबन ने अपने युगादर्श के अनुरूप राम को परमात्मा के अवतार के साथ आदर्श महामानव के रूप में भी प्रतिष्ठित किया। वैष्णव भक्ति तत्कालीन मान्यताओं और जनता की भक्तिपूत भावनाओं से जुडे रहकर इस महाकवि ने राम के चरित्र को महत्तापूरित एवं परमपूर्णत्व समन्वित ऐसे आयामों में प्रस्तुत किया जिनकी इयत्ता और ईदृक्ता का सहज ग्राहय होते हुए भी अकल्पनीय रूप से मनोहर किंवा मनोरम थी। यह निश्चित ही कंबन जैसा अनन्य सुलभ प्रतिभावान महाकवि ही कर सकता था। इस प्रकार कंबन के रामयण कई प्रसंग अलग होते हुए भी सर्व सौदर्य परिपूर्ण हैं कंकन का काव्य उपमा तथा अर्थ की गूढ़ता में अतुलनीय है। महान तमिल विद्वान प्रो. सेल्वकेस्रवरयर ने ठीक ही कहा है कि तमिल भाषा के केवल दो लौह स्तम्भ हैं। वे हैं कंबन और तिरूवल्लुवर।

वैष्णवसंत शंकर देव :– 15 वीं शताब्दी में कामरूप (असम) में जन्में वैष्णव संत जिन्होने समाज को धार्मिक अधःपतन से उबरने के लिये कृष्णभक्ति से संबंधित अनेक ग्रंथ रचे और भागवत धर्म का प्रचार किया। सम्पूर्ण असम में इन्होनें सर्वाधिकार की व्यवस्था की तथा नामघर स्थापित किए।

शंकर देव असमिया (1459–1568) 15वीं 16वीं सदी के असमिया बहुश्रुत थे, एक संत–विद्वान, नाटककार, नर्तक, अभिनेता, संगीतकार, कालाकार, सामाजिक, धार्मिक सुधारक और असम में आंदोलन के सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। उन्हें अतीत के सांस्कृतिक अवशेषों के निर्माण और संगीत (बोरगीत), नाट्य प्रदर्शन (अंकियानाट, भावना), नृत्य (सत्रियां), साहित्यक भाषा (ब्रजावली के नए रूपों को तैयार करने का श्रेय दिया जाता है। इसके अलावा उन्होने संस्कृत, असमिया और ब्रजावली में लिखे गए पारम्परिक शास्त्रों (शंकर देव की भागवत), कविता और धर्मशास्त्रीय कार्यो का एक साहित्यिक संग्रह छोड़ा है। उनके द्वारा शुरू किया गया भागवत धार्मिक आंदोलन एकासरण धर्म और जिसे नव वैष्णव आंदोलन भी कहा जाता है, ने दो मध्य युगीन राज्यों–कोच और अहोम साम्राज्य को प्रभावित किया और उनके द्वारा शुरू किये गए भक्तों की सभा समय के साथ सत्त्र नामक मठ केन्द्रों में विकसित हुई, जो असम में और कुछ हद तक उत्तर बंगाल में महत्वपूर्ण सामाजिक धार्मिक संस्थान बने हुए है।

उनके साहित्यक और कलात्मक योगदान आज असम में जीवंत परंपराऐं है। उन्होने जिस धर्म का प्रचार किया उसका पालन आज भी बड़ी आबादी करती है। और उनके और उनके अनुयायियों द्वारा स्थापित सत्र (गठ) आज भी फल–फूल रहे हैं और उनकी विरासत को कायम रखे हुए हैं।

शंकर देव जी ने ब्रजावली में अपना पहला बोर्रागीत – ''मन मेरी रामचरणहि लागू– की रचना की। कथा गुरूचरित के अनुसार, पहल बोर्गगीत ''राम मेरी ह्रदय पंकज बसे''। था और उन्होनें इसे 1481 में राउमारी नामक स्थान पर तीर्थ यात्रा के आरंभ में रचा था। उन्होने 32 वर्ष की आयु में मित्र और सहयोगी रामाराम और उनके शिक्षक महेन्द्र कंडाली सहित सत्रह (17) अन्य लोगों के साथ यात्रा की वह पुरी, मथुरा, द्वारका, वृंदावन, गया, रामेश्वरम, अयोध्या, सीताकुंड और भारत में वैष्णव धर्म के लगभग सभी अन्य प्रमुख केन्द्रों की यात्रा की। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने पुरी के जगन्नाथ क्षेत्र में कई साल बिताए। 1488 में बद्रीकाश्रम में उन्होने ब्रजावली में अपना पहला बोर्गगित की रचना की, गुरूचरित के अनुसार उनका बोर्गगीत 'राम मेरी ह्रदय पंकजे बसे'' यह पहल गीत उन्होंने 1481 में राऊमारी नामक स्थान पर तीर्थयात्रा के आरंभ में रचा था। वह 12 वर्षो के बाद तीर्थयात्रा से अलीपुरकरी घर लौट आए (उनका परिवार उनकी अनुपस्थिति में बोरदोवा से वापस

चला गया था। अपनी तीर्थ यात्रा के दौरान वह एक अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन का हिस्सा बन गए और इसे खिलने में मदद की)।

उन्होने कीर्तन घोष की रचना भी शुरू की। उन्होनें भक्ति प्रदीप और रूकमणी हरण लिखा। इसके तुरन्त बाद उन्हें मिथिल के जगदीश मिश्रा से भागवत पुराण की एक प्रति मिली, जिसमें श्रीधर स्वामी की अद्वैतवादी टिप्पणी ''भावार्थ–दीपिका'' थी। मिश्र ने शंकरदेव की उपस्थिति में संपूर्ण भागवत का पाठ किया और उसकी व्याख्या की और यह घटना एकासरण के विकास में महत्वपूर्ण मानी जाती है। शंकरदेव के प्रारंभिक जीवनी लेखक दत्यारी लिखते हैं : ''शंकर देव ने जगदीश मिश्रा की व्याख्या को ध्यानपूर्वक सूना और महसूस किया कि भागवत एक अद्वितीय शास्त्र है, एक ऐसा शास्त्र जो कृष्ण को एकमात्र ईश्वर, नाम को वास्तविक धर्म और ऐकान्तिक – शरण और सत्संग को विश्वास के अपरिहार्य तत्व के रूप में निर्धारित करता है। धुवाहट में व्यापक ध्यान और लोकप्रियता आकर्षित करने में सफल रहे। और उन्होनें अन्य लोगों को अपने धर्म में दीक्षित किया।

शंकरदेव राजधानी कोच बिहार और अपने निवास स्थान पर बाउसी के बीच आते–जाते थे। चिलाराय अवसर उनका आतित्य करते थे और उनके अनुरोध पर उन्होने वृंदावन में कृष्ण के बचपन के दिनों की छदियों को कपड़े पर बुनने की सहमति दी। उन्होने वरपेटा के पास तोतीकुची के बुनकरों को चालीस गज लंबा टेपेस्ट्री पैनल बुनने के लिए लगाया। शंकर देव ने बुने जाने वाले डिजाइन प्रदान किए, उपयोग किए जाने वाले धागे के विभिन्न रंगों को चुना और बुनाई की देख–रेख की। इसे पूरा होने में लगभग एक वर्ष का समय लगा और इसका नाम इसके विषय से लिया गया, जिसे वृंदावनी वस्त्र के रूप में जाना जाने लगा। इसे चिलाराय और नारायण को भेंट किया गया। इस कपड़े का एक भाग अब लंदन के विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय में संरक्षित है।

कोच राजा की सेवा करने वाला एक मुस्लिम दर्जी चंदसाई कोच बिहार में शंकर देव का शिष्य बन गया। जब कुछ समय बाद शंकरदेव पट बौसी लौटे, तो चंदसाई भी संत के साथ आ गए। शंकरदेव 20 से अधिक वर्षो तक राजधानी में रहे और पहली बार उन्हें भरपूर शाही संरक्षण मिला।

1568 में मानवता को प्रबुद्ध करने के लिए समर्पित एक सबसे घटना पूर्ण जीवन जीने के बाद, महापुरूष शंकरदेव ने भोलाडोंगा में अपने अंतिम प्रवास के चार महिने बाद – 120 वर्ष की आयु में अंतिम सांस ली।

साभार–विकिपीडिया से लिया है और भारत वर्ष से भी लिया है

<u>सायणाचार्य</u> :– सायण या आचार्य सायण (चौदहवी सदी, मृत्यु 1387 इस्वीं) वेदों के सर्वमान्य भाष्यकर्ता थे। (1) सायण ने अनेक ग्रंथो का प्रणयन किया है, परंतु इनकी कीर्ति का मेरूदंड वेदभाष्य ही है। इनसे पहले किसी का लिखा, चारों वेदों का भाष्य नहीं मिलता। ये 24 वर्षो तक विजयनगर साम्राज्य के सेनापति एवं अमात्य रहे (1364–1387 इस्वी) योरोप के प्रारंभिक वैदिक विद्वान तथा आधुनिक भारत के श्रीराम शर्मा आचार्य इनके भाष्य के प्रशंसक रहे है, जबकि श्री अरोबिंदो और स्वामी दयानंद सरस्वती ने इनको आंशिक मान्यता ही दी है। लेकिन सभी वेदों के एक व्यक्ति द्वारा लिखे गए एक मात्र भाष्य होने के कारण यास्क के वैदिक शब्दों के कोष लिखने के बाद सायण की टीका ही सर्वमान्य है। ये याज्ञिक पद्धति से भाष्य करते थे, अतः भाष्य कर्मकांड परक है। इनके भाष्यों में स्कंदस्वामी और उग्दीथ की शैली झलकती है।

जीवन :– सायण ने अपनी रचनाओं में अपने चरित्र के विषय में आवश्यक तथ्यों का निर्देश किया है। ये दक्षिण भारत के निवासी थे। इनके पिता का नाम था मायण और माता का श्रीमती इनका गौत्र भारद्वाज था। कृष्ण युजुर्वेद की तैतरीय शाखा के अनुयायी श्रौत्रिय थे। इनके अग्रज विजय नगर साम्राज्य के संस्थापक महाराज हरिहर के मुख्यमंत्री तथा आध्यात्मिक गुरू थे। उनका नाम था माधवाचार्य जो अपने जीवन के अंतिम समय में श्रृंगेरी पीठ के विद्यारण्यस्वामी (माधव–विद्यारण्य) के नाम से जगदगुरू शंकराचार्य हुए थे। सायन के अनुज का नाम था भोगनाथ जो संगमनरेश के नर्मरूचिव तथा कमनीय कवि थे। सायण ने अपने अलंकार सुधानिधि नामक ग्रंथ में अपने तीन पुत्रों का नामोल्लेख किया है जिन में कंपण संगीत शास्त्र में प्रवीण थे, मायण गद्य–पद्य रचना में विलक्षण कवि थे तथा शिंगण वेद की क्रम जटा आदि पाठों के मर्मज्ञ वैदिक थे।

सांयण के आश्रयदाता :– वेदभाष्यों तथा इतर ग्रंथों के अनुशीलन से सायण के आश्रयदाताओं के नाम का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता हैं शायन शासन कार्य में दक्ष थे तथा संग्राम के मैदान में सेना नायक के कार्य में भी निपुण थे। विजय नगर के इन चारों राजान्यों के साथ सायण का संबंध था – कपण, संगम, (द्वितीय), बुक्क (प्रथम) तथा हरिहर (द्वितीय) इनमें से कंपण संगम प्रथम के द्वितीय पुत्र थे। और हरिहर प्रथम के अनुज थे जिन्होने विजय नगर साम्राज्य की स्थापना की थी। कंपण विजय नगर के पूर्वी प्रदेश पर राज्य करते थे। संगम द्वितीय कंपण के आत्मज थे तथा सायण के प्रधान शिष्य थे।

बाल्यकाल से ही वे सायण के शिक्षण तथा देखरेख में थे। सायण ने उनके अधीनस्थ प्रांत का बड़ी योग्यता से शासन किया। तदनंतर वे महाराज बुक्कराय (1350 ई. – 1379 ई.) के मंत्रिपद पर आसीन हुए और उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय (1379 ई.– 1399 ई.) के शासन काल में भी उसी अमात्य पद पर प्रतिष्ठित रहे। सायण की मृत्यु से 1444 में (1387 ई.) में मानी जाती है। इस प्रकार वे संवत 1421–1437 (1364 ई–1378 ई.) तक लगभग 18 वर्षो तक बुक्क महाराज के प्रधानमंत्री थे और वि.सं. 1438–1444 वि. (1379 ई. – 1387 ई.) तक लगभग आठ वर्षो तक हरिहर द्वितीय के प्रधान अमात्य थे। प्रतीत होता है कि लगभग पच्चीस वर्षो में सायगाचार्य ने वेदों के भाष्य प्रणीत किए (वि. सं. 1420 – वि.सं. 1444) इस प्रकार सायण का आविर्भाव 15 वीं शती विक्रम के प्रथमार्थ में संपन्न हुआ।

सायण के गुरू – सायण के तीन गुरूओं का परिचय उनके ग्रंथों में मिलता है –

(1) विद्यातीर्थ रूद्रप्रश्नभाष्य के रचयिता तथा परमात्मतीर्थ के शिष्य थे जिनका निर्देश सायण के ग्रंथों में महेश्वर के अवतार रूप में किया गया है।

(2) भारती तीर्थ श्रृंगेरी पीठ के शंकराचार्य थे।

(3) श्रीकंठ जिनके गुरू होने का उल्लेख सायण ने अपने कांची के शासन पत्र में तथा भोगनाथ ने अपने महागणपतिस्तव में स्पष्ट रूप से किया है।

माधवाचार्य :– सायण का जीवन अग्रज माधव के द्वारा इतना प्रभावित था तथा उनके साथ घुलमिल गया था कि पंडितों को भी इन दोनों के पृथक व्यक्तित्व में पर्याप्त संदेह है। इसका निराकरण प्रथमतः आवश्यक है। माधवाचार्य 14वीं शती में भारतीय विद्ववजनों में शिखामीण थे। प्रत्युत वेदों के उद्धारक तथा वैदिक धर्म के प्रचारक के रूप में उनकी ख्याति आज भी धुमिल नही हुई है। उन्हीं के आध्यात्मिक उपदेश तथा राजनीतिक प्रेरणा का सुपरिणाम है महाराज हरिहरराय के रूप से विजय नगर साम्राज्य की स्थापना की। माधवाचार्य का इस प्रकार इस साम्राज्य की स्थापना में पूर्ण सहयोग था। अतः वे राज्य कार्य के सुचारू संचालन के लिए प्रधानमंत्री के पद पर भी प्रतिष्ठित हुए। यह उन्ही की प्रेरणा शक्ति थी कि इन दोनों सहोदर भूपाले ने वैदिक संस्कृति के पुनरूत्थान को अपने साम्राज्य स्थापन का चरम लक्ष्य बनाया और इस शुभ कार्य में सर्वथा सफल हुए। फलतः हम माधवाचार्य को 14वीं शती में दक्षिण भारत में जायमान वैदिक पुनजाग्रति का अग्रदूत

मान सकते है। मीमांसा तथा धर्म शास्त्र के प्रचुर प्रसार के निमित्त माधव ने अनेक मौलिक ग्रंथों प्रणयन किया।

- 1. पराशरमाधव (पराशर स्मृति की व्याख्या
- 2. व्यवहार माधव
- 3. कालमाधव (तीनों ही धर्मशास्त्र से संबंद्ध)
- 4. जीवन्मुक्तिविवेक (वेदांत)
- 5. पंचदशी (वेदांत)
- 6. जैमिनीय न्यायमाला विस्तार (पूर्व मीमांसा)
- 7. शंकर दिग्विजय (आदि शंकराचार्य का लोक प्रख्यात जीवन चरित)

अंतिम ग्रंथ की रचना के विषय में आलोचक संदेहशील भलें हों, परन्तु पूर्वनिबद्ध छहों ग्रंथ माधवाचार्य की असंदिग्ध रचनाऐं है। अनेक वर्षो तक मंत्री का अधिकार संपन्न कर और साम्राज्य को अभीस्ट सिद्धि की ओर अग्रसर कर माधवाचार्य ने सन्यास के लिया और श्रृंगेरी के माननीय पीठ पर आसीन हुए। इनका इस आश्रम का नाम था – विद्यारण्य। इस समय भी इन्होने पीठ को गतिशील बनाया तथा पंचदशी नामक ग्रंथ का प्रणयन किया जो अद्वैत वेदान्त के तत्वों के परिज्ञान के लिए नितांत लोकप्रिय ग्रंथ है। विजय नगर सम्राट की सभा में अमात्य माधव, माधवाचार्य से नितांत पृथक् व्यक्ति थे जिन्होनें सूत संहिता के ऊपर तात्पर्य दीपिका नामक व्याख्या लिखी है। सायण के वेदों के भाष्य लिखने का आदेश तथा प्रेरणा देने का श्रेय इन्ही माधवत्यार्य को है। इसी कारण सामण ने वेदभाष्य को ''माधवीय वेदार्थ प्रकाशन नाम दिया है''।

सायण के ग्रंथ :– सायणाचार्य ''वेदभाष्यकार'' की ख्याति से मंडित हैं। परन्तु वेदभाष्यों के अतिरिक्त भी उनके प्रणीत ग्रंथों की रचना है जिनमें अनेक अभी तक अप्रकाशित ही पड़े हुए हैं। इन ग्रंथों के नाम है। (2) (3)

(1) **सुभाषित सुधानिधि :–** नीति वाक्यों का सरल संकलन। कंपण भूपाल के समय की रचना होने से यह उनका आद्यग्रंथ प्रतीत होता है।

(2) **प्राचश्चित सुधा निधि :–** कर्मविपाक नाम से भी प्रख्यात यह ग्रंथ धर्म शास्त्र के प्रायश्चित विषय का विवरण प्रस्तुत करता है।

(3) **अलंकार सुधा निधि :–** अलंकार का प्रतिपादक यह ग्रंथ दस उन्मेषों में विभक्त था। इस ग्रंथ के प्रायः समग्र उदाहरण सायण के जीवन चरित् से संबंध रखते हैं। अभी तक केवल तीन उन्मेष प्राप्त है।

(4) **पुरूषार्थ सुधानिधि :–** धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूपी चारों पुरूषार्थो के प्रतिपादक पौराणिक श्लोकों का यह विशद संकलन बुक्क महाराज के निदेश से लिखा गया था।

(5) **आयुर्वेद सुधानिधि :–** आयुर्वेद विषयक इस ग्रंथ का निर्देश उपर निर्देश उपर निर्दिष्ट सं. 3 वाले ग्रंथ में किया गया है।

(6) **यज्ञ तंत्र सुधानिधि :–** यज्ञानुष्ठान विषय पर यह ग्रंथ हरिहर द्वितीय के शासनकाल की रचना है।

(7) **धातुवृत्ति :–** पाणिनीय धातुओं की यह विशद तथा विस्तृत वृत्ति अपनी विद्वता तथा प्रामाणिकता के कारण वैयाकरणों में विशेष रूप से प्रख्यात है यह माधवीया धातुवृत्ति के नाम से प्रसिद्ध होने पर भी सायन की है। निःसदिग्ध रचना है – इसका परिचय ग्रंथ के उपोद्धात से ही स्पष्टतः मिलता है।

(8) **वेदभाष्य :–** यह एक ग्रंथ न होकर अनेक ग्रंथों का द्योतक है। सायण ने वेद की चारों संहिताओं, कतिपय ब्राह्मणों तथा कतिपय आरण्यकों के ऊपर अपने युगांतरकारी भाष्य का प्रणयन किया। इन्होंने 5 पांच संहिताओं तथा 13 ब्राहम्मण आरण्यकों के ऊपर अपने भाष्यों का निर्माण किया जिनके नाम इस प्रकार हैं :–

(क) संहिता पंचक का भाष्य :– (1) तैतरीय संहिता (कृष्णयजुर्वेद की) (2) ऋक् (3) साम (4) कण्व (शुक्ल यजुर्वेदिय) तथा (5) अथर्व–इन वैदिक संहिताओं का भाष्य सायण. की महत्वपूर्ण रचना है।

(ख) **ब्राह्मण ग्रंथों का भाष्य :–** (1) तैतरिय ब्राह्मण तथा (2) तैतरीय आरण्यक (3) ऐतरेय ब्राह्मण तथा (4) ऐतरेय आरण्यक। सामवेदीय आठों ब्राह्मणों का भाष्य (5) तांडय (6) सामविधान (8) आर्षेय (9) देवता भाष्य (10) उपनिषद ब्राह्मण (11) संहितोपनिषद् (12) वंश ब्राह्मण (13) शतपथ ब्राह्मण (शुक्ल यजुर्वेदिय)

सायणाचार्य स्वयं कृष्पपयजुर्वेद के अंतर्गत तैत्तिरीय शाखा के अर्द्धता ब्राह्मण थे। फलतः प्रथमतः उन्होनें अपनी तैत्तिरीय संहिता और तत्संबद्ध ब्राह्मण अरण्यक का भाष्य लिखा, अनंतर उन्होने ऋग्वेद का भाष्य बनाया संहिता भाष्यों में अथर्ववेद का भाष्य अंतिम है, जिस

प्रकार ब्राह्मण भाष्यों में शतपथ भाष्य सब से अंतिम हैं इन दोणों भाष्यों का प्रणत प्रणयन सायण ने अपने जीवन के संध्याकाल में हरिहर द्वितीय के शासनकाल में संपन्न किया।

सायण ने अपने भाष्यों को ''माधवीय वेदार्थप्रकाश'' के नाम से अभिहित किया है। इन भाष्यों के नाम के साथ ''माधवीय'' विशेषण को देखकर अनेक आलोचक इन्हें सायण की निःसंदिग्ध रचना मानने से पराङ्मुख होते है, परन्तु इस संदेह के लिये कोई स्थान नहीं है। सायण के अग्रज माधव विजयनगर के राजाओं के प्रेरणादायक उपदेष्टा थे। उन्हीं के उपदेश महाराज हरिहर तथा बुक्कराय वैदिक धर्म के पुनरूद्धार के महनीय कार्य को अग्रसर करने में तत्पर हुए। इन महापतियों ने माधव को ही वेदों के भाष्य लिखने का भार सौंपा था, परंतु शासन के विषम कार्य में संलग्न होने के कारण उन्होने इस महनीय भार को अपने अनुज रायण के ही कंधों पर रखा। सायण ने ऋग्वेद भाष्य के उपोध्दात में इस बात का उल्लेख किया है। फलतः इन भाष्यों के निर्माण में माधव के ही प्रेरक तथा आदेशक होने के कारण उन्हीं के नाम से संबंध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह तो सायण की और से अपने अग्रज के प्रति भूयसी श्रद्धा की द्योतक घटना है। इसीलिए धातुवृत्ति, भी ''माधवीया'' कहलाने पर भी सायण की ही निःसंदिग्ध रचना है जिसका उल्लेख उन्होने ग्रंथ के उपोद्धत में स्पष्टतः किया हैं।

''तेन मायणपुत्रेण सायणेन मनीषिणा।

आख्याया माधवीयेयं धातुवृत्तिर्विरच्यते।।''

वेदभाष्यों के एक कर्तृत्व होने में कतिपय आलोचक संदेह करते है। संवत् 1443 वि. (सन् 1386 ई.) के मैसूर शिलालेख से पता चलता है कि वैदिक माशे प्रतिष्ठाापक महाराजाधिराज हरिहर ने विद्यारण्य श्रीपाद स्वामी के समक्ष चतुर्वेद भाष्य–प्रवर्तक नारायण वाजयपेयाजी नरहरि सोमयाजी तथा पंढरिदीक्षित नामक तीन ब्राह्मणों को अग्रहार देकर सम्मानित किया। इस शिलालेख का समय तथा विषय दोनों महत्वपूर्ण हैं। इसमें उपलब्ध ''चतुर्वेद भाष्य प्रवर्तक'' शब्द इस तथ्य का द्योतक है कि इन तीन ब्राह्मणों ने वेदभाष्यों के निर्माण में विशेष कार्य किया था। प्रतीत होता है, इन पंडितों ने सायण को वेदभाष्यों के प्रणयन में सहायण दिया था और इसलिये विद्यारण्य स्वामी। अर्थात् सायण के अग्रज माधवाचार्य) के समक्ष उनका सत्कार करना उक्त अनुमान की पुष्टी करता है। इतने विपुलकाय भाष्यौ का प्रणयन एक व्यक्ति के द्वारा संभव नहीं है। फलतः सायण इस

विद्वमंडलि के नेता के रूप में प्रतिष्ठित थे और उस काल के महनीय विद्वानों के सहयोग से ही यह कार्य संपन्न हुआ था।

वेदभाष्यों का महत्व :– सायण से पहले भी वेद की व्याख्याएँ की गई थी। कुछ उपलब्ध भी हैं। परन्तु समस्त वेद की ग्रंथ राशि का इतना सुचिंतित भाष्य इतः पूर्व प्रणीत नही हुआ था। सायण का यह वेदभाष्य अवश्य ही याज्ञिक विधि–विधानों की दृष्टि से रखकर लिखा गया है, परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि उन्होने वेद के आद्यात्मिक अर्थ की ओर संकेत न किया हो। वैदिक मंत्र का अर्थ तो सर्वप्रथम ब्राह्मण ग्रंथों में किया गया था और इसी के आधार पर निघटु में शब्दों के अर्थ का और निरूक्त में उन अर्थों के विशदीकरण का कार्य संपन्न हुआ था। निरूक्त में इने–गिने मंत्रों का ही तात्पर्य उन्मीलित है। इतने विशाल वैदिक वाडमय के अर्थ तथा तात्पर्य के प्रकटीकरण के निमित्त सायण को ही श्रेय्य है। वेद के विषय दुर्ग के रहस्य खोलने के लिए सायण भाष्य सचमुच चाबी का काम करता है। आज वेदार्थ मीमांसा की नई पद्धतियों का जन्म भले ही हो गया हो, परन्तु वेद की अर्थ मीमांसा में पंडितों का प्रदेश सायण के ही प्रयत्नों का फल है। आज का वेदार्थ परिशीली आलोचक आचार्य सायण का विशेष ऋणी है। मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने इसी भाष्य के बल पर ही वैदिक साहित्य में गति बढ़ाया है। वेदार्थ मीमांसा के इतिहास में सायण का नाम सुवर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

इन्हें भी देखे ऋग्भाष्य – पदार्थ कोष

संदर्भ :–

1. "Sound and meaning of Veda"
2. Vijayanagara Literature from book History of Andhras, P. 268 f.
3. Encyclopaedia of Indian Literature Sasay to Zorgot from book Encyclopaedia of Indian Literature. P. 3885 f.

बाहरी कड़ियाँ :–

- वेद भाष्यों पर कुछ विचार (मृत कड़ियाँ)
- Article on sayana of everything 2.com.
- Light or coincidence by subhash kak

माधवाचार्य या माधव विद्यारण्य (1296–1386) विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक हरिहराय प्रथम एवं बुक्काराय प्रथम के संरक्ष्झक संत एवं दार्शनिक थे। उन्होने दोनों भाईयों को सन् 1336 में विजयनगर साम्राज्य की स्थापना में सहायता की वे विद्या के भण्डार–सरस्वती के वरद पुत्र, महान तपस्वी और अभ्दुत प्रतिभावान थे। संस्कृत वडमय में इतनी अधिक एवं उनकी इतनी उच्चकोटि कृतियाँ है। कि उन्हें इस युग के व्यास कहा जाता है। उन्होने सर्वदर्शन संग्रह की रचना की है जो हिन्दुओं दार्शनिक सम्प्रदायों के दर्शनों का संग्रह है। इसके अलावा उन्होने अद्वैत दर्शन के पंचदशी नामक ग्रंथ की रचना भी की। विद्यारण्य की तुलना में यदि मध्यकाल में दूसरा कोई नाम लिया जा सकता है, तो वह समर्थ गुरू रामदास का है, जिन्होने शिवाजी महाराज को माध्यम बनाकर इस्लामी साम्राज्य का मुकाबला किया। स्वामी विद्यारण्य का जन्म 11 अप्रैल 1296 में तुंगभद्रा नदी के तटवर्ती पम्पाक्षेत्र (वर्तमान हम्पी) के किसी गांव में हुआ था। उनके पिता मायणाचार्य उस समय के वेद के प्रकांड विद्वान थे। माँ श्रीमती देवी भी विदुषी थी। इन्हीं विद्यारण्य के भाई आचार्य सायण ने चारों वेदों का वह प्रतिष्ठित टीका की थी, जिसे 'सायणभाष्य' के नाम से जाना जाता है। विद्यारण्य का बचपन का नाम माधव था। विद्यारण्य का नाम तो 1331 में उन्होने तब धारण किया, जब उन्होने सन्यास ग्रहण किया। विद्यारण्य ने हरिहर प्रथम के समय से राजाओं की करीब तीन पीढ़िरूों का राजनीतिक व सांस्कृतिक निर्देशन किया। 1372 में करीब 76 वर्ष की आयु में उन्होने राजनीति से सेवानिवृत्ति ली और श्रृगेरी वापस पहुंच गए और उसके पीठाधीश्वर बने इसके करीब 14 वर्ष बाद 1386 में उनका स्वर्गवास हो गया। लेकिन जीवन भर वह भारत देश समाज व संस्कृति के संरक्षण की चिता करते रहे। उन्होने अद्वैत दर्शन से संबंधित ग्रंथों के साथ सामाजिक महत्व के ग्रंथों का भी प्रणयन किया अपनी पुस्तक 'प्रायश्चित सुधानिधि' में उन्होने हिन्दुओं के पतन के कारणों की भी अपने ढंग से व्याख्या की है। उन्होने हिन्दुओं की विलासिता को उनके पतन का सबसे बड़ा कारण बताया। नियंत्रणहीन विलासिता का इस्लामी जीव हिन्दुओं को बहुत आकर्षित कर रहा था। नाचने गाने वाली दुश्चरित्र स्त्रियों व मुस्लिम वेश्याओं के संग का उन्होने कठोरता से निषेध किया है।

विद्यारण्य की प्रारंभिक शिक्षा तो उनके पिता के सानिध्य में ही हुई थी, लेकिन आगे की शिक्षा के लिये वह कांची कामकोटि पीठ के आचार्य विद्यातीर्थ के पास गए थे इन स्वामी विद्यातीर्थ ने विद्यारण्य को मुस्लिम आक्रमण से देश की संस्कृति और समाज की रक्षा हेतु

नियुक्त किया था। विद्यारण्य ने गुरू का आदेश पाकर पूरा जीवन उसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समर्पित कर दिया।

कृतियाँ :–

- सर्वदर्शन संग्रह
- अनुभूतिप्रकाश
- जीवनमुक्ति विवेक
- जैमिनीयन्यायमाल
- कालमाधवीय
- पंचादशी
- पराशर माधवीय
- पराशर स्मृति व्याख्यान
- स्मृतिसंग्रह
- दृग–दृश्य–विवेक

इन्हें भी देखें :–

- विजय नगर साम्राज्य
- हरिहरराय प्रथम
- बुक्काराय
- सर्वदर्शन संग्रह
- अद्वैत वेदान्त

पुरन्दरदास :– श्रीनिवास नायक, जिन्हें पुरन्दरदास (1) IAST : पुरंदरदास (2) (लगभग 1484–1564) के नाम से भी जाना जाता है, वर्तमान कर्नाटक, भारत के एक संगीतकार गायक और हरिदास दार्शनिक थे। वे मावधवाचार्य के द्वैत दर्शन के अनुयायी थे। वे कर्नाटक संगीत के प्रमुख संस्थापक समर्थकों में से एक थे। कर्नाटक संगीत में उनके योगदान के सम्मान में उन्हें कर्नाटक संगीत का ''पितामह'' कहा जाता है। (3) (4) (5) (6) एक किंवदंती के अनुसार, उन्हें नारद का अवतार माना जाता है (7) (8) पुरंदरदास

कर्नाटक के सोने चांदी और विविध आभूषणों के एक धनी व्यापारी थे, जिन्होने हरिदास (शाब्दिक अर्थ विष्णु या कृष्ण का सेवक) बनने के लिए अपनी सारी भौतिक संपत्ति दे दी, जो एक भक्ति गायक थे जिन्होने भागवत पुराण के कठिन संस्कृत सिद्धान्तों को सरल और मधुर गीतों में सभी के लिए उपलब्ध कराया। वे मध्यकालीन भारत के सबसे महत्वूपर्ण संगीत विद्वानों में से एक थे। (9) (10) (11) उन्होने स्वरावली और अलंकार के रूप में ज्ञात श्रेणीबद्ध अभ्यासों की संरचना करके कर्नाटक संगीत सिखाने के बुनियादी पाठ तैयार किया और साथ ही उन्होने राग मायामलवगोला को क्षेत्र में शुरूआती लोगों द्वारा सीखे जाने वाले पहले पैमाने के रूप में पेश किया – एक प्रथा जिसका आज भी पालन किया जाता है। उन्होने नोसिखिए छात्रों के लिए गीता (सरलगीत) की भी रचना की पुरंदरदास भक्ति आंदोलन के गायक और संगीत विद्वान के रूप में दास साहित्य की रचना के लिए विख्यात है। उनके समकालीन कनकदास ने उनकी कला का अनुकरण किया। पुरंदरदास की कर्नाटक संगीत रचनाऐं ज्यादातर कन्नड़ में है, हॉलाकि कुछ संस्कृत में भी है। उन्होने अपनी रचनाओं पर अंकित नाम (उपनाम) ''पुरंदर विठ्ठल'' (विठ्ठल विष्णु का दूसरा नाम है) लिखा है और विष्णु का यही रूप उनका आराध्य दैवत या इष्टमूर्ति या पूजनीय देवता है। उनके काम की सराहना उनके समय के कई विद्वानों और बाद के विद्वानों ने की।

जीवनी :– शिलालेखीय साक्ष्य बनाने हैं कि पुरंदर दास का जन्म कन्नड़ देशस्य माधव ब्राहमण परिवार में एक हीरा व्यापारी के घर हुआ था (12) (13) (14) 1484 ई. में पुरंदर गढ़ में, पुणे से 18 किलोमीटर दूर वर्तमान महाराष्ट्र राज्य (15) अन्य मतो के अनुसार, उनका पैतृक शहर कर्नाटक में पुरंदर घट्टा या (16) या पूणे के पास पुरंदरगढ़ लेकिन बाद को एक ऐतिहासिक गलती माना जाता है :– उनके पेननाम उनके अंकिता को एक ऐसे स्थान से जोड़ना जो मुख्य रूप से 15वीं और 16वीं शताब्दी में एक सैन्य छावनी के रूप में कार्य करता था (17) 2018 में पुरंदरदास के जन्मस्थान का पता लगाने के लिए कर्नाटक सरकार द्वारा गठित पांच सदस्यीय समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है समिति में वरिष्ठ गायक और संगीतज्ञ आर.के.पद्यभ्नाभ, विद्वान अरलुमलिगे पार्थसारथी, ए.बी.नवादा, वीरन्ना राजोरा और पूर्व मंत्री लीलादेवी, नवादा शामिल थे। (18) अब यह पता चला है कि पुरंदरदास का जन्म अरागा, विजयनगर सम्राज्य (आधुनिक तीर्थहल्ली, कर्नाटक, भारत) कर्नाटक में हुआ था (19) पुरंदरदास धनी व्यापारी वरदप्पा नायक और उनकी पत्नी रूक्मिणी के एकलौते बेटे थे। उनका नाम तिरूमाला के वेंकटेश्वर मंदिर के संरक्षक देवता

के नाम पर श्रीनिवास नायक रखा गया था। उन्होने शिक्षा के माध्यम से कन्नड़, संस्कृत और पवित्र संगीत में दक्षता हांसिल की। 16 साल की उम्र में, उनका विवाह सरस्वतीबाई से हुआ, जिन्हैं पारंपरिक रूप से एक धर्मपरायण युवती के रूप में वर्णित किया जाता है। उनके चार बेटे थे, वरदप्पा, गुरूराय, अभिनवप्पा और माधवपति। 20 साल की उम्र में उन्होने अपने माता–पिता को खो दिया, जिससे उन्हें अपने माता–पिता के रत्न और गिरवी रखने के व्यवसाय की विरासत मिली। वह समृद्ध हुआ और नवकोटि नारायण (एक बहुत अमीर आदमी नब्बे मिलियन की संपत्ति) के रूप में जाने जाना लगा।

लोकप्रिय किवदंती श्रीनिवास नायक के जीवन में एक चमत्कारी घटना का वर्णन करती है। जिसके कारण उन्हें संगीत रचनओं के माध्यम से कृष्ण के प्रति भक्ति का अभ्यास प्रचार और विकास करने के लिए खुद को समर्पित करने के लिए प्रेरित किया गया था। इस तरह की एक परिवर्तनकारी घटना के स्वाभाविक, अपरिहार्य परिणाम के रूप में, जो कई युगों में कई संतों के जीवन में सर्वव्यापी है, ऐसा माना जाता है कि, उन्होनें सांसारिक संपत्ति के प्रति आसक्ति की व्यर्थता का एहसास करते हुए अपने पूर्व लालची और कंजूस स्व को त्याग दिया था। (20) देवता श्रीनिवास को उनके हठधर्मी भौतिकवादी भ्रम और आसकि से मुक्त करने के लिए, और इस तरह खुद के प्रति उनकी भक्ति का दावा करने के लिए, एक गरीब आदमी की आड़ में धन के लिए एक दयनीय दलील के साथ श्रीनिवास के पास पहुंचे, जाहिर तौर पर उनके बेटे के 'उपनयन' संस्कार को करने के लिए धन की आवश्यकता थी। पूरी तरह से इंकार और बाहर निकाले जाने के बाद 'बैचारे आदमी' ने श्रीनिवास की पत्नी के सामने अपनी दलील दोहराई, कठोर आध्यात्मिक प्रकृति की एक उदार आत्मा उसने अपने पति को बताए बिना अपनी एक कीमती नाक की अंगूठी दे दी, 'बेचारे आदमी' ने नाक की अंगूठी किसी और को नहीं बल्कि खुद श्रीनिवास को वापस बेच दी। चतुर श्रीनिवास अपनी पत्नी की उदारता से अवगत थे उन्होने तुरंत नाक की अंगूठी को पहचान लिया और जल्दी से घर चले गए मामले की सच्चाई का पता लगाने के लिए क्रोधित और उत्सुक, उन्होने अपनी पत्नी से तुरंत उसके सामने नाक की अंगुठी पेश करने के लिए कहा। यह महसूस करते हुए की श्रीनिवास को उसके गुप्तदान का पता चल गया है, पत्नी ने जहर खाकर अपना जीवन समाप्त करने का निर्णय लिया। आने प्रयास से पहले उसने विष्णु से प्रार्थना पूरी की थी, वह जहर के प्याले के अन्दर एक नाक की अंगूठी देखरक चौंक गई पूरी तरह से उसी के समान जिसे अभी–अभी दिया था

अविश्वास और आनंद से भरकर उसने पूरी घटना अपने पति को सुनाई जो हतप्रभ और खोया हुआ था। इसी बीच बेचारे आदमी की खोज का कोई फायदा नही हुआ वह जिस रहस्यमयी ढंग से प्रकट हुआ था उसी तरह गायब भी हो गया था। उस बहुत ही शुभक्षण में श्रीनिवास का पुराना स्वभाव–जो विष्णु के गुढ़ तरीकों से आश्वस्त था, अपनी धर्मपरायण पत्नी को बचाने वाली अचूक कृपा को देख चुका था उस शक्ति से हतप्रभ था जो एक क्षण में मात्र इच्छामात्र से सोने का आभूषण उत्पन्न कर सकती थी। 30 वर्ष की आयु में उन्होने अपनी सारी संपत्ति दान में दे दी, और अपने परिवार के साथ उन्होने अपना घर त्याग दिया और एक भिक्षु का जीवन जीने लगे भीक्षा पर जीवन यापन करते हुए और भगवान विष्णु की महिमा गाते हुए। अपनी पहले गीत रचना में, वह भोग विलास में अपने व्यर्थ जीवन पर विलाप करते है। इसकी शुरूआत त्रिपुट ताल के शुद्व संवेरी राग में ''अना लाए करा'' शब्दों से होती है।

अपने भ्रमण के दौरान उनकी मुलाकात ऋषि व्यासतीर्थ से हुई, जो माधव दर्शन के प्रमुख प्रतिपादकों में से एक और विजय नगर साम्राज्य के सम्राट कृष्णदेवराय के राज गुरू थे। प्रो. सम्बमूर्ति (21) के अनुसार श्रीनिवास ने 1525 में व्यासतीर्थ के हाथों अपनी औपचारिक दीक्षा ली थी जब वह लगभग 40 वर्ष के थे, और उन्हें पुरंदरदास नाम दिया गया। पुरंदरदास ने विजयनगर साम्राज्य और महाराष्ट्रके पंढरपुर में यात्रा की और भगवान की स्तुती में आत्मा को झकझोर देने वाले गीतों की रचना और प्रस्तुति की। उन्होने अपने अंतिम वर्ष हम्पी में बिताए और कृष्णदेवराय के दरबार में गीत भी गाए। जिस मंडप में वे रूके थे उसे हम्पी में पुरंदरदास मंडप के नाम से जाना जाता है। 2 जनवरी 1564 को 95 वर्ष्इ की आयु में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद ही विजय नगर साम्राज्य का पतन हो गया। परंपरा और किवंदती है कि उन्होने 475,000 कीर्तन (गीत) की रचना की थी। इसके अलवा इस किवदंती के अनुसार, उनकी मूल इच्छा 500,000 कीर्तन (गीत) की रचना करने की थी। अपने वर्तमान जीवन में ऐसा करने में असमर्थ होने के कारण, उन्होने अपने छोटे बेटे से उनहें पूरा करने का अनुरोध किया उनके बेटे माधवपति ने अपने पिता से कहा कि वह अपने अगले जन्म में यह कर सकता है। ऐसा माना जाता है कि उनका पुनर्जन्म प्रसिद्व विजयदास के रूप में हुआ था। जन्मस्थान कर्नाटक राज्य के रायचूर जिले के मानकी शहर के पास चीकलपर्वी गाँव है – और उन्होने वादे के अनुसार 25 हजार कीर्तन (गीत) पूरे किए। उनके अधिकांश गीत विष्णु और अन्य देवताओं की

स्तुति में है (कर्नाटक संगीत के त्रिमूर्ति(तीन प्रतीक) में से एक, संत त्याग राज ने अपने गेय नाटकम (एक ओपेरा) पहलाद भक्ति विजय में पुरंदरदास को श्रद्धांजलि दी है। (24)

कर्नाटक संगीत पर प्रभाव :—

पुरंदरदास ने कर्नाटक संगीत सिखाने की पद्धति को व्यवस्थित किया जिसका पालन आज भी किया जाता है। उन्होने संगीत निर्देशन के लिए बुनियादी पैमाने के रूप में राग, मायामालव गोला की शुरूआत की और स्वरावली, जाति स्वर, अलंकार, लक्षणगीत, प्रबंध, उपभोग, दातू वरस, गीता, सूलदि और कृति जैसे श्रेणीबद्ध पाठों की एक श्रृखंला तैयार की (3) एक और योगदान उनकी रचनाओं में भाव, राग और लय का सम्मिश्रण था। उन्होने अपने गीतों में साधारण दैनिक जीवन और बोलचाल की भाषा के तत्वों पर टिप्पणियाँ शामिल की। उन्होंने लोक रागों को मुख्यधारा में पेश किया, अपने गीतों को उस समय के रागों पर आधारित किया ताकि एक आम आदमी भी उन्हें सीख और गा सके। (23) उन्होने कई लक्ष्य और संगीत भी लिखे उनकी सूलदिया संगीत की उत्कृष्ट, कृतियाँ मानी जाती है और राग लक्षणा के लिए मानक हैं। विद्वान वर्ण मेट्टुओं के मानकीकरण का श्रेय्या पूरी तरह से पुरंदरदास को देते है। (24) कहा जाता है कि यात्रा करने वाले हरिदास उत्तराधिकारियों ने उनके द्वारा तैयार की गई प्रणालियों का पालन किया।

उनके गीतों के मूल संग्रह को व्यासतीर्थ द्वारा दिए गए पुरंदरोंपनिषत (8) के रूप में संदर्भित किया जाता है, जिसमें से अभी केवल 1000 उपलब्ध है। श्री दास एक वाग्गेयकार (संगीतकार—कलाकार) एक लक्षणकार (संगीतज्ञ) और संगीत शिक्षाशास्त्र के संस्थापक थे। संगीतज्ञ उन्हें कर्नाटक संगीत का संगीत पितामह (शाब्दिक रूप से ''दादा'') कहते है। (22)

समाज सुधार :— पुरंदरदास ने मौजुदा सामाजिक प्रथाओं को सुधारने की कोशिश की और स्थानिय कन्नड भाषा में भक्ति गीतों के माध्यम से प्रचार किया (27) उनके अधिकांश कीर्तन सामाजिक सुधार से संबंधित है, और समाज के दौषों को ईंगित करते है। (28) पुरंदरदास का दर्शन हिन्दु धर्म में भक्ति की अवधारणा के साथ सामंजस्यपूर्ण है, जो मोटे तौर पर नारद भक्ति सूत्र पर आधारित है और अनिवार्य रूप से अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन के साथ समकालिक है। यह ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण और शुद्ध प्रेम सिखाता हैं पुरंदरदास की रचनाओं में भक्ति का दर्शन वैष्णववाद के यथार्थवादी बहुलवादी माधव दर्शन की आवश्यक शिक्षाओं से उपजा है, और इसे सरल कन्नड़ में प्रस्तुत किया

गया है। व्यक्तिगत आत्मा (जीव) भगवान (विष्णु/ईश्वर) का प्रतिबिम्ब है, जीव का अस्तित्व, ज्ञान और आनंद ईश्वर के कारण है, तथा अपने कर्मो और उनके परिणामों के संबंध में किसी भी तरह की स्वतंत्रता की भावना को त्याग देना चाहिए। (29) मन को इस संसार के क्षणिक सुखो और संपत्तियों से दूर करना चाहिए, इसके बजाय, इसे विष्णु की ओर मोड़ना चाहिए, जो अकेले शुद्ध अवचिल आनंद के धनि है। उनके कीर्तन में इस संबंध में सरल शिक्षाऐं है और वे लोगों से वैष्णव का उत्तम जीने का आग्रह करते है। (30)

जातीवाद :– पुरंदरदास ने अपने गीतों के माध्यम से जातिवाद की बुराइयों से लड़ाई लड़ी। (31) अपने गीत आवकुलवादेरेणु आवनादारेणु आत्मा भवरी यदा मेले में वह आश्चर्य करते है कि अगर कोई मानवतावाद की भावना को नहीं समझता है तो क्या फायदा है, चाहे वह किसी भी जाति या स्थिति का हो। (32) उसी गीत में जब विभिन्न रंगों की गायों और विभिन्न आकृतियों के गन्ने का संबंध होता है तो वह इस बात पर जोर देते हैं कि किसी का जन्म केवल किसी व्यक्ति की उच्च्ता या निम्नता का फैसला नहीं कर सकता है। वह पूछते हैं कि क्या टेढ़े गन्ने की मिठास भी टेढ़ी होगी या कई रंगों की गायों का दूध भी कई रंगों का होगा उन्होने लोगों से दुनिया में अपना सर्वश्रेष्ठ करने, गरीबों को भोजन और दान देने दूसरों की मदद करने और आसक्ति त्योगने के लिए कहा। वह जाति व्यवस्था के खिलाफ थे।

लैंगिक असमानता :– पुरंदरदास के अनुसार पुरूष और महिलाओं के बीच कोई असमानता नही थी। दोनों के पास अपने दैनिक–जीवन के आचरण के साथ–साथ धर्मपरायण के पालन में समान अधिकार और दायित्व थे। पुरंदरदास ने एक सद्गुणी महिला के गुणों का स्पष्ट वर्णन किया। उनके अनुसार महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले गले की चेन चूड़ियाँ और अन्य आभूषण महत्वपूर्ण नहीं थे। मन की सुंदरता और उत्तम आचरण ही उनकी सच्ची शोभा थे। (33)

अस्पष्टता :– पुरंदरदास ने छुआ–छुत पर कुछ जोरदार अभिव्यक्तियों की जो समाज को परेशान कर रही थी उनकी ताकत शायद उनके गुरू व्यासतीर्थ से आती है, जिसमें विजयनगर के राजा के समर्थन से आती है जिसमें विजयनगर के राजा कृष्णदेवराय का समर्थन भी शामिल था। (31) ऐसे ही एक गीत होलाय होरागिथेन ओरोलगिलावे में उनका मानना है कि किसी व्यक्ति को किसी विशेष जाति में उसके जन्म के आधार पर अछूत नही कहा जाना चाहिए, बल्कि यह उसका आचरण है जो उसे अछूत बनाता है अगर उसे

ऐसा कहा जा सकता है अछूत शब्द का प्रयोग व्यक्ति के साथ शारीरिक संपर्क के सीमित संदर्भ में नही है किया जाता है, बल्कि यहां उसे व्यक्ति के साथ संबंध की व्यर्थता पर प्रकाश डाला गया है। यह गीत में बाद में भावों से स्पष्ट है जो कहता है कि, जो आत्म–अनुशासन का पालन नहीं करता वह अछूत है, जो अपनी सरकार के खिलाफ साजिश रचता है वह अछूत है, जो धन होते हुए भी दान से कतराता है, वह अछूत है, जो अपने विरोधियों को खत्म करने के लिए जहर देता है वह अछूत है, जो अपनी जाति की शुद्धता पर गर्व करता है वह अछूत है और अंत में जो पुरंदर बिठ्ठल का ध्यान नही करता वह अछूत है। (31) दास का संदेश हमारे समाज में छुआछूत को जोरदार और स्पष्ट रूप से खारिज करता है। वह किसी भी भगवान को दर्शाने के लिए पुरंदर विट्ठल के नाम का उपयोग करता है। (31) यह विभिन्न देवीदेवताओं पर उनके अन्य गीतों से स्पष्ट है (31) इसी तरह के विचार कई अन्य कवियों ने भी व्यक्त किए है।

समकालीन संगीत में :– शुद्ध कर्नाटक परंपरा में बिदाराम कृष्णप्पा पुरंदरदास की रचनाओं को लोकप्रिय बनाने वाले आधुनिक समय के अग्रणी गायकों में से एक थे। गायिका मद्रास ललितांगी और उनकी प्रख्यात बेटी पद्यमविभूषण संगीता कलानिधि एम.एल. वंसतकुमारी ने पुरंदरदास की रचनाओं के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, दोनों को पुरंदरदास का विशेषज्ञ माना जाता था एम.एल. वसंतकुमारी को पुरंदरदास के संगीत में उनके योगदान के लिए मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा मानद डॉक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया गया था। हांलो कि, पुरंदरदास की रचनाऐं मूलरूप से कर्नाटक संगीत प्रणाली के रागों में है, लेकिन उनकी रचनाओं को हिंदुस्तानी संगीत में भी अपनाया गया है। और समानरूप से लोकप्रिय बनाया गया है। भीमसेन जोशी माधव गुड़ी और बसवराज राजगुरू जैसे हिंदूस्तानी संगीत के दिग्गजों ने हाल के वर्षो में उन्हें और अधिक लोकप्रिय बना दिया है।

उपेन्द्र भट्ट, पुत्तर नरसिम्हा नायक, वेंकटेशकुमार नागराज राव हवलदार गणपति भटट, विद्याभूषण, प्रवीण गोडखिंडी नचिकेता शर्मा, संगीता कट्टी और बॉम्बे सिस्टर्स जैसे शास्त्रीय गायक और संगीतकार कर्नाटक और हिंदूस्तानी संगीत समारोह में पुरंदरदास की रचनाओं और अन्य दास साहित्य गीतों को गाने और प्रदर्शन करने की परंपरा को जारी रखे हुए हैं। देर से मैसूर राम चंद्राचार्य अपने संगीत समारोहो के माध्यम से दास साहित्य का परिश्रम पूर्वक प्रचार कर रहे हैं। तरूमाल तिरूपति देवस्थान भी दाससाहित्य परियोजना

के माध्यम से दास कृतियों का प्रचार कर रहा हैं। उन्होंने कर्नाटक संगीता में पहले लोरी गीतों की भी रचना की जैसे थुगिरे रंगना (34) और गुम्मन करेयादिर, (35)

- अभिवादन
- 14 जनवरी 1964 को इंडिया सिक्योरिटी प्रेस – डाक विभाग ने पुरंदरदास की 400 वी पुण्यतिथि पर उनके सम्मान में एक डाक टिकिट जारी किया था।
- तिरूपति तिरूमाला देवस्थान ने दास साहित्य परियोजना के अंतर्गत पुरंदर दास के साहित्य का प्रचार और लोकप्रिय करण किया है। (44)
- जीवनी संबंधी फिल्मे और वृत्त चित्र
- पुरंदरदास के जीवन और रचनाओं पर कन्नड़ भाषा में तीन जीवनी फिल्में बनाई गयी है।
- पुरंदरदास (1937) नवकोटि नारायण (1964)
- श्री पुरंदर दसरू (1967)
- फिल्म निर्देशक और नाटककार गिरीश कर्नाड ने कर्नाटक के दो मध्यकालीन भक्ति कवियों पर कनक–पुरंदरा (अंग्रेजी, 1988) नामक एक वृत्तचित्र फिल्म बनाई। (45), (46)
- पुरंदर दास के गीतों का संकलन
- गज वंदना बेदुवे गौरी थानया – कर्नाटक रागम हंसध्वनि में एक लोकप्रिय पुरंदर दश रचना
- तीन महान दक्षिण भारतीय संतो के गीत – ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2002, आई.एस.बी.एन 9780195646559
- काव्यप्रेमी, 1996 पुरंदरदासा हादुगालु. धारवाडः समाज पब्लिशर्स, इसमें लगभग शामिल हैं, 225 गाने, कन्नड भाषा में
- यह सभी देखे।
- हरिदास, माधवाचार्य, व्यझसटर्था, कनकदास, अन्नमाचर्य, शिशुनाला, शरीफ, पुत्तुर नरसिंह नायक, द्वैत वेदांत, कर्नाटक संगीतकारों की सूची कर्नाटक कलाकारों की सूची, कर्नाटक वाद्यवादकों की सूची, कर्नाटक संगीत की त्रिमूर्ति –

दयानंद सरस्वती – (1824–1883) आधुनिक भारत के चिंतक तथा आर्य समाज के संस्थापक थे। उनके बचपन का नाम 'मूलशंकर' था। उन्होंने वेदो के प्रचार–प्रसार के लिये मुम्बई में आर्य समाज (श्रेष्ठ जीवन पद्धति) की स्थापना की 'वेदो की ओर लौटे' यह उनका दिया हुआ प्रमुख नारा था। उन्होंने कर्मसिद्धान्त, पुर्नजन्म तथा सन्यास को अपने दर्शन के स्तम्भ बनाये। उन्होंने ही सबसे पहले 1976 में ''स्वराज्य का नारा'' दिया जिसे बाद में लोकमान्य तिलक ने आगे बढ़ाया प्रथम जनजागरण के समय स्वामीजी ने आगरा से देश के सभी आर्य समाजों को यह निर्देश भिजवाया था कि ''सब सदस्य अपना धर्म ''**'सनातन धर्म')** लिखवाए।

दयानंद सरस्वती का जन्म 12 फरवरी 1824 में टंकारा मोरबी (मुंबई की मोरवी रियासत) के पास काठियावाड़ क्षेत्र (जिला राजकोट) गुजरात में हुआ था। उनके पिता का नाम करशनजी लालजी तिवारी और माँ का नाम अमृताबाई (अम्बाबाई) था। उनके पिता एक कर–कलेक्टर होने के साथ ब्राह्मण कुल के समृद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति थे। इनका जन्म राशि मूल नक्षत्र में होने से स्वामी दयानंद सरस्वती का बाल्यावस्था में नाम मूलशंकर रखा गया। उनका प्रारम्भिक जीवन बहुत आराम से बीता दयानंद सरस्वती की माता वैष्णव थी जबकि उनके पिता शैव मत के अनुयायी थें। आगे चलकर विद्वान बनने के लिये वे संस्कृत, वेद, शास्त्रों व अन्य धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में लग गये।

महाशिवरात्री को बोध – शिव के पक्के भक्त बालक मूलशंकर को पिता ने महाशिवरात्रि के अवसर पर व्रत रखने को कहा शिव मंदिर में रात्रि में बालक ने चूहों को शिव लिंग पर उत्पात मचाते देखा तो उसको बोध हुआ कि यह वह शंकर नही है जिसकी कथा उसे सुनाई गयी थी। इसके बाद मूलशंकर मन्दिर से घर चला गया और उसके मन में सच्चे शिव के प्रति जिज्ञासा उठी।

गृह त्याग – अपनी छोटी बहन और चाचा की हैजे के कारण हुई मृत्यु से वे जीवन मरण के अर्थ पर गहराई से सोचने लगे और ऐसे प्रश्न करने लगे जिससे उनके माता–पिता चिंतित रहने लगे। तब उनके माता पिता ने उनका विवाह किशोरावस्था के प्रारम्भ में ही करने का निर्णय लिया। (19 वीं सदी के आर्यावर्त (भारत) में यह आम प्रथा थी) लेकिन बालक मूलशंकर ने निश्चय किया कि विवाह उनके लिये नही बना है और वे 1846 में सत्य की खोज में निकल पड़े। (1)

ज्ञान की खोज – फाल्गुन कृष्ण सवत् 1845 में शिवरात्री के दिन उनके जीवन में नया मोड़ आया। वे घर से निकल पड़े और यात्रा करते हुए वह गुरू स्वामी विरजानन्द के पास पहुंचे। गुरूवर ने उन्हें पाणिनी व्याकरण, पातंजल योगसूत्र तथा वेद–वेदांग का अध्ययन कराया। गुरू दक्षिणा में उन्होंने मांगा–विद्या को सफल करके दिखाओ, परोपकार करो, मत–मतांतरो की अविद्या को मिटाओ, वेद के प्रकाश से इस आज्ञानुरूपी अंधकार को दूर करो, वैदिक धर्म का आलेक सर्वत्र विकीर्ण करो। यही तुम्हारी गुरू दक्षिणा है।

उन्होंने अंतिम शिक्षा दी – मनुष्य कृत ग्रंथो मे ईश्वर और ऋषियो की निंदा है, ऋषिकृत ग्रंथो में नही।

ज्ञान प्राप्ति के पश्चात – महर्षि दयानंद ने अनेक स्थानो की यात्रा की। उन्होंने हरिद्वार के कुंभ के अवसर 'पाखण्ड खिण्डिनी पताका' फहराई। उन्होंने अनेक शास्त्रार्थ किए। वे कलकत्ता के बाबू केशवचन्द्र सेन तथा देवेन्द्रनाथ ठाकुर के संपर्क में आए। यही से उन्होंने पूरे वस्त्र पहनना तथा हिन्दी में बोलना व लिखना प्रारम्भ किया। यही उन्होंने तत्कालीन वाइसराय को कहा था, मैं चाहता हूँ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परंतु भिन्न–भिन्न भाषा पृथक–पृथक शिक्षा, अलग–अलग व्यवहार का छुटना अति दुष्कर है। बिना इसके छुटे परस्पर का व्यवहार पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।

आर्य समाज की स्थापना –

ऊँ ओउम को आर्य समाज में ईश्वर का सर्वोत्तम और उपयुक्त नाम माना जाता है। महर्षि दयानन्द ने चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सवं्त 1932, (सन् 1275) को गिरगांव मुंबई में आर्यसमाज की स्थापना की। आर्य समाज के नियम और सिद्धांत प्राणी मात्र के कल्याण के लिए है। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

वैचारिक आन्दोलन, शास्त्रार्थ एवं व्याख्यान –

वेदों को छोड़कर कोई अन्य धर्मग्रन्थ प्रमाण नही है – सत्य का प्रचार करने के लिए स्वामीजी ने सारे देश का दौरा किया और जहां जहां वे गये प्राचीन परम्परा के पण्डित और विद्वान उनसे हार मानते गए। संस्कृत भाषा का उन्हें अगाध ज्ञान था। संस्कृत में वे धारा प्रवाह बोलते थे साथ ही वे प्रचण्ड तार्किक थे।

उन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्मग्रंथो का भली–भांति अध्ययन–मन्थन किया था अतएव अपने चेलों के संग मिलकर उन्होंने तीन–तीन मोर्चो पर संघर्ष आरंभ कर दिया दो मोर्चे तो इसाइयत और इस्लाम के थे किन्तु तीसरा मोर्चा सनातनधर्मी हिन्दुओं का था। दयानन्द ने बुद्धिवादी की जो मशाल जलाई थी उसका कोई जवाब नहीं था।

समाज सुधार के कार्य – महर्षि दयानन्द का समाजसुधार में व्यापाक (योगदान रहा। महर्षि दयानन्द ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों तथा अंधविश्वासों और रूढ़ियों–बुराइयों व पाखण्डों का खण्डन व विरोध किया। सन् 1867 के हरिद्वार के कुम्भ मेले में धर्म प्रचार करने के उद्देश्य से आए थे। इसका कारण था कि कुम्भ के मेले में हिन्दू पुरूष और साधु लाखों की संख्या में इकट्ठे होते है। यह लोग समझते हैं कि कुम्भ मेले पर गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाते हैं और मनुष्य को दुःखो व जन्ममरण से मुक्ति मिल जाती है। हरिद्वार में उन्होंने देखा कि साधु और पण्डे धर्म का उपदेश देकर लोगों को सीधे रास्ते पर लाने के स्थान पर उन्हें पाखण्ड की शिक्षा देकर लुट रहे हैं उन्होंने पाया कि संसार सत्य धर्म पर चलने के स्थान पर अज्ञान के गहरे गढ्ढे में गिर रहा है। हरिद्वार में इन दृश्यों को देखकर स्वामी दयानंद जी को गहरी चोट लगी। उन्होंने पाया कि इन कृत्यों से लोग दुःखों से छुटने के स्थान पर दुःखो के सागर में डुब रहे है। अतः उन्होंने साधु और पण्डों के इस पाखण्ड की पोल खोलने का निर्णय लिया। उन्होने अपने छोटे से निवास स्थान के आगे एक पताका पर ''पाखण्ड–खण्डि पताका'' लिखकर गाड़ दिया और अपने विचारों को व्याख्यान के रूप में प्रकट करने लगे। उस समय तक लोगो ने किसी सन्यासी के मुख से मूर्ति–पूजा का विरोध श्राद्वों का निराकरण, अवतारों में विश्वास, पुराणों का काल्पनिक होना आदि बाते नही सुनी थी। इसलिए इस दृश्य को विस्मयपूर्वक देखते थे। कुछ लोग इसे कलिकालका का एक लक्षण बतलाते थे। कुछ पंडित नामधारी स्वामीजी को 'नास्तिक' की पदवी भी देने लगे थे। कुछ पंडित और साधुओं ने स्वामी जी के विरूद्ध भाषण देना शुरू कर दिया। और वे उन्हें तरह–तरह की गालियाँ देने लगे। पर स्वामीजी अपने काम में संलग्न रहे। कई पण्डित और साधु उनके स्थान पर वाद–विवाद करने के उद्देश्य से भी आते थे, उनकी युक्तियुक्त बातों से निरूत्तर

होकर चले जाते (2) स्वामीजी सबसे यही कहते थे कि हर की पौड़ी पर नहाने से पाप नही धुलते। वेद की शिक्षा पर चलो अच्छे काम करो, इसी से सुख और मोक्ष मिलेगा। सद्ग्रंथो का पढ़ना–सुनना और सच्चे धर्मात्माओं की संगति ही सच्चा तीर्थ होती है।

उनके ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश ने समाज को आध्यात्म और अस्तिकता से परिचित कराया। वे योगी थे तथा प्राणायाम पर उनका विशेष बल या। वे सामाजिक पुनर्गठन में सभी वर्णो तथा स्त्रियों की भागीदारी के पक्षधर थे।

सामाजिक कुरीतियों का विरोध	समाज सुधार के कार्य
जन्मना जातिवाद	गुण–कर्म–स्वभाव आधारित वर्णव्यवस्था का
छुआछुत	समर्थन
बाल विवाह	शुद्धि आन्दोलन
सती प्रथा	दलितोद्वार
मृतक श्राद्ध	विधवा विवाह
पशु बलि	अंतरजातीय विवाह
नरबलि	सर्व शिक्षा अभियान
पर्दाप्रथा	नारी सशक्तिकरण
देवदासी प्रथा	नारी को शिक्षा का अधिकार
वेश्यावृत्ती	सबको वेद पढ़ने का अधिकार
शवों का दफनाना या नदी में बहाना	गुरू कुल शिक्षा
मृत बच्चो को दफनाना	प्रथम हिन्दू अनाथालय की स्थापना
समुद्र यात्रा का निषेध का खंडन	प्रथम गौशाला की स्थापना स्वदेशी आन्दोलन
	हिंदी भाषा का समर्थन

हत्या के षड़यंत्र :–

1863 में गुरू विरजानंद के पास अध्ययन पूर्ण होने के बाद लगभग बीस वर्षों के कार्यकाल में दयानंद सरस्वती की हत्या व अपमान के लगभग 44 (3) प्रयास हुए जिसमें 17 बार विभिन्न माध्यमों से विष देकर प्राण हरण के प्रयास किये गये।

अंतिम प्रयास – स्वामीजी की मृत्यु जिन परिस्थितियों में हुई उससे भी यही आभास मिलता हैं कि उसमें निश्चित ही अंग्रेजी सरकार का कोई षड़यंत्र था। स्वामीजी की मृत्यु 30 अक्टुम्बर 1883 को दीपावली के दिन सन्ध्या के समय हुई थी।

उन दिनो वे जोधपुर नरेश महाराज जसवंत सिंह भी उनके चरणों में बैठकर वहां उनके प्रवचन सुनते। दो चार बार स्वामी जी भी राज्य महलों में गए वहां पर उन्होंने नन्हीं नामक वेश्या का अनावश्यक हस्तक्षेप और महाराज जसवन्त सिंह पर उसका अत्यधिक प्रभाव देखा। स्वामी जी को यह बहुत बुरा लगा उन्होंने महाराज को इस बारे में समझाया तो उन्होंने विनम्रता से उनकी बात स्वीकार कर ली और नन्ही से सम्बन्ध तोड़ लिए इससे नन्ही स्वामीजी के बहुत अधिक विरूद्ध हो गई। उसने स्वामीजी के रसोइए कलिया उर्फ जगन्नाथ को अपनी तरफ मिलकर उनके दुध में पिसा हुआ कांच डलवा दिया। थोड़ी ही देर बाद स्वामीजी के पास आकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उसके लिये क्षमा मांगी। उदार ह्रदय स्वामीजी ने उसे राह–खर्च और जीवन यापन के लिए पांच सौ रूपये देकर वहां से विदा कर दिया। ताकि पुलिस उसे परेशान न करे। बाद में जब स्वामीजी को जोधपुर के अस्पतालों में भर्ती करवाया गया तो वहां संबंधित चिकत्सक भी शक के दायर में रहा। उस पर आरोप था कि वह औषधि के नाम पर स्वामीजी को हल्का विष पिलाता रहा। बाद में जब स्वामीजी की तबीयत बहुत खराब होने लगी तो उन्हें अजमेर के अस्पताल में लाया गया। मगर तब तक काफी विलम्ब हो चुका था। स्वामीजी को बचाया नही जा सका।

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में आशंका यही है कि वेश्या को उभारने तथा चिकित्सक का बरगलाने का कार्य अंग्रेजी सरकार के इशारे पर किसी अंग्रेजी अधिकारी ने ही किया। अन्यथा एक साधारण वेश्या के लिए यह सम्भव नहीं था कि केवल अपने बलबूते पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय व्यक्ति के विरूद्ध ऐसा षड़यंत्र कर सके। बिना किसी प्रोत्साहन और संरक्षण के चिकित्सक भी ऐसा दुस्साहस कर सकता था।

अंतिम शब्द – महर्षि की मृत्यु 30 अक्टूबर 1883 में अजमेर में हुई थी स्वधर्म, स्वभाषा, स्वराष्ट्र, स्वसंस्कृति और स्वदेशोन्नति के अग्रदूत स्वामी दयानंद जी का शरीर सन् 1883 में दीपावली के दिन पंचतत्व में विलीन हो गया और वे अपने पीछे छोड़ गए एक सिद्धान्त कृण्वन्तों विश्वमार्यम् अर्थात् सारे संसार को श्रेष्ठ मानव बनाओ। उनके अंतिम शब्द थे– ''प्रभु तुने अच्छी लीला की आपकी इच्छा पूर्ण हो।''

जीवन चरित का लेखन – महर्षि के साहित्य के साथ–साथ उनका जीवन चरित भी अत्यन्त प्रेरणादायक है। महर्षि पर अनेक व्यक्तियों ने जीवन चरित्र लिखा, जिनमें पंडित लेखराज, सत्यानन्द आदि प्रमुख हैं किन्तु बंगाली सज्जन बाबू श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के द्वारा बंगाली भाषा में लिखे गए 'दयानन्दचरित' (4) की यह विशेषता है कि देवन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जी स्वयं आर्य समाजी नही थे फिर भी अत्यंत श्रद्धावान होकर उन्होंने 15–16 वर्ष लगातार और सहस्त्रों रूपयां व्यया करके ऋषि जीवन की सामग्री को एकत्र करके उन्होंने महर्षि की प्रामाणिक और क्रमाबद्ध जीवनी को लिखा। इस जीवनी के लेखन का कार्य देवयोग से पूर्ण नही हो पाया तथा देवेन्द्रनाथजी की असामायिक मृत्यु हो गई। तत्पश्चात पं. लेखराम और सत्यानंद द्वारा संग्रहित सामग्री की सहायता से पं. घासीराम ने इसे पूर्ण किया। यह महर्षि जी की अत्यन्त प्रामाणिक जीवनी है। पण्डित लेखराम का अनुसंधान विशेषकर पंजाब यू.पी. और राजस्थान तक ही सीमित रहा मुंबई और बंगाल प्रांत में न उन्होंने अधिक भ्रमण किया और न अधिक अनुसंधान किया। अतः इन दोनो प्रान्तों की घटनाओं का उनके ग्रन्थ में उतना विशद वर्णन नहीं है जितना पंजाब और यूपी तथा राजस्थान की घटनाओं का है। देवेन्द्रनाथ जी के ग्रन्थ में मुम्बई और बंगाल का विस्तृत वर्णन है।

स्वामी दयानन्द के योगदान के बारे में महापुरूषों के विचार

डॉ. भगवान दास ने कहा था कि स्वामी दयानन्द हिन्दू पुनर्जागरण के मुख्य निर्माता थे।

- श्रीमती एनी बेसेन्ट का कहना था कि स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने आर्यावर्त (भारत) आर्यावर्तियों (भारतीयों) के लिए घोषणा की।
- सरदार पटेल के अनुसार भारत की स्वतंत्रता की नींव वास्तव में स्वामी दयानन्द ने डाली थी।

- पट्टाभि सितारमैया का विचार था कि गांधीजी राष्ट्रपिता है पर स्वामी दयानन्द सरस्वती राष्ट्र–पितामह है।
- फ्रेंच लेखक रोमा रोलां के अनुसार स्वामी दयानन्द राष्ट्रीय भावना और जन–जागृति को क्रियात्मक रूप देने में प्रयत्नशील थे।
- स्वामीजी को लोकमान्य तिलक ने ''स्वराज्य और स्वदेशी का सर्वप्रथम मन्त्र प्रदान करने वाले जाज्वलमान नक्षत्र ये दयानन्द''
- नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने ''आधुनिक भारत का आद्यनिर्माता'' माना।
- अन्य फ्रेन्च लेखक रिसर्ड का कहना था कि ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव लोगों को कारागार से मुक्त कराने और जाति बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था। उनका आदर्श है – आर्यावर्त! उठ, जाग, आगे बढ़ समय आ गया हैं, नये युग में प्रवेश कर।
- अमेरिका की मदाम ब्लेवेट्स्की ने ''आदिशंकराचार्य के बाद ''बुराई पर सबसे निर्भिक प्रहारक'' माना।
- सैयद अहमद खां के शब्दों में ''स्वामी जी ऐसे विद्वान और श्रेष्ठ व्यक्ति थे, जिनका अन्य मतावलम्बी भी सम्मान करते थे।''
- वीर सावरकर ने कहा महर्षि दयानन्द संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा थे।
- लाला लाजपत राय ने कहा – स्वामी दयानन्द ने हमें स्वतंत्र विचारना, बोलना और कर्तव्यपालन करना सिखाया।

लेखन व साहित्य – स्वामी दयानन्द ने कई धार्मिक व सामाजिक पुस्तके अपने जीवनकाल में लिखीं। प्रारम्भिक पुस्तके संस्कृत में थी, किन्तु समय के साथ उन्होंने कई पुस्तकों को आर्यभाषा (हिन्दी) में भी लिखा, क्योंकि आर्यभाषा की पहुंच संस्कृत से अधिक थी। हिन्दी को उन्होंने आर्यभाषा का नाम दिया था। (5) उत्तम लेखन के लिए आर्यभाषा का प्रयोग करने वाले स्वामी दयानन्द अग्रणी व प्रारम्भिक व्यक्ति थे। यदि ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रंथो व विचारों (यद्यपि ये विचार ऋषि के स्वयं द्वारा निर्मित थे अपितु वेद द्वारा प्रदत्त थे। पर चला जाये तो राष्ट्र पुनः विश्वगुरू गौरवशाली, वैभवशाली, शक्तिशाली, सम्पन्नशाली, सदाचारी और महान बन जाये।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मुख्य कृतियाँ निम्नलिखित हैं –

• सत्यार्थप्रकाश	संस्कारविधि	भ्रान्तिनिवारण
• ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	पंचमहाययज्ञविधि	अष्टाध्यायी भाष्या
• ऋग्वेद भाष्य	आर्याभिविनय	वेदांग प्रकाश
• यजुर्वेद भाष्य	गोकरूणानिधि	संस्कृतवाक्यप्रबोध
• चतुर्वेदविषयसूची	आर्योद्देश्यरत्नमाला	व्यवहारभानु

सत्यार्थप्रकाश – सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानंद की सर्वोत्तम कृति है। यह चौदह समुल्लासों में रचा गया है। इसके प्रथम दस समुल्लासो में सनातन वैदिक धर्म का प्रतिपादन किया गया है और अंतिम चार समुल्लासों में देशी–विदेशी मत मतान्तरों की समीक्षा समीक्षा की गई है।

आर्योदेश्यरत्नमाला – 1873 में आयोद्देश्यरत्नमाल नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें स्वामीजी ने एक सौ शब्दों की परिभाषा वर्णित की हैं। इनमें से कई शब्द आम बोलचाल में आते है पर उनके अर्थ रूढ़ हो गए हैं, उदाहरण के लिए ईश्वर धर्म–कर्म आदि। इनको परिभाषित करके इनकी व्याख्या इस पुस्तक में हैं। इस लघु पुस्तिका में 8. पृष्ठ है।

गोकरूणानिधि – 1881 में स्वामी दयानन्द ने गोकरूणानिधि नामक पुस्तक प्रकाशित की जो कि गोरक्षा की जो कि गोरक्षा आन्दोलन को स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाने का श्रेय्य भी लेती है। इस पुस्तक में उन्होंने सभी समुदाय के लोगों को अपने प्रतिनिधि सहित गोकृष्णादि रक्षा समिति की सदस्यता लेने को कहा है। जिसका उद्देश्य पशु व कृषि की रक्षा है। आधुनिक पर्यावरण वादियों के समान यहाँ विचार व्यक्त किए गए हैं। इस पुस्तक में समीक्षा, नियम व उपनियम हैं, तथा प्रमुखतः पशुओं को न मारकर उनका पालन करने में होने वाले लाभ वर्णित किए गए है।

व्यवहारभानु – वैदिक यंत्रालय बनारस द्वारा 1880 में व्यवहारभानु पुस्तक प्रकाशित की गई थी। इसमें धर्मोक्त और उचित व्यवहार के बारे में वर्णन है।

स्वीकारपत्र – 26 फरवरी 1883 को उदयपुर में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक स्वीकार पत्र प्रकाशित किया था जिसमें उन्होंने अपनी मृत्योपरान्त 23 व्यक्तियों को परोपकारिणी सभा की जिम्मेदारी सौंपी थीं जो कि उनके बाद उनका काम आगे बढ़ा सकें। इनमें महादेव गोविन्द रानडे का भी नाम है (6) इस स्वीकार पत्र पर 13 गणमान्य व्यक्तियों के

साक्षी के रूप में हस्ताक्षर हैं। इसके प्रकाशन के कुछ छः माह पश्चात ही उनका देहान्त हो गया था।

संस्कृतवाक्य प्रबोध :– यह संस्कृत सिखाने वाली लघु वार्तालाप पुस्तिका है। विभिन्न विषयों पर लघु वाक्य संस्कृत में दिये गये गये हैं। उनके अर्थ भी हिन्दी में दिये है।

संदर्भ –

1. Webdunia. "swami Dayanand saraswati Biography : एक महान देशभक्त थे महर्षि दयानंद सरस्वती''
2. स्वामी दयानन्द सरस्वती : पाखण्ड – खण्डिनी पताका
3. ''ऋषि दयानन्द के प्राणहरण व अपमान की चेष्टाएँ ''अभिगमन तिथि 2022–10–2025
4. "Dayanand chari" अभिगमन तिथि 2022–10–22
5. आर्य भाषा के उन्नायक महर्षि दयानन्द Aschived - 2016-12-26 at the वेबैक मशीन डॉ. मधु संधु
6. स्वीकार पत्र Aschived - 2016-12-26 at the वेबैक मशीन पृ.2 इन्हें भी देखे।

- आर्यसमाज सत्यार्थ प्रकाश स्वामी श्रद्धानंद हिन्दू धर्म ऋग्भाष्य – पदार्थ कोष परोपकारिणी सभा।

महात्मा गांधी

मोहनदास करमचंद गांधी को महात्मा क्यो कहते है?

मोहनदास करमचंद गांधी को महात्मा कहा जाता है वो एक चतुर राजनेता थे। जिन्होंने अंग्रेजी की हुकुमत से भारत को आजाद कराने की लड़ाई लड़ी और गरीब भारतीयों के हक के लिये आवाज उठाई थी। अंहिसक विरोध का उनका सिखाया हुआ सबक आज भी पूरी दुनिया में सम्मान के साथ याद किया जाता है।

भारत के लोग गांधीजी को प्यार से 'बापू' एवं राष्ट्रपिता के नाम से पुकारते है वे मानवता एवं शांति के प्रतीक है।

गांधीजी द्वारा बताई गई कुछ प्रसिद्ध सुक्तियां –

'' अहिंसा सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। यदि हम उसका पूरा पालन नहीं कर सकते हैं तो हमें इसकी भावना को अवश्य समझना चाहिए और जहाँ तक संभव हो हिंसा से दूर रहकर मानवता का पालन करना चाहिए''

''उस प्रकार जिएं कि आपको कल सर जाना है। सीखें उस प्रकार जैसे आपको सदा जीवित रहना है।''

''आजादी का कोई अर्थ नहीं हैं यदि इसमें गलतियां करने की आजादी शामिल न हो।''

''बेहतर है कि हिंसा की जाए, यदि यह हिंसा हमारे दिल में है, बजाए इसके की नपुंसकता को ढकने के लिए अहिंसा का शोर मचाया जाए।''

''व्यक्ति को अपनी बुद्धिमानी के बारे में पुरा भरोसा रखना बुद्धिमानी नही हैं। यह अच्छी बात है कि याद रखा जाए कि सबसे मजबूत भी कमजोर हो सकता है और बुद्धिमान भी गलती कर सकता है।''

''आपको मानवता में विश्वास नही खोना चाहिए। मानवता एक समुद्र है, यदि समुद्र की कुछ बूंदे सुख जाती है तो समुद्र मैल नहीं होता।''

''ईमानदार मतभेद आमतौर पर प्रगति के स्वस्थ संकेत हैं।''

गांधीजी का नारा था? (1) भारत छोड़ो (2) जहां पवित्रता है, वही निर्भयता है। (3) पाप से घृणा करो, पापी से प्रेम करो। (4) जहां प्रेम है वहां जीवन है। (5) किसी की मेहरबानी मांगना अपनी आजादी बेचना (6) करो या मरो (7) भगवान का कोई धर्म नही है। (8) भूल

करने में पाप है परंतु उसे छुपाने में उससे भी बड़ा पाप है। (9) दुनिया में सत्य सदा जीवित रहता है। (10) अपनी गलती को स्वीकारना झाड़ु लगाने के समान है। (11) आप किसी दूसरे के विचारों को कैद नहीं कर सकते। (12) प्रसन्नंता मात्र एक ऐसा ईत्र है?, जिसे आप दूसरों पर छिड़के तो उसकी कुछ बूंदे आप पर भी पड़ती है।

(13) श्रद्धा यानी आत्मविश्वास और आत्मविश्वास का अर्थ ईश्वर में विश्वास

(14) अहिंसा ही धर्म है, वही जिंदगी का एक रास्ता है।

(15) कानो का दुरूपयोग मन को दूषित और अशांत करता है।

गांधीजी के प्रमुख तीन सिद्धांत है – गांधी दर्शन का यह प्रबल सिद्धांत है कि सत्य, अहिंसा और न्याय का आधार आध्यात्मिक ज्ञान और प्रेरणा है।

1910 के दशक की शुरूआत से 1947 तक का गांधीवादी युग भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण काल था। यह मोहनदास करमचंद गांधी जिन्हें महात्मा गांधी के नाम से जाना जाता है के नेतृत्व और सिद्धांतो की विशेषता थी।

महात्मा गांधीजी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को पोरबन्दर में हुआ था। उनके माता पिता का नाम करमचंद गांधी माँ का नाम पुतलीबाई था। उनके बच्चों के नाम – हरिलाल, मोनदास गांधी, मणिलाल गांधी और देवदास गांधी उनकी पत्नी का नाम कस्तुरबा गांधी (वि.वा. 1883–1944) पोते या नाती – गोपालकृष्ण गांधी, एला गांधी, अरणमणिलाल गांधी उनकी हत्या नाथुलाल गोडसे ने 30 जनवरी 1948 मे की थी।

गांधीजी की जीवनी संघर्षो से भरी लेकिन बहुत प्रेरणादायक थी। सत्य और अहिंसा की राह पर चलते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करने की सीख गांधी जी को उनकी माँ से मिली थी। इंग्लैण्ड पढ़ाई के दौरान उन्हें कई बार अपमान सहना पड़ा था फिर भी वो रास्ते से डिगे नही, अडिग रहे। ऐसी ही कई घटनाऐं है, जो इसे प्रेरित करने के साथ ही आश्चर्यचकित भी करती है।

ब्रिटिश हुकुमत में इनके पिता पोरबंद और राजकोट के दीवान थे। गांधीजी का लालन पालन वैष्णव मत को मानने वाले परिवार में हुआ और उनके जीवन पर भारतीय जैन धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा जिसके कारण वह सत्य और अंहिसा में अटुट विश्वास करते थे और आजीवन उसका अनुसरण भी किया।

गांधीजी की शिक्षा दिक्षा – गांधी जी की प्रारम्भिक शिक्षा पोरबंदर में हुई थी। यहाँ उन्होंने मिडिल स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की इसके बाद उनके पिता का राजकोट

ट्रांसफर हो गया इस वजह से उन्होंने राजकोट में अपनी शेष शिक्षा पूरी की। 1887 (साल) में राजकोट हायस्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की और आगे की पढ़ाई के लिए भावनगर के सामलदास कॉलेज में प्रवेश प्राप्त किया, लेकिन घर से दूर रहने के कारण वह अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाए और अस्वस्थ होकर पोरबंदर वापस लौट आए। 4 सितम्बर 1888 को इंग्लैड के लिये रवाना हुए। गांधीजी ने लंदन में लंदन वेजीटेरिन सोसायटी की सदस्यता ग्रहण की और इसके कार्यकारी सदस्य बन गये। गांधीजी लंदन वेजीटेरियन सोसायटी के सम्मेलनों में भाग लेने लगे और पत्रिका में लेख लिखने लगे। यही 3 सालों (1888–1891) तक रहकर अपनी बैरिस्टरी की पढ़ाई पूरी की और 1891 साल में अपनी बैरिस्टर की पढ़ाई पूरी करके भारत वापस लौट आए।

गांधीजी का वैवाहिक जीवन :–

गांधीजी का विवाह सन् 1883 में मात्र 13 वर्ष की आयु में कस्तूरबाबाई से हुआ। कस्तूरबा गांधी के पिता एक धनी व्यवसायी थे। शादी से पहले कस्तूरबा पढ़ना लिखना नही जानती थीं। गांधी ने उन्हें पढ़ना लिखना सिखाया। एक आदर्श पत्नी की तरह बा ने कस्तूरबा गांधी जी का हर एक काम में साथ दिया। सन् 1885 में गांधीजी की पहली संतान ने जन्म लिया। लेकिन कुछ समय बाद ही निधन हो गया। इसी बीच 1885 में उनके पिता की मृत्यु हो गयी। जब गांधीजी इंग्लैंड जाने हेतु नाव लेने के लिए मुंबई गए तब उनकी अपनी जाति के लोगों ने जो समुद्र पार करने के संदूषण के रूप में देखते थे, उनके विदेश जाने पर अडिग रहने पर उन्हें समाज से बहिष्कृत करने की धमकी दी। लेकिन गांधीजी अड़े हुए थे और इस तरह औपचारिक रूप से उन्हें अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिया गया गया। बिना विचलित हुए अठारह साल की उम्र में 4 सितम्बर 1888 को वो साउथेम्प्टन के लिए रवाना हुए।

लंदन में जीवन – लंदन में शुरूआती कुछ दिन काफी दयनीय थे। लंदन में दूसरे वर्ष के अंत में उनकी मुलाकात दो थियोसोफिस्ट भाइयों से हुई जिन्होंने उन्हें सर एडविन अर्नोल्ड से मिलवाय जिन्होंने भागवत गीता का अंग्रेजी अनुवाद किया था। इस प्रकार सभी धर्मो के लिये सम्मान का खवैय्या और उन सबकी अच्छी बातों को समझने की इच्छा उनके दिमाग में प्रारंभिक जीवन में घर कर गयी थी।

गाँधीजी ने अपना पहला सत्याग्रह सन् 1917 ई. में बिहार के चंपारण जिससे शुरू किया। अंग्रेजी यहां के नील बगान के मालिकों का शोषण किया करते थे।

गांधीजी की आत्मकथा द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंटस विद ट्रूथ सन 1927 ई. में प्रकाशित हुई। साढ़े तीन वर्षो के अन्दर ही इसकी तीन लाख प्रतियाँ बिक गई। इस आत्मकथा का कई भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनुवाद किया गया है। गांधीजी का अनशन – अगस्त 1932 में जब सामूदायिक अधि निर्णय की घोषणा हुई तब गांधीजी जेल में थे। इस अधिनिर्णय के अंतर्गत अल्पसंख्यक वर्गो के लिए एक अलग निर्वाचन–क्षेत्र निर्धारित किया गया।

महात्मा गांधी की पत्नी कस्तूरबा गांधी बहुत दिनों से श्वांस नली की प्रदाह से पीड़ित थीं। भारत छोड़ो आंदोलन की गिरफ्तारी एवं साबरमती आश्रम में व्यतीत कठिन जीवन का तनाव उनकी बीमारी का कारण बना। 74 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ। उनका अंतिम संस्कार आगा खान महल के जेल में किया गया। 30 जनवरी 1948 को उनके उपर बम फेंके जाने के दस दिन बाद गांधीजी जब वे बिरला भवन में एक प्रार्थना सभा को संबोधित करने मंच पर जा रहे थे गोली मार दी गयी (नाथूराम गोडसे ने गोली मारी थी) गांधीजी गिर गये और उनके मुख से **''हे राम! हे राम''** शब्द निकले। 1919 से 1948 में उनकी मृत्यु तक वे भारत के केन्द्र में रहे जिसकी परिणति उनके देश की आजादी के रूप में हुई। उन्होंने भारत के राजनैतिक परिदृश्य का पूरा चरित्र बदल दिया। जो कभी अछुत माने जाते थे उनके लिए भी उन्होंने जो किया वो कम महत्व का नही था। उन्होंने लाखों लोगों को जाति अत्याचार और सामाजिक अपमान के बंधनों से मुक्त कर दिया। उनके व्यक्तित्व के नैतिक प्रभाव और अंहिसा की तकनीक की तुलना नहीं की जा सकती। और ना ही इसकी कीमत किसी देश या पीढ़ी तक सीमित है। यह मानवता के लिये उनका अविनाशी उपहार है।

महात्मा गांधी शांति पुरस्कार –

भारत सरकार सम्मानित सामाजिक कार्यकर्ताओं विश्व के नेताओं एवं नागरिकों को वार्षिक महात्मा गांधी शांति पुरस्कार प्रदान करती है। गैर भारतीय पुरस्कार की नेताओं में नेल्सन मंडेला प्रमुख है जो दक्षिण अफ्रिका में नस्लीय भेदभाव और अलगाव उन्मूलन करने के लिए संघर्ष के नेता रहे है। गांधीजी के कभी भी नोबल पुरस्कार नही मिला हालांकि उनका नामांकन 1937 से 1948 के बीच पांच बार हुआ था। जब 1989 में चौदहवे दलाई लामा को यह पुरस्कार दिया गया तब समिति के अध्यक्ष ने इसे **''महात्मा गांधी की स्मृति में श्रद्धांजलि''** कहा था। महात्मा गांधी को फिल्मों, साहित्य और थिएटर में चित्रित किया गया

हैं। गांधीजी ने अपने संपूर्ण जीवन में वाचिक की अपेक्षा कहीं अधिक लिखा है। चाहे वह टिप्पणियों के रूप में हो या पत्रों के रूप में। कई पुस्तकें लिखने के अतिरिक्त उन्होंने कई पत्रिकाऐं भी निकाली और उनमें प्रभूत लेखन किया। उनके महत्वपूर्ण लेखन कार्य को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है।

पत्रिकाएँ – गांधीजी एक सफल लेखक थे। कई दशको तक वे अनेक पत्रों का संपादन कर चुके थे जिसमें हरिजन, इंडियन ओपिनियन, यंग इंडिया आदि सम्मिलित है। जब वे भारत में वापस आए तब उन्होंने ''नवजीवन'' नामक मासिक पत्रिका निकाली। बाद में नवजीवन का प्रकाशन हिन्दी में भी हुआ। इसके अलावा उन्होंने लगभग हर रोज व्यक्तियों और समाचार पत्रों को पत्र लिखे।

प्रमुख प्रकाशित पुस्तकें – गांधीजी द्वारा मौखिक रूप से लिखित पुस्तकें चार है – 1. हिन्द स्वराज, 2. दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास 3. सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), तथा गीता पदार्थ कोश सहित संपूर्ण गीता की टीका। गाँधीजी आमतौर या गुजराती में लिखते थे, परन्तु अपनी किताबों का हिन्दी और अंग्रेजी में भी अनुवाद करते या करवाते थे।

हिंद स्वराज – हिन्द स्वराज (मूलतः हिन्द स्वराज) नामक अल्पकाय ग्रंथरत्न गांधीजी ने इंग्लैड से लौटते समय किल्डोनन कैसिल नामक जहाज पर गुजराती में लिखा था और उनके दक्षिण अफ्रीका पहुंचने पर इंडियन ओपिनियन में प्रकाशित हुआ था। आरम्भ के बाहर अध्याय 11 दिसम्बर 1909 के अंक में और शेष 18 दिसम्बर 1909 में हुआ था और भारत में बम्बई सरकार द्वारा 24 मार्च 1910 को इसके प्रचार पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। बम्बई सरकार की इस कार्यवाही का जवाब गाँधीजी ने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करके दिया। (73) इस पुस्तक के परिशिष्ठ–1 में पुस्तक में प्रतिपादित विषय के अधिक अध्ययन के लिए 20 पुस्तकों की सूची भी दी गयी है जिससे गांधीजी के तत्कालीन अध्ययन के विस्तार की एक झलक भी मिलती है।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास – ''दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहरा' मूलतः गुजराती में 'दक्षिण अफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' नाम से 26 नवम्बर 1923 को, जब वे यरवदा जेल में थे, लिखना शुरू किया 5 फरवरी 1924 को रिहा होने के समय तक उन्होंने प्रथम 30 अध्याय लिख डाले थे। यह इतिहास लेखमाल के रूप में 13 अप्रैल 1924 से 22 नवम्बर 1925 तक नवजीवन में प्रकाशित हुआ। पुस्तक के रूप में इसके 2 खंड क्रमशः 1924 ओर 1925 में छपे। वालजी देसाई किये गये अंग्रेजी अनुवाद का प्रथम

संस्करण अपेक्षित संसाधनों के साथ एस. गणेशन मद्रास ने 1928 में और द्वितीय और तृतीय संस्करण नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद ने 1950 और 1961 में प्रकाशित किया था। (74)

सत्य के प्रयोग – (आत्मकथा) आत्मकथा के मूल गुजराती अध्याय धारावहिक रूप से नवजीवन के अंको में प्रकाशित हुए थे। 29 नवम्बर 1925 के अंक में प्रस्तावना' के प्रकाशन से उसका आरम्भ हुआ और 3 अप्रैल 1929 के अंक में पूर्णाहूति शीर्षक अंतिम अध्याय से उसकी समाप्ति। गुजराती अध्यायों के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी नवजीवन में उनका हिन्दी अनुवाद और यंग इंडिया में उनका अंग्रेजी अनुवाद भी दिया जाता रहा। तदनुसार 'प्रस्तावना' का अनुवाद 'हिन्दी नवजीवन के 3 दिसम्बर 1925 के अंक में प्रकाशित हुआ था। हिन्दी अनुवाद में आत्मकथा का पहला खंड पुस्तक के रूप में पहली बार सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली से सन् 1928 में प्रकाशित हुआ था। गाँधीजी की रचनाओं के स्वत्वाधिकारी नवजीवन ट्रस्ट ने अपनी ओर से उसके हिन्दी अनुवाद का प्रकाश्न सन् 1957 में किया गया था (75)

गीता माता – श्रीमद भागवत गीता से गांधीजी का हार्दिक लगाव प्रायः आजीवन रहा गीता पर उनका चिंतन, मनन लेखन भी लंबे समय तक चलते रहा। संपूर्ण गीता का गुजराती अनुवाद प्रस्तावना सहित, उन्होनें जून 1929 में पूरा किया था और 12 मार्च 1930 को नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद से 'अनासक्ती योग' नाम से उसका पुस्तकाकार प्रकाशन हुआ था उसका हिन्दी, बंगला, मराठी में अनुवाद भी तत्काल हो गया था। अंग्रेजी अनुवाद इसके बाद जनवरी 1931 में संपन्न हुआ था तथा पहले यंग इंडिया के अंक में प्रकाशित हुआ था। (76) गीता के प्रत्येक श्लोक का अनुवाद सामान्य पाठकों के लिए सहज बोधगम्य न होने से गांधी जी ने गीता के प्रत्येक अध्याय के भावों को सामान्य पाठकों के लिये सहज बौधगम्य रूप में लिखा। यरवदा सेंट्रल जेल में 1930 और 1932 में प्रत्येक सप्ताह पत्र के रूप में यह भाव भी नारायणदास गांधी को भेजे जाते रहे ताकि उन्हें आश्रम की प्रार्थना सभाओं में पढ़े जायें (77) इन्हीं का प्रकाशन बाद में पुस्तक रूप में 'गीता बोध' नाम से हुआ। इनके अतिरिक्त भी उन्होने गीता पर प्रार्थना सभाओं में अनेक प्रवचन दिये थे। गीता से गांधी जी का जुड़ाव इस कदर या कि अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन के बावजूद उन्होनें गीता के प्रत्येक पद का अक्षर क्रम से कोश तैयार किया जिसमें पद के

अर्थ के साथ–साथ उनके प्रयोग स्थल भी निर्दिष्ट थे। इन समस्त सामग्रीयों का एकत्र प्रकाशन ही 'गीतामाता' के नाम से हुआ है।

संपूर्ण गांधी वाडमय :–

गांधी जी के लिखित एवं वाचिक समग्र साहित्य के प्रकाशन हेतु भारत सरकार द्वारा एक ग्रंथमाला के प्रकाशन का निर्णय प्रकाशन जगत में निःसंदेह एक ऐतिहासिक कदम रहा है। इस ग्रंथमाला का उद्देश्य गांधी जी ने दिन–प्रतिदिन और वर्ष–प्रति वर्ष जो कुछ कहा और लिखा उस सबको एकत्र करना था। (78) इसी निर्णय के तहत अनेक अधीन विद्वानों के सहयोग से 'संपूर्ण गांधी वाड़मय' का प्रकाशन हुआ। यह प्रकाशन तीन भाषाओं में हुआ अंग्रेजी में पहली बार 100 खंडों में The Collected works of Mahatma Gandhi नाम से तथा संशोधित रूप (pdf) में 98 खंडों में इसका प्रकाशन हुआ है। हिन्दी में 97 खंडों में तथा गुजराती में 70 खंडों में यह प्रकाशकिय महाकुंभ संपन्न हुआ है। 'संपूर्ण गांधी बाड़मय' (हिन्दी) में दो अतिरिक्त वैशिष्टय भी सम्मिलित हैं। एक तो यह की प्रत्येक खंड के अंत में अक्षर क्रम से शब्दानुक्रमणिका दी गयी है जिससे अध्ययन तथा विभिन्न कार्यवश पुनरावलेकन में अत्यन्त सुविधा हो गयी है, तथा दूसरी यह की प्रत्येक खंड के अंत में गांधीजी का तारीखवार जीवन–वृतान्त दिया गया है, जिससे सरलापूर्वक एक नजर में गांधीजी के जीवन की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं एवं बातों की संक्षिप्त जानकारी उपलब्ध हो जाती है। अन्य इसके अतिरिक्त गांधीजी के समग्र साहित्य से चुनिंदा अंशों के संचयन तथा विभिन्न विषयों पर केन्द्रित छोटी–छोटी पुस्तिकाओं का भी विभिन्न नामों से प्रकाशन होते रहा है। इनमें दो संचयन अति प्रसिद्ध तथा अत्युप्रयोग रहे हैं और इन दोनों का प्रकाशन भी गांधी जी के जीवन काल में ही (अंग्रेजी`मं, 1945 व 1947 में) हो गया था।

(1) महात्मा गांधी के विचार से आर.के. प्रभु एवं यू.आर.राव (नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली)

(2) मेरे सपनों का भारत स. आर.के.प्रभु (नव जीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद) गांधी जी ने जॉन रस्किन की अन्टू दिस लास्ट (Un to this last) की गुजराती में व्याख्या भी की है। (79) अंतिम निबंन्ध को उनका अर्थशास्त्र से संबंधित कार्यक्रम कहा जा सकता है उन्होने शाकाहार, भोजन, स्वास्थ, धर्म और सामाजिक सुधार पर भी विस्तार से लिखा है।

सन् 2000 में गांधी जी के संपूर्ण कार्य (Cwmg) का संशोधित संस्करण विवादों के घेरे में आ गया क्योंकि गांधी के अनुयायियों ने सरकार पर राजनीतिक उद्देश्यों के लिये परिवर्तन शामिल करने का आरोप लगाया। (80)

गांधी पर पुस्तकें :– कई जीवनी लेखकों ने गांधी के जीवन–वर्णन का कार्य किया है। उनमें से दो कार्य व्यापक एवं अपने आप में उदाहरण है।

(1) MAHATMA (in 8 Volumes) By D.G. Tendulkar (First Edition : Janaurg 1954) The Publications Division, Gov. of India New Delhi)

(2) MAHATMA GANDHI (In 10 Volumes) (The Early Phase to last Phase) by Pyarelal & Sushila Nagar (Navajivan Publishing House, Ahmedabad)

इस दूसरे महाग्रंथ के अंतिम खण्ड (Last Phase) का चार खंडों में हिन्दी अनुवाद महात्मा गांधी : पूर्णाहुति के नाम से प्रकाशित है।

कर्नल जी.बी. अमेरिकी सेना के सिंह ने कहा कि अपनी तथ्यात्मक शोध पुस्तक ''देवत्व के मुखौटे के पीछे गांधी'' (गांधी : बिहाइंड द मास्क ऑफ द्विविनिटी) के मूल भाषण और लेखन के लिए उन्होने अपने 20 वर्ष लगा दिए। (81)

संदर्भ :–

(73) संपूर्ण गांधी वाडमय, खंड 10 प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पुनर्मुद्रित संस्करण – 1995 पृष्ठ 6

(74) संपूर्ण गांधी वाडमय खंड 29 प्रकाशन विभाग भारत सरकार संस्करण 1969 पृष्ठ 1 (विषय सूची के बाद)

(75) सम्पूर्ण गांधी वाडमय खंड–39 पूर्ववत, पुर्नमुद्रित संस्करण – 1996 पृष्ठ 1 (विषय सूची के बाद)

(76) संपूर्ण गांधी वाडमय, खंड 41 पूर्ववत संस्करण 1971 पृष्ठ–92

(77) संपूर्ण गांधी वाडमय खंड 49, पूर्ववत् संस्करण 1973 पृष्ठ–110

(78) संपूर्ण गांधी वाडमय खंड 1, पूर्ववत, प्रथम संस्करण 1958 पृष्ठ–12 (भूमिका)

(79) सपूर्ण गांधी वाडमय खंड 1, पूर्ववत, प्रथम संस्करण 1958 पृष्ठ–12 (भूमिका)

(80) महात्मा गांधी के संचित लेख (सी.डब्लू. एम.जी.) विवाद गांधी सेवा

— 00 —

महात्मा ज्योतिबा फुले

महात्मा ज्योतिराव गोविदराव फुले (11 अप्रैल 1827–28 नवम्बर 1890) एक भारतीय समाज सुधारक, समाज प्रबोधक, विचारक, समाजसेवी, लेखक, दार्शनिक तथा क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। इन्हें ''महात्मा फुले'' एवं ज्योतिबा फुले नाम से भी जाना जाता है (2) (3) सितम्बर 1873 में इन्होने महाराष्ट्र के 'सत्य शोधक समाज' नामक संस्था का गठन किया। महिलाओं व पिछड़े और अछूतों के उत्थान के लिये इन्होने अनेक कार्य किये। समाज के सभी वर्गो को शिक्षा प्रदान करने के ये प्रबल समर्थक थे। वे भारतीय समाज में प्रचलित जाति पर आधारित विभाजन व भेदभाव के विरूद्ध थे। (4)

व्यक्तिगत जानकारी

अन्य नाम	महात्मा फुले, ज्योतिबा फुले, जोतिराव फुले
जन्म	11 अप्रैल 1827 खानवाड़ी (1) पुणे, ब्रिटिश भारत (अब महाराष्ट्र में)
मृत्यु	28 नवम्बर 1890 (उम्र 63 वर्ष) पुणे ब्रिटिश भारत
जीवन साथी	सावित्रीबाई फुले
माता/पिता	गोविन्दराव फुले/माता चिमनाबाई फुले उनका मूल नाम 'गोरहे' था

वृत्तिक जानकारी

मुख्य विचार	नीतिशास्त्र, धर्म, मानवतावाद
प्रभाव	थॉमस पेन

इनका मूल उद्देश्य स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार प्रदान करना, बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन करना रहा है। अपना संपूर्ण जीवन उन्होने स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करने में, स्त्रियों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने में व्यतीत किया 19वीं सदी में स्त्रियों को शिक्षा नहीं दी जाती थी। ज्योतिबा महिलाओं को स्त्री पुरूष भेदभाव से

बचाना चाहते थे। (5) उन्होने कन्याओं के लिए भारत देश की पहली पाठशाला पुणे में बनाई थी। स्त्रियों की तत्कालीन दयनीय स्थिति से फुले बहुत व्याकुल और दुःखी होते थे इसलिए उन्होने दृढ़ निश्चय किया कि वे समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाकर ही रहेंगे। उन्होने अपनी धर्मपत्नी 'सांवित्रीबाई फुले' को स्वयं शिक्षा प्रदान की। सांवित्रीबाई फुले भारत की प्रथम महिला अध्यापिका थी। (6) महात्मा ज्योतिबा फुले का जन्म 1827 में ई. में पुणे में हुआ था एक वर्ष की अवस्था में ही इनकी माता का निधन हो गया। इनका लालन–पालन एक बायी ने किया। उनका परिवार कई पीढ़ी पहले सतारा से पुणे आकर फुलों के हार, गजरे आदि बनाने का काम करने लगा था। इसलिए मालि के काम में लगे ये लोग 'फुले' के नाम से जाने जाते थे ज्योतिबा ने कुछ समय तक मराठी में अध्ययन किया, बीच में पढ़ाई छुट गई और बाद में 21 वर्ष की उम्र में अंग्रेजी की सातवी कक्षा की पढ़ाई पूरी की। इनका विवाह 1840 में सांवित्रीबाई से हुआ था, जो बाद में स्वयं एक प्रसिद्ध समाज सेवी और शिक्षिका बनी, इन्हें ज्योतिबा ने ही पढ़ाया शिक्षा दी दलित व स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में दोनों पति–पत्नी ने मिलकर काम किया वह एक कर्मठ और समाज सेवी की भावना रखने वाले व्यक्ति थे। (7)

कार्यक्षेत्र :– उन्होने विधवाओं और महिलाओं के कल्याण के लिए बहुत काम किया इसके साथ ही किसानों की हालात सुधारने और उनके कल्याण के लिए भी काफी प्रयास किये। स्त्रियों की दशा सुधारने और उनकी शिक्षा के लिये ज्योतिबा ने 1848 में एक स्कुल पूणा में खोला। यह इस कार्य के लिये देश में पहला विद्यालय था। लड़कियों को पढ़ाने के लिये अध्यापिका नही मिली तो उन्होने कुछ दिन स्वयं यह काम करके अपनी पत्नी सांवित्रीबाई फुले को इस योग्य बना दिया। समाज के लोगों ने उनके इस काम में आरम्भ से बाधा डालने की कोशिश की, किन्तु जब फुले आगे बढ़ते ही गए तो उनके पिता पर दबाव डालकर पति–पत्नी को घर से निकलवा दिया इससे कुछ समय के लिये उनका काम रूक अवश्य गया पर शीघ्र ही उन्होने एक के बाद एक बालिकाओं के तीन स्कूल खोल दिए। (8)

विद्यालय की स्थापना :– ज्योतिबा की संत–महात्माओं को जीवनियाँ पढ़ने में बड़ी रूचि थी। उन्हें ज्ञान हुआ कि जब भगवान के सामने सब नर नारी समान है तो उनमें ऊँच–नीच का भेद क्यों होना चाहिए। स्त्रियों की दशा सुधारने और उनकी शिक्षा के लिये ज्योतिबा ने

1848 में एक स्कूल खोला यह देश में पहला विद्यालय था। अध्यापन कार्य के लिये उन्होने अपनी पत्नि को पढ़ाकर इस कार्य के लिये नियुक्त किया कुछ सामाजिक तत्वों के विरोधीयों के बाद भी यह कार्य उन्होने सतत चालू रखाा और कार्य की उन्नति की। (10)

निर्धन तथा निर्बल वर्ग को न्याय दिलाने के लिए ज्योतिबा ने 'सत्यशोधक समाज' 1873 में स्थापित किया। उनकी समाज सेवा देखकर 1888 ई. मुंबई की एक विशाल सभा में उन्हें 'महात्मा' की उपाधि दी। ज्योतिबा ने ब्राह्मण पुरोहित के बिना ही विवाह–संस्कार आरम्भ कराया और इसे मुंबई उच्च न्यायालय से भी मान्यता मिली। वे बाल–विवाह विरोधी और विधवा विवाह के समर्थक थे। अपने जीवन काल में उन्होने कई पुस्तके लिखी गुलामगीरी, तृतीयरत्न, छत्रपति शिवाजी राजा भोसले का पोवाड़ा किसान का कोड़ा (शेत कन्याचा आसूड), अछुतों की कैफियत, महात्मा ज्योतिबा व उनके संगठन के संघर्ष के कारण सरकार ने 'एग्रीकल्चर एक्ट' पास किया। धर्म, समाज और परम्पराओं के सत्य को सामने लाने हेतु उन्होने अनेक पुस्तके भी लिख। (11)

ब्रिटिश सरकार द्वारा उपाधि :– 1883 में स्त्रीयों को शिक्षा प्रदान कराने के महान कार्य के लिये उन्हें तत्कालीन ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा ''स्त्री शिक्षा के आद्यजनक'' कहकर गौरव किया।

संदर्भ :–

1. Garge, S.M. Editor Bhartiya Samajvigyan Kosh, Vol. III, Page No. 321, Published by Samajivigyan Mandal, Pune.

2. "Remembering Jyotirao Phule : The Pioneer of Girl's Education in India" N.D.T.V..com. अभिगमन तिथि 2020.12.18.

3. "Mahatma Jyotirao Phule : Reformer for ahead of his time". Hindustan Times (अंग्रेजी में) 2019.06.27. अभिगमन तिथि 2020.12.18.

4. ''महात्मा ज्योतिबा फुले'' Hindi Webdunia मूल से 31 जुलाई 2019 को

5. कलीम अजीज (11 अप्रैल 2020) ''ज्योतिराव फुले की महात्मा बनने की कहानी'' (पुरालेखित deccanquest.com. मूल से 10 जनवरी 2022 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 10 जनवरी, 2022 laccess --dates. 1 date में तिथि प्राचल का मान जांचें (मदद)।

6. पारिक, मोहित (11 अप्रैल 2018). ''ज्योतिबा फुले का आज जन्मदिन ब्राह्मणवाद के थे विरोधी'' आज तक, अभिगमन तिथि 10 दिसम्बर 2019.

7. Jyotiba Phule महिलाओं और दलितों के लिए अपना जीवन समर्पित करने वाले ज्योतिबा फुले से जुड़ी 10 बातें NDTV India.

8. सामाजिक समानता दलित उत्थान एवं महिला शिक्षा के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले'' Punjab Keshri.

9. कलीम, अजीज (3 जनवरी 2021) ''सांवित्रीबाई फुले को कितना जानते है आप''? deccanquest.com. मूल से 10 जनवरी 2022 को पुरालेखित अभिगमत तिथि 10 जनवरी 2022.

10. पारेख, मोहित (2018) ''सावित्रीबाई फुले ज्योतिबा फुले जी की धर्मपत्नी समाज सेविका थी उन्होने भारत देश में सबसे पहली पाठशाला महिलाओं के लिए खाली थी।'' आजतक अभिगमन तिथि 10 दिसम्बर 2019.

11. Webdunia ''महात्मा ज्योतिबा फुले'' Hindi Webdunia.com. मूल से 31 जुलाई 2019 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 2020.04.11.

— 000 —

तृतीय अध्याय
(भारत के महान ऋषियों का परिचय)

क्र.	अध्याय	पृष्ठ क्र.
1.	गुरु वशिष्ठ	1–5
2.	ऋषि विश्वामित्र	6–26
3.	ऋषि कश्यप	27–34
4.	ऋषि अत्रि	35–47
5.	ऋषि भारद्वाज	48–56
6.	ऋषि गौतम	57–70
7.	जम्दग्नि ऋषि	71–76

गुरु वशिष्ठ

(वैदिक काल के एक महान ऋषि)

वेद, इतिहास, पुराणों में गुरु वशिष्ठ के अनगिनत कार्यों का उल्लेख किया गया है। पुराणों में महर्षि वशिष्ठ जी की उत्पत्ति का वर्णन कई रूपों में किया गया है। कहीं ये ब्रह्मा जी के मानस पुत्र तो कहीं मित्रावरुण के पुत्र और कहीं अग्निपुत्र कहे गये हैं।

पुराणों के अनुसार, जब इनके पिता ब्रह्मा जी ने इन्हें मृत्युलोक में जाकर सृष्टि का विस्तार करने व सूर्यवंश का पौरोहित्य कर्म करने की आज्ञा दी, तब इन्होंने पौरोहित्य कर्म को अत्यन्त निन्दित कार्य मानकर उसे करने से मना कर दिया। इस पर ब्रह्मा जी ने कहा– हे वशिष्ठ, सूर्यवंश में ही आगे चलकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम अवतार लेंगे। यह पौरोहित्य कर्म ही तुम्हारी मुक्ति का मार्ग बनेगा।

ब्रह्मा जी द्वारा मार्ग दिखाने के बाद वशिष्ठ जी ने धरा धाम पर मानव–शरीर में आना स्वीकार किया। गुरु वशिष्ठ ने सूर्यवंश का पौरोहित्य कार्य करते हुए कई लोक कल्याणकारी कार्यों को सम्पन्न किया। इन्हीं के उपदेश देने के बाद भागीरथ ने प्रयास करके लोक कल्याणकारी गंगा नदी को धरती पर लाए थे।

महाराज दशरथ की निराशा में आशा का संचार करने वाले गुरु वशिष्ठ ही थे। इन्हीं की सलाह से महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया था, जिसके बाद प्रभु श्री राम का अवतार हुआ। प्रभु श्री राम को शिष्य के रूप में प्राप्त करके गुरु वशिष्ठ का पुरोहित जीवन सफल हो गया।

गुरु वशिष्ठ क्षमा की प्रतिमूर्ति थे। कहते हैं कि एक बार विश्वामित्र वशिष्ठ जी के आश्रम में आए। गुरु वशिष्ठ ने कामधेनु के सहयोग से विश्वामित्र का राजोचित सत्कार किया। कामधेनु की अलौकिक क्षमता को देख विश्वामित्र ने गुरु वशिष्ठ से उस गाय को अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की।

कामधेनु गुरु वशिष्ठ जी के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महत्त्वपूर्ण साधन थी, इस वजह से वशिष्ठ जी ने उसे देने से इनकार कर दिया। इस पर विश्वामित्र ने कामधेनु को बलपूर्वक ले जाना चाहा, जिसके बाद वशिष्ठ जी के संकेत पर कामधेनु ने अपार सेना खड़ी कर दी। इतनी विशाल सेना देख विश्वामित्र को वहां से खाली हाथ लौटने पर विवश होना पड़ा

गुरु वशिष्ठ से बदला लेने के लिए विश्वामित्र ने भगवान शंकर की तपस्या की और उनसे दिव्यास्त्र प्राप्त किया। दिव्यास्त्र प्राप्त करने के बाद विश्वामित्र ने गुरु वशिष्ठ

पर दोबारा से आक्रमण कर दिया, लेकिन वशिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने उनके सारे दिव्यास्त्र विफल हो गए। गुरु वशिष्ठ से हारने के बाद विश्वामित्र तपस्या के लिए वन चले गए। जहां उनकी अपूर्व तपस्या से सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए।

सभी ने उन्हें ब्रह्मर्षि मान लिया, लेकिन गुरु वशिष्ठ के ब्रह्मर्षि कहे बिना वे ब्रह्मर्षि नहीं कहला सकते थे। विश्वामित्र ने एक बार फिर से वशिष्ठ जी को मारने की योजना बनाई और उनके आश्रम में जाकर छुप गए। इस दौरान उन्होंने वशिष्ठ जी के मुख से अपनी अपूर्व तप की प्रशंसा सुनी, जिसके बाद विश्वामित्र को अपनी गलती का अहसास हुआ और वे वशिष्ठ जी के शरण में चले गए। गुरु वशिष्ठ ने उन्हें गले से लगाया और ब्रह्मर्षि की उपाधि से विभूषित किया।

गुरु वशिष्ठ के महत्वपूर्ण योगदान

महाराजा दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने की सलाह गुरु वशिष्ठ जी ने ही दी थी, जिसके बाद भगवान राम अवतरित हुए थे।

मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम का गुरु होने का सौभाग्य वशिष्ठ जी को प्राप्त है।

मां गंगा को धरती पर लाने वाले भागीरथ जी को उपदेश देने वाले भी गुरु वशिष्ठ जी ही थे।

वशिष्ठ जी ने ही दिलीप को नंदिनी की सेवा की शिक्षा दी थी, जिससे रघु जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई थी।

गुरु वशिष्ठ से जुड़े रहस्य – कहते हैं महाराज दशरथ जी के सभी पुत्रों का नामकरण गुरु वशिष्ठ ने ही किए थे। महाभारत में गुरु वशिष्ठ जी के सूत्र कुछ इस तरह जुड़े हैं मानों वे ही धृतराष्ट्र व पाण्डु के आदि–पूर्वज हैं।

बहुत से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं दलित समाज के लोग वशिष्ठ गोत्र लगाते हैं। वे सभी वशिष्ठ कुल के हैं। वशिष्ठ नाम से कालांतर में कई ऋषि हो गए हैं। एक वशिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र हैं, दूसरे इक्ष्‍वाकु के काल में हुए, तीसरे राजा हरिशचंद्र के काल में हुए और चौथे राजा दिलीप के काल में, पांचवें राजा दशरथ के काल में

हुए और छठवें महाभारत काल में हुए। पहले ब्रह्मा के मानस पुत्र, दूसरे मित्रावरुण के पुत्र, तीसरे अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं। पुराणों में कुल बारह वशिष्ठों का जिक्र है।

हालांकि विद्वानों के अनुसार कहते हैं कि एक वशिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र हैं, दूसरे इक्क्षवाकुवंशी त्रिशुंकी के काल में हुए जिन्हें वशिष्ठ देवराज कहते थे। तीसरे कार्तवीर्य सहस्त्रबाहु के समय में हुए जिन्हें वशिष्ठ अपव कहते थे। चौथे अयोध्या के राजा बाहु के समय में हुए जिन्हें वशिष्ठ अथर्वनिधि (प्रथम) कहा जाता था। पांचवें राजा सौदास के समय में हुए थे जिनका नाम वशिष्ठ श्रेष्ठभाज था। कहते हैं कि सौदास ही सौदास ही आगे जाकर राजा कल्माषपाद कहलाए। छठे वशिष्ठ राजा दिलीप के समय हुए जिन्हें वशिष्ठ अथर्वनिधि (द्वितीय) कहा जाता था। इसके बाद सातवें भगवान राम के समय में हुए जिन्हें महर्षि वशिष्ठ कहते थे और आठवें महाभारत के काल में हुए जिनके पुत्र का नाम पराशर था। इनके अलावा वशिष्ठ मैत्रावरुण, वशिष्ठ शक्ति, वशिष्ठ सुवर्चस जैसे दूसरे वशिष्ठों का भी जिक्र आता है। फिर भी उक्त सभी पर शोध किए जाने की आवश्यकता है। वेदव्यास की तरह वशिष्ठ भी एक पद हुआ करता था।

* वशिष्ठ जो ब्रह्मा के पुत्र थे उनके नाम से ही कुल परंपरा का प्रारंभ हुआ तो आगे चलकर उनके कुल के अन्य वेदज्ञों लोगों ने भी अपना नाम वशिष्ठ रखकर उनके कुल की प्रतिष्ठा को बरकरार रखा। पहले वशिष्ठ की मुख्यत: दो पत्नियां थीं। पहली अरुंधती और दूसरी उर्जा। उर्जा प्रजापति दक्ष की तो अरुंधती कर्दम ऋषि की कन्या थी। प्रारंभिक वशिष्ठ शंकर भगवान के साढू तथा सतीदेवी के बहनोई थे। वशिष्ठ ने ही श्राद्धदेव मनु (वैवस्तवत मनु) को परामर्ष देकर उनका राज्य उनके पुत्रों को बटवाकर दिलाया था।

* वशिष्ठ का कामधेनु और सूर्यवंश की पुरोहिताई के कारण ऋषि विश्वामित्र से झगड़ा हुआ था। विश्वामित्र अत्रिवंशी ययाति कुल से थे। वेद वक्ताओं में वशिष्ठ ऋग्वेद के 7 वे मण्डल के प्रणेता हैं तथा 9वें मंडल में भी इनके वंशधरों

के अनेक मंत्र हैं। इक्ष्वाकु ने 100 रात्रि का कठोर तप करके सूर्य देवता की सिद्धि प्राप्त थी की और वशिष्ठ को गुरु बनाकर उनके उपदेश से अपना पृथक राज्य और राजधानी अयोध्यापुरी स्थिपित कराई और वे प्राय: वहीं रहने लगे। प्रथम वशिष्ठ ही पुष्कर में प्रजापति ब्रह्मा के यज्ञ के आचार्य रहे थे।

*वशिष्ठ राम के काल में हुए जिन्होंने अयोध्या के राजपुरोहित के पद पर कार्य किया था। उन्होंने ही दशरथ को पुत्रेष्ठि यज्ञ कराया, श्री रामजी को जातकर्म चौल, यज्ञोपवीत विवाह कराया और राम की राज्याभिषेक की पूरी व्यवस्था इन्हीं के द्वारा हुई।

वशिष्ठ महाभारत के काल में हुए थे। प्रथम वशिष्ठ की पत्नीं अरुंधती से उत्पन्न पुत्रों के कुल में ही आगे चलकर महाभारत के काल में एक और वशिष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए ऋषि थे जिनके पुत्र का नाम शक्ति मुनि और पौत्र का नाम पराशर था। पराशर के पुत्र महाभारत लिखने वाले मुनि वेद व्यास थे।

वशिष्ठ ऋषि की संपूर्ण जानकारी वायु, ब्रह्मांड एवं लिंग पुराण में मिलती है। वशिष्ठ कुल ऋषियों एवं गोत्रकारों की नामावली मत्स्य पुराण में दर्ज है। इस वंश में क्रमश: प्रमुख लोग हुए– 1. देवराज, 2. आपव, 3. अथर्वनिधि, 4. वारुणि, 5. श्रेष्ठभाज्, 6. सुवर्चस्, 7. शक्ति और 8. मैत्रावरुणि। एक अल्प शाखा भी है, जो जातुकर्ण नाम से है।

* वशिष्ठ वंश के रचित अनेक ग्रन्थ अभी उपलब्ध हैं। जैसे वशिष्ठ संहिता, वशिष्ठ कल्प, वशिष्ठ शिक्षा, वशिष्ठ तंत्र, वशिष्ठ पुराण, वशिष्ठ स्मृति, वशिष्ठ श्राद्ध कल्प, आदि इनमें प्रमुख हैं।

***

विश्वामित्र

(वैदिक काल के एक महान ऋषि)

विश्वामित्र वैदिक काल के विख्यात ऋषि (योगी) थे। ऋषि विश्वामित्र बड़े ही प्रतापी और तेजस्वी महापुरुष थे। ऋषि धर्म ग्रहण करने के पूर्व वे बड़े पराक्रमी और प्रजावत्सल नरेश थे!

विश्वमित्र जी को गायत्री मन्त्र का दृष्टांत हुआ। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में उपस्थित गायत्री मंत्र की रचना विश्वामित्र द्वारा की गई थी।

विभिन्न स्थानों पर उल्लेख –

रामायण – मारीच और सुवाहु, रावण के कहने पर विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डाल कर उसे संपूर्ण होने से रोकते थे। वे दशरथ के पास मदद के लिए राम को मांगने आए। जब दशरथ ने 16 वर्ष के राम को भेजने से मना किया, तो विश्वामित्र ने कहा कि वीर कुशिक के सौ (100) पुत्र राम की रक्षा करेंगे।

क्षत्रिय राजा – इस लेख को विकिफ़ाइ करने की आवश्यकता हो सकती है ताकि यह विकिपीडिया के गुणवत्ता मानकों पर खरा उतर सके।

प्रजापति के पुत्र कुश, कुश के पुत्र कुशनाभ और कुशनाभ के पुत्र राजा गाधि थे। विश्वामित्र जी उन्हीं गाधि के पुत्र थे। विश्वामित्र शब्द विश्व और मित्र से बना है जिसका अर्थ है– सबके साथ मैत्री अथवा प्रेम। विश्वामित्र के पिता गाधि ने जब अपनी आयु को ज्यादा देखकर उन्होंने वानप्रस्थ जाने का निर्णय किया, और अपने पुत्र विश्वामित्र को अपनी राज गद्दी पर राजतिलक कर दिया। वह खुद वानप्रस्थ को चले गए। उसके बाद विश्वामित्र ने बहुत अच्छे से राजकाज को सम्भला, उनकी प्रजा भी बहुत खुश थी। एक समय वह अपनी पत्नी के साथ सरक पासा (एक तरह का शतरंज) खेल रहे थे। उस खेल में उनकी पत्नी की विजय होने पर उनकी पत्नी हंसने लगी। जिसका विश्वामित्र जी को यह अच्छा नही लगा तो गुस्से के कारण सरक पासो (यानी गोटी) को तुरंत तोड़ कर फेंक दिया। और वह अपने राजदरबार में गए वहां उनके भाट व राज्य सभा के मंत्रियों द्वारा जय जयकार करने लगे। तो विश्वामित्र जी का एक ही प्रश्न किया कि मेरी जय–जयकार किस लिए की जा रही है। जबकि अभी तक मेरे द्वारा कोई भी जय जयकार करने वाला कोई कार्य ही नहीं किया है । उसी समय उन्होंने आदेश दिया कि अपने राज्य के जितने भी बारह वर्ष से अधिक के बच्चे और जवान व्यक्ति व निपुण सैनिक सभी सेना के साथ युद्ध के लिए मेरे साथ चलें । मैं अपने

राज्यविस्तार करने का निर्णय कर चुका हूँ । अब सभी बारह वर्ष के बच्चे और जवान व्यक्ति निपुण सैनिक युद्ध मे चले गए और बारह वर्ष तक वह अपने राज्य का विस्तार करते रहे । जिस राजा ने अपना आत्मसमर्पण किया तो ठीक नहीं तो युद्ध द्वारा जीत कर बहुत से राजाओं के राज्य अपने अधीन कर लिए। फिर वह अपने राज्य की तरफ वापिस आते समय श्री वशिष्ठ ऋषि के आश्रम के नजदीक में सेना सहित शिविर डालकर रुके । श्री ऋषि वशिष्ठ के शिष्यों ने ऋषिवर को सूचना दी कि अपने राजा विश्वामित्र जी अपने आश्रम के नजदीक में शिविर डालकर रुके हैं और उनके साथ बहुत बड़ी सेना भी आकर रूकी है। ऋषि ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि विश्वामित्र जी को अतिथि ग्रहण के लिए बुलाएं । विश्वामित्र जी ने यह निमंत्रण ग्रहण किया । और एक दिन राजा विश्वामित्र अपने कुछ सैनिकों को लेकर श्री वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में गये। विश्वामित्र जी उन्हें प्रणाम करके वहीं बैठ गये। वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र जी का यथोचित आदर सत्कार किया और उनसे कुछ दिन आश्रम में ही रह कर आतिथ्य ग्रहण करने का अनुरोध किया। इस पर यह विचार करके कि मेरे साथ विशाल सेना है और सेना सहित मेरा आतिथ्य करने में वशिष्ठ जी को कष्ट होगा, विश्वामित्र जी ने नम्रतापूर्वक अपने जाने की अनुमति माँगी किन्तु वशिष्ठ जी के अत्यधिक अनुरोध करने पर थोड़े दिनों के लिये उनका आतिथ्य स्वीकार कर लिया।

वशिष्ठ जी ने नंदिनी गौ का आह्वान करके विश्वामित्र तथा उनकी सेना के लिये छः प्रकार के व्यंजन तथा समस्त प्रकार के सुख सुविधा की व्यवस्था कर दिया। वशिष्ठ जी के आतिथ्य से विश्वामित्र और उनके साथ आये सभी लोग बहुत प्रसन्न हुये।

नंदिनी गौ का चमत्कार देखकर विश्वामित्र ने उस गौ को वशिष्ठ जी से माँगा पर वशिष्ठ जी बोले राजन! यह गौ मेरा जीवन है और इसे मैं किसी भी कीमत पर

किसी को नहीं दे सकता।

वशिष्ठ जी के इस प्रकार कहने पर विश्वामित्र ने बलात् उस गौ को पकड़ लेने का आदेश दे दिया और उसके सैनिक उस गौ को डण्डे से मार मार कर हाँकने लगे। नंदिनी गौ ने क्रोधित होकर उन सैनिकों से अपना बन्धन छुड़ा लिया और वशिष्ठ जी के पास आकर विलाप करने लगी। वशिष्ठ जी बोले कि हे नंदिनी! यह राजा मेरा अतिथि है इसलिये मैं इसको शाप भी नहीं दे सकता और इसके पास विशाल सेना होने के कारण इससे युद्ध में भी विजय प्राप्त नहीं कर सकता। मैं स्वयं को विवश अनुभव कर रहा हूँ। उनके इन वचनोंको सुन कर नंदिनी ने कहा कि हे ब्रह्मर्षि! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं एक क्षण में इस क्षत्रिय राजा को उसकी विशाल सेनासहित नष्ट कर दूँगी। कोई उपाय न देख कर वशिष्ठ जी ने नंदिनी को अनुमति दे दी।

आज्ञा पाते ही नंदिनी ने योगबल से अत्यंत पराक्रमी मारक शस्त्रास्त्रों से युक्त पराक्रमी योद्धाओं को उत्पन्न किया जिन्होंने शीघ्र ही शत्रु सेना को गाजर मूली की भाँति काटना आरम्भ कर दिया। अपनी सेना का नाश होते देख विश्वामित्र के सौ पुत्र अत्यन्त कुपित हो वशिष्ठ जी को मारने दौड़े। वशिष्ठ जी ने उनमें से एक पुत्र को छोड़ कर शेष सभी को भस्म कर दिया।

अपनी सेना तथा पुत्रों के नष्ट हो जाने से विश्वामित्र बड़े दुःखी हुये। अपने बचे हुये पुत्र को राज सिंहासन सौंप कर वे तपस्या करने के लिये हिमालय की कन्दराओं में चले गये। कठोर तपस्या करके विश्वामित्र जी ने महादेव जी को प्रसन्न कर लिया ओर उनसे दिव्य शक्तियों के साथ सम्पूर्ण धनुर्विद्या के ज्ञान का वरदान प्राप्त कर लिया।

महर्षि वशिष्ठ से प्रतिशोध – इस प्रकार सम्पूर्ण धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त करके विश्वामित्र मिलने के लिये वशिष्ठ जी के आश्रम में पहुँचे। उन्हें धनुष विद्या की

कुछ चर्चा किये इसके बाद वशिष्ठ जी ने भी अपना धनुष संभाल लिया और बोले कि मैं तेरे सामने खड़ा हूँ, तू मुझ पर वार कर। क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने एक के बाद एक आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, रुद्रास्त्र, इन्द्रास्त्र तथा पाशुपतास्त्र एक साथ छोड़ दिया जिन्हें वशिष्ठ जी ने अपने मारक अस्त्रों से मार्ग में ही नष्ट कर दिया। इस पर विश्वामित्र ने और भी अधिक क्रोधित होकर मानवास्त्र, मोहनास्त्र, गान्धर्वास्त्र, जूंभणास्त्र, दारणास्त्र, वज्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, पिनाक धनुष , दण्डास्त्र, पैशाचास्त्र , क्रौंचास्त्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्यास्त्र, मंथनास्त्र , कंकाल, मूसल, विद्याधर, कालास्त्र आदि सभी अस्त्रों का प्रयोग कर डाला। वशिष्ठ जी ने उन सबको नष्ट करके उन पर ब्रह्माण्ड अस्त्र छोड़ दिया। ब्रह्माण्ड अस्त्र के भयंकर ज्योति और गगनभेदी नाद से सारा संसार पीड़ा से तड़पने लगा। सब ऋषि–मुनि उनसे प्रार्थना करने लगे कि आपने विश्वामित्र को परास्त कर दिया है। अब आप ब्रह्माण्ड अस्त्र से उत्पन्न हुई ज्वाला को शान्त करें। इस प्रार्थाना से द्रवित होकर उन्होंने ब्रह्माण्ड अस्त्र को वापस बुलाया और मन्त्रों से उसे शान्त किया।

इस प्रकार विचार करके वे अपनी पत्नी सहित दक्षिण दिशा की और चल दिये। उन्होंने तपस्या करते हुये अन्न का त्याग कर केवल फलों पर जीवनयापन करना आरम्भ कर दिया। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने उन्हें राजर्षि का पद प्रदान किया। इस पद को प्राप्त करके भी, यह सोचकर कि ब्रह्मा जी ने मुझे केवल राजर्षि का ही पद दिया महर्षि–देवर्षि आदि का नहीँ, वे दुःखी ही हुये। वे विचार करने लगे कि मेरी तपस्या अब भी अपूर्ण है। मुझे एक बार फिर से घोर तपस्या करना चाहिये।

त्रिशंकु की स्वर्गयात्रा – इस बीच इक्ष्वाकु वंश में त्रिशंकु नाम के एक राजा हुये। त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे अतः इसके लिये उन्होंने वशिष्ठ जी अनुरोध

किया किन्तु वशिष्ठ जी ने इस कार्य के लिये अपनी असमर्थता जताई। त्रिशंकु ने यही प्रार्थना वशिष्ठ जी के पुत्रों से भी की,जो दक्षिण प्रान्त में घोर तपस्या कर रहे थे। वशिष्ठ जी के पुत्रों ने कहा कि जिस काम को हमारे पिता नहीं कर सके तू उसे हम से कराना चाहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तू हमारे पिता का अपमान करने के लिये यहाँ आया है। उनके इस प्रकार कहने से त्रिशंकु ने क्रोधित होकर वशिष्ठ जी के पुत्रों को अपशब्द कहे। वशिष्ठ जी के पुत्रों ने रुष्ट होकर त्रिशंकु को चाण्डाल हो जाने का शाप दे दिया।

शाप के कारण त्रिशंकु चाण्डाल बन गये तथा उनके मन्त्री तथा दरबारी उनका साथ छोड़कर चले गये। फिर भी उन्होंने सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा का परित्याग नहीं किया। वे विश्वामित्र के पास जाकर बोले अपनी इच्छा को पूर्ण करने का अनुरोध किया। विश्वामित्र ने कहा तुम मेरी शरण में आये हो। मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा। इतना कहकर विश्वामित्र ने अपने उन चारों पुत्रों को बुलाया जो दक्षिण प्रान्त में अपनी पत्नी के साथ तपस्या करते हुये उन्हें प्राप्त हुये थे और उनसे यज्ञ की सामग्री एकत्रित करने के लिये कहा। फिर उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाकर आज्ञा दी कि वशिष्ठ के पुत्रों सहित वन में रहने वाले सब ऋषि–मुनियों को यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण दे आओ।

सभी ऋषि–मुनियों ने उनके निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया किन्तु वशिष्ठ जी के पुत्रों ने यह कहकर उस निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया कि जिस यज्ञ में यजमान चाण्डाल और पुरोहित क्षत्रिय हो उस यज्ञ का भाग हम स्वीकार नहीं कर सकते। यह सुनकर विश्वामित्र जी ने क्रुद्ध होकर उन्हें कालपाश में बँध कर यमलोक जाने और सात सौ वर्षों तक चाण्डाल योनि में विचरण करने का शाप दे दिया और यज्ञ की तैयारी में लग गये।

विश्वामित्र के शाप से वशिष्ठ जी के पुत्र यमलोक चले गये। वशिष्ठ जी के पुत्रों के

परिणाम से भयभीत सभी ऋषि मुनियों ने यज्ञ में विश्वामित्र का साथ दिया। यज्ञ की समाप्ति पर विश्वामित्र ने सब देवताओं को नाम ले लेकर अपने यज्ञ भाग ग्रहण करने के लिये आह्वान किया किन्तु कोई भी देवता अपना भाग लेने नहीं आया। इस पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने अर्ध्य हाथ में लेकर कहा कि हे त्रिशंकु! मैं तुझे अपनी तपस्या के बल से स्वर्ग भेजता हूँ। इतना कह कर विश्वामित्र ने मन्त्र पढ़ते हुये आकाश में जल छिड़का और राजा त्रिशंकु शरीर सहित आकाश में चढ़ते हुये स्वर्ग जा पहुँचे। त्रिशंकु को स्वर्ग में आया देख इन्द्र ने क्रोध से कहा कि रे मूर्ख! तुझे तेरे गुरु ने शाप दिया है इसलिये तू स्वर्ग में रहने योग्य नहीं है। इन्द्र के ऐसा कहते ही त्रिशंकु सिर के बल पृथ्वी पर गिरने लगे और विश्वामित्र से अपनी रक्षा की प्रार्थना करने लगे। विश्वामित्र ने उन्हें वहीं ठहरने का आदेश दिया और वे अधर में ही सिर के बल लटक गये। त्रिशंकु की पीड़ा की कल्पना करके विश्वामित्र ने उसी स्थान पर अपनी तपस्या के बल से स्वर्ग की सृष्टि कर दी और नये तारे तथा दक्षिण दिशा में सप्तर्षि मण्डल बना दिया। इसके बाद उन्होंने नये इन्द्र की सृष्टि करने का विचार किया जिससे इन्द्र सहित सभी देवता भयभीत होकर विश्वामित्र से अनुनय विनय करने लगे। वे बोले कि हमने त्रिशंकु को केवल इसलिये लौटा दिया था कि वे गुरु के शाप के कारण स्वर्ग में नहीं रह सकते थे।

इन्द्र की बात सुन कर विश्वामित्र जी बोले कि मैंने इसे स्वर्ग भेजने का वचन दिया है इसलिये मेरे द्वारा बनाया गया यह स्वर्ग मण्डल हमेशा रहेगा और त्रिशंकु सदा इस नक्षत्र मण्डल में अमर होकर राज्य करेगा। इससे सन्तुष्ट होकर इन्द्रादि देवता अपने अपने स्थानों को वापस चले गये।

विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति – देवताओं के चले जाने के बाद विश्वामित्र भी ब्राह्मण का पद प्राप्त करने के लिये पूर्व दिशा में जाकर कठोर तपस्या करने लगे। इस तपस्या को भंग़ करने के लिए नाना प्रकार के विघ्न उपस्थित हुए किन्तु

उन्होंने बिना क्रोध किये ही उन सबका निवारण किया। तपस्या की अवधि समाप्त होने पर जब वे अन्न ग्रहण करने के लिए बैठे, तभी ब्राह्मण भिक्षुक के रूप में आकर इन्द्र ने भोजन की याचना की। विश्वामित्र ने सम्पूर्ण भोजन उस याचक को दे दिया और स्वयं निराहार रह गये। इन्द्र को भोजन देने के पश्चात विश्वामित्र के मन में विचार आया कि सम्भवत: अभी मेरे भोजन ग्रहण करने का समय नहीं आया है इसीलिये याचक के रूप में यह विप्र उपस्थित हो गया,मुझे अभी और तपस्या करना चाहिये। अतएव वे मौन रहकर फिर दीर्घकालीन तपस्या में लीन हो गये। इस बार उन्होंने प्राणायाम से श्वास रोक कर महादारुण तप किया। इस तप से प्रभावित देवताओं ने ब्रह्माजी से निवेदन किया कि भगवन्! विश्वामित्र की तपस्या अब पराकाष्ठा को पहुँच गई है। अब वे क्रोध और मोह की सीमाओं को पार कर गये हैं। अब इनके तेज से सारा संसार प्रकाशित हो उठा है। सूर्य और चन्द्रमा का तेज भी इनके तेज के सामने फीका पड़ गया है। अतएव आप प्रसन्न होकर इनकी अभिलाषा पूर्ण कीजिये।

देवताओं के इन वचनों को सुनकर ब्रह्मा जी उन्हें ब्राह्मण की उपाधि प्रदान की किन्तु विश्वामित्र ने कहा कि हे भगवन्! जब आपने मुझे यह वरदान दिया है तो मुझे ओंकार, षट्कार तथा चारों वेद भी प्रदान कीजिये। प्रभो! अपनी तपस्या को मैं तभी सफल समझूँगा जब वशिष्ठ जी मुझे ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि मान लेंगे।

महर्षि वशिष्ठ द्वारा मान्यता – विश्वामित्र की बात सुन कर सब देवताओं ने वशिष्ठ जी के पास जाकर उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया। लेकिन उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया, कहा कि अभी उनमें अहंकार शेष है, वशिष्ठ जी की यह बात सुनकर विश्वामित्र जी आगे बबूला हो गये और कृद्ध होकर हथियार लेकर उन्हें मार डालने के लिए उनके निवास पर पहुंचे जहाँ श्री वशिष्ठ जी अपनी पत्नी के साथ रात्रि कालीन समय में पूर्णिमा के चन्द्रमा के आलोकित हो रहे प्रकाश में विराजित

थे, और तब विश्वामित्र जी ने वशिष्ठ जी को कहते हुए सुना कि देखो गगन में चन्द्रमा कितना सुंदर आलोकित और तेजस्विता लिये हुए है यह तो विश्वामित्र की तपस्या जैसा प्रदीप्त हो रहा है, यह सुनते ही विश्वामित्र के हाथ से खड़ग गिर गई, सारा क्रोध और अहंकार चूर चूर हो गया वे वशिष्ठ जी के चरणों में गिर पड़े, नेत्रों से अश्रु धारा बहने लगी,.. गुरु वशिष्ठ ने उन्हें अपने हाथों से स्पर्श करते हुए बोला.. उठो ब्रह्मऋषि .. आपकी तपस्या पूर्ण हुई, अहंकार विलीन हो गया और उन्हें अपने हृदय से लगा कर बोले कि विश्वामित्र जी! आप वास्तव में ब्रह्मर्षि हैं। मैं आज से आपको ब्राह्मण स्वीकार करता हूँ।

स्रोत : वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र का यज्ञ

विश्वामित्र गाधि के पुत्र थे। पौराणिक धर्म ग्रंथों और हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार यह माना जाता है कि उन्होंने कई वर्ष तक सफलतापूर्वक राज्य किया था। विश्वामित्र अपने समय के वीर और ख्यातिप्राप्त राजाओं में गिने जाते थे। लम्बे समय तक राज्य करने के बाद वे पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकले। पुरुषार्थ, सच्ची लगन, उद्यम और तप की गरिमा के रूप में महर्षि विश्वामित्र के समान शायद ही कोई हो। इन्होंने अपने पुरुषार्थ से, अपनी तपस्या के बल से क्षत्रियत्व से ब्रह्मत्व प्राप्त किया, राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने, देवताओं और ऋषियों के लिये पूज्य बन गये। विश्वामित्र को सप्तर्षियों में अन्यतम स्थान प्राप्त हुआ था। अपनी तपस्या के बल और योग से वे सभी के लिए वन्दनीय भी बन गय थे।

ऋषि वशिष्ठ का आथित्य – मिथिला के राजपुरोहित शतानन्द राम से विशेष रूप से प्रभावित हुए थे। शतानन्द ने श्रीराम से कहा– हे राम! आपका बड़ा सौभाग्य है कि आपको विश्वामित्र जी गुरु के रूप में प्राप्त हुये हैं। ऋषि विश्वामित्र बड़े ही प्रतापी और तेजस्वी महापुरुष हैं। ऋषि धर्म ग्रहण करने के पूर्व ये बड़े पराक्रमी और प्रजावत्सल नरेश थे। प्रजापति के पुत्र कुश, कुश के पुत्र कुशनाभ और

कुशनाभ के पुत्र राजा गाधि थे। ये सभी शूरवीर, पराक्रमी और धर्मपरायण थे। विश्वामित्र जी उन्हीं गाधि के पुत्र हैं। एक दिन राजा विश्वामित्र अपनी सेना को लेकर वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में गये। उस समय वशिष्ठ ईश्वर भक्ति में लीन होकर यज्ञ कर रहे थे। विश्वामित्र उन्हें प्रणाम करके वहीं बैठ गये। यज्ञ क्रिया से निवृत होकर वशिष्ठ ने विश्वामित्र का खूब आदर सत्कार किया और उनसे कुछ दिन आश्रम में ही रह कर आतिथ्य ग्रहण करने का अनुरोध किया। इस पर यह विचार करके कि मेरे साथ विशाल सेना है और सेना सहित मेरा आतिथ्य करने में वशिष्ठ जी को कष्ट होगा, विश्वामित्र ने नम्रता पूर्वक अपने जाने की अनुमति माँगी, किन्तु वशिष्ठ के अत्यधिक अनुरोध करने पर थोड़े दिनों के लिये उनका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। वशिष्ठ ऋषि ने कामधेनु गौ का आह्वान करके उससे विश्वामित्र तथा उनकी सेना के लिये छह प्रकार के व्यंजन तथा समस्त प्रकार के सुख–सुविधा की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार करके कामधेनु गौ ने सारी व्यवस्था कर दी। वशिष्ठ के आतिथ्य से विश्वामित्र और उनके साथ आये सभी लोग बहुत प्रसन्न हुये।

कामधेनु को माँगना – कामधेनु गौ का चमत्कार देखकर राजा विश्वामित्र ने उस गौ को प्राप्त करने के विचार से वशिष्ठ से कहा– मुनिवर! कामधेनु जैसी गौ वनवासियों के पास नहीं, राजा महाराजाओं के पास शोभा देती हैं। अतः आप इसे मुझे दे दीजिये। इसके बदले में मैं आपको सहस्त्रों स्वर्ण मुद्रायें दे सकता हूँ। इस पर वशिष्ठ ऋषि बोले– राजन! यह गौ मेरा जीवन है और इसे मैं किसी भी कीमत पर किसी को नहीं दे सकता। वशिष्ठ के इस प्रकार कहने पर विश्वामित्र ने बलात् उस गौ को पकड़ लेने का आदेश दे दिया और उनके सैनिक उस गौ को डण्डे से मार–मार कर हाँकने लगे। कामधेनु गौ ने क्रोधित होकर उन सैनिकों से अपना बन्धन छुड़ा लिया और वशिष्ठ के पास आकर विलाप करने लगी। वशिष्ठ

बोले– हे कामधेनु! यह राजा मेरा अतिथि है, इसलिये मैं इसको शाप भी नहीं दे सकता और इसके पास विशाल सेना होने के कारण इससे युद्ध में भी विजय प्राप्त नहीं कर सकता। मैं स्वयं को विवश अनुभव कर रहा हूँ। उनके इन वचनों को सुन कर कामधेनु ने कहा– हे ब्रह्मर्षि! एक ब्राह्मण के बल के सामने क्षत्रिय का बल कभी श्रेष्ठ नहीं हो सकता। आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं एक क्षण में इस क्षत्रिय राजा को उसकी विशाल सेना सहित नष्ट कर दूँगी। कोई उपाय न देख कर वशिष्ठ ऋषि ने कामधेनु को अनुमति दे दी।

दिव्य शक्ति तथा धनुर्विद्या की प्राप्ति – आज्ञा पाते ही कामधेनु ने योगबल से पव सैनिकों की एक सेना उत्पन्न कर दी। वह सेना विश्वामित्र की सेना के साथ युद्ध करने लगी। विश्वामित्र ने अपने पराक्रम से समस्त पव सेना का विनाश कर डाला। अपनी सेना का नाश होते देखकर कामधेनु ने सहस्त्रों शक, हूण, बर्वर, यवन और काम्बोज सैनिक उत्पन्न कर दिये। जब विश्वामित्र ने उन सैनिकों का भी वध कर डाला तो कामधेनु ने अत्यंत पराक्रमी मारक शस्त्रास्त्रों से युक्त पराक्रमी योद्धाओं को उत्पन्न किया, जिन्होंने शीघ्र ही शत्रु सेना को गाजर–मूली की भाँति काटना आरम्भ कर दिया। अपनी सेना का नाश होते देख विश्वामित्र के सौ पुत्र अत्यन्त कुपित हो वशिष्ठ को मारने दौड़े। वशिष्ठ ने उनमें से एक पुत्र को छोड़ कर शेष सभी को भस्म कर दिया। अपनी सेना तथा पुत्रों के नष्ट हो जाने से विश्वामित्र बड़े दुःखी हुये। अपने बचे हुये पुत्र को राज सिंहासन सौंप कर वे तपस्या करने के लिये हिमालय की कन्दराओं में चले गये। कठोर तपस्या करके विश्वामित्र ने महादेव को प्रसन्न कर लिया ओर उनसे दिव्य शक्तियों के साथ सम्पूर्ण धनुर्विद्या के ज्ञान का वरदान प्राप्त कर लिया।

वसिष्ठ से पराजय – इस प्रकार सम्पूर्ण धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त करके विश्वामित्र प्रतिशोध लेने के लिये वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुँचे। उन्हें ललकार कर

विश्वामित्र ने अग्नि बाण चला दिया। अग्नि बाण से समस्त आश्रम में आग लग गई और आश्रमवासी भयभीत होकर इधर–उधर भागने लगे। वशिष्ठ ने भी अपना धनुष संभाल लिया और बोले– मैं तेरे सामने खड़ा हूँ, तू मुझ पर वार कर। आज मैं तेरे अभिमान को चूर–चूर करके बता दूँगा कि क्षात्र बल से ब्रह्म बल श्रेष्ठ है। क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने एक के बाद एक 'आग्नेयास्त्र', 'वरुणास्त्र', 'रुद्रास्त्र', 'ऐन्द्रास्त्र' तथा 'पाशुपतास्त्र' एक साथ छोड़ दिये, जिन्हें वशिष्ठ ने अपने मारक अस्त्रों से मार्ग में ही नष्ट कर दिया। इस पर विश्वामित्र ने और भी अधिक क्रोधित होकर 'मानव', 'मोहन', 'गान्धर्व', 'जूंभण', 'दारण', 'वज्र', 'ब्रह्मपाश', 'कालपाश', 'वरुणपाश', 'पिनाक', 'दण्ड', 'पैशाच', 'क्रौंच', 'धर्मचक्र', 'कालचक्र', 'विष्णुचक्र', 'वायव्य', 'मंथन', 'कंकाल', 'मूसल', 'विद्याधर', 'कालास्त्र' आदि सभी अस्त्रों का प्रयोग कर डाला। वशिष्ठ ने उन सबको नष्ट करके ब्रह्मास्त्र छोड़ने के लिये जब अपना धनुष उठाया तो सब देव–किन्नर आदि भयभीत हो गये, किन्तु वशिष्ठ तो उस समय अत्यन्त क्रुद्ध हो रहे थे। उन्होंने ब्रह्मास्त्र छोड़ ही दिया। ब्रह्मास्त्र के भयंकर ज्योति और गगनभेदी नाद से सारा संसार पीड़ा से तड़पने लगा। सब ऋषि–मुनि उनसे प्रार्थना करने लगे कि आपने विश्वामित्र को परास्त कर दिया है। अब आजप ब्रह्मास्त्र से उत्पन्न हुई ज्वाला को शान्त करें। इस प्रार्थाना से द्रवित होकर उन्होंने ब्रह्मास्त्र को वापस बुलाया और मन्त्रों से उसे शान्त किया।

तपस्या – पराजित होकर विश्वामित्र मणिहीन सर्प की भाँति पृथ्वी पर बैठ गये और सोचने लगे कि निःसन्देय क्षात्र बल से ब्रह्म बल ही श्रेष्ठ है। अब मैं तपस्या करके ब्राह्मण की पदवी और उसका तेज प्राप्त करूँगा। इस प्रकार विचार करके वे अपनी पत्नी सहित दक्षिण दिशा की और चल दिये। उन्होंने तपस्या करते हुये अन्न का त्याग कर केवल फलों पर जीवन–यापन करना आरम्भ कर दिया। एक

हज़ार वर्ष तक तपस्या करने के पश्चात् ब्रह्मा ने प्रकट होकर कहा– हे राजर्षि, तुमने अपने तप से सब लोक जीत लिये हैं। ब्रह्मा के मुँह से 'राजर्षि' शब्द सुनकर उन्हें बहुत बुरा लगा और विश्वामित्र ने सोचा कि उनकी तपस्या में अभी भी कुछ कमी है।

मेनका और विश्वामित्र – तपस्या करते हुए सबसे पहले मेनका अप्सरा के माध्यम से विश्वामित्र के जीवन में काम का विघ्न आया। ये सब कुछ छोड़कर मेनका के प्रेम में डूब गये। जब इन्हें होश आया तो इनके मन में पश्चात्ताप का उदय हुआ। ये पुन: कठोर तपस्या में लगे और सिद्ध हो गये। काम के बाद क्रोध ने भी विश्वामित्र को पराजित किया।

त्रिशंकु और विश्वामित्र – राजा त्रिशंकु सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे। यह प्रकृति के नियमों के विरुद्ध होने के कारण वसिष्ठ जी ने उनका कामनात्मक यज्ञ कराना स्वीकार नहीं किया। विश्वामित्र के तप का तेज़ उस समय सर्वाधिक था। त्रिशंकु विश्वामित्र के पास गये। वसिष्ठ के पुराने बैर को स्मरण करके विश्वामित्र ने उनका यज्ञ कराना स्वीकार कर लिया। सभी ऋषि इस यज्ञ में आये, किन्तु वसिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आये। इस पर क्रोध के वशीभूत होकर विश्वामित्र ने उन्हें मार डाला। अपनी भयंकर भूल का ज्ञान होने पर विश्वामित्र ने पुन: तप किया और क्रोध पर विजय करके ब्रह्मर्षि हुए। सच्ची लगन और सतत उद्योग से सब कुछ सम्भव है, विश्वामित्र ने इसे सिद्ध कर दिया।

रामचन्द्र और विश्वामित्र – श्री विश्वामित्र जी को भगवान श्रीराम का दूसरा गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये दण्डकारण्य में यज्ञ कर रहे थे। रावण के द्वारा वहाँ नियुक्त ताड़का सुबाहु और मारीच जैसे– राक्षस इनके यज्ञ में बार–बार विघ्न उपस्थित कर देते थे। विश्वामित्र जी ने अपने तपोबल से जान लिया कि त्रैलोक्य को भय से त्राण दिलाने वाले परब्रह्म श्रीराम का अवतार अयोध्या में हो

गया है। फिर ये अपनी यज्ञ रक्षा के लिये श्री राम को महाराज दशरथ से माँग ले आये। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा हुई। इन्होंने भगवान श्री राम को अपनी विद्याएँ प्रदान कीं और उनका मिथिला में श्री सीता जी से विवाह सम्पन्न कराया। महर्षि विश्वामित्र आजीवन पुरुषार्थ और तपस्या के मूर्तिमान प्रतीक रहे। सप्तऋषि मण्डल में ये आज भी विद्यमान हैं।

क्षत्रियत्व से ब्रह्मत्व – पुरुषार्थ, सच्ची लगन, उद्यम और तप की गरिमा के रूप में महर्षि विश्वामित्र के समान शायद ही कोई हो। इन्होंने अपने पुरुषार्थ से, अपनी तपस्या के बल से क्षत्रियत्व से ब्रह्मत्व प्राप्त किया, राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने, देवताओं और ऋषियों के लिये पूज्य बन गये और उन्हें सप्तर्षियों में अन्यतम स्थान प्राप्त हुआ। साथ ही सबके लिये वे वन्दनीय भी बन गये। इनकी अपार महिमा है। इन्हें अपनी समाधिजा प्रज्ञा से अनेक मन्त्रस्वरूपों का दर्शन हुआ, इसलिये ये 'मन्त्रद्रष्टा ऋषि' कहलाते हैं।

ऋग्वेद के दस मण्डलों में तृतीय मण्डल, जिसमें 62 सूक्त हैं, इन सभी सूक्तों (मन्त्रों का समूह) के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र ही हैं। इसीलिये तृतीय मण्डल 'वैश्वामित्र–मण्डल' कहलाता है। इस मण्डल में इन्द्र, अदिति, अग्निदेव, उषा, अश्विनी तथा ऋभु आदि देवताओं की स्तुतियाँ हैं और अनेक ज्ञान–विज्ञान, अध्यात्म आदि की बातें विस्तृत हैं, अनेक मन्त्रों में गौ–महिमा का वर्णन है। तृतीय मण्डल के साथ ही प्रथम, नवम तथा दशम मण्डल की कतिपय ऋचाओं के द्रष्टा विश्वामित्र के मधुच्छन्दा आदि अनेक पुत्र हुए हैं।

वैसे तो वेद की महिमा अनन्त है ही, किंतु महर्षि विश्वामित्र जी के द्वारा दृष्ट यह तृतीय मण्डल विशेष महत्त्व का है, क्योंकि इसी तृतीय मण्डल में ब्रह्म–गायत्री का जो मूल मन्त्र है, वह उपलब्ध होता है। इस ब्रह्म–गायत्री–मन्त्र के मुख्य द्रष्टा तथा उपदेष्टा आचार्य महर्षि विश्वामित्र ही हैं। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 62वें सूक्त

का दसवाँ मन्त्र 'गायत्री–मन्त्र' के नाम से विख्यात है, जो इस प्रकार है–

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

यदि महर्षि विश्वामित्र न होते तो यह मन्त्र हमें उपलब्ध न होता, उन्हीं की कृपा से, साधना से यह गायत्री–मन्त्र प्राप्त हुआ है। यह मन्त्र सभी वेदमन्त्रों का मूल है– बीज है, इसी से सभी मन्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ। इसीलिये गायत्री को 'वेदमाता' कहा जाता है। यह मन्त्र सनातन परम्परा के जीवन में किस तरह अनुस्यूत है तथा इसकी कितनी महिमा है, यह तो स्वानुभव–सिद्ध है। उपनयन–संस्कार में गुरुमुख द्वारा इसी मन्त्र के उपदेश से द्विजत्व प्राप्त होता है और नित्य–सन्ध्याकर्म में मुख्य रूप से प्राणायाम, सूर्योपस्थान आदि द्वारा गायत्री–मन्त्र के जप की सिद्धि में ही सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार यह गायत्री–मन्त्र महर्षि विश्वामित्र की ही देन है और वे इसके आदि आचार्य हैं। अतः गायत्री–उपासना में इनकी कृपा प्राप्त करना भी आवश्यक है। इन्होंने गायत्री–साधना तथा दीर्घकालीन संध्योपासना की तपःशक्ति से काम–क्रोधादि विकारों पर विजय प्राप्त की और ये तपस्या के आदर्श बन गये।

महर्षि ने केवल वैदिक मन्त्रों के माध्यम से ही गायत्री–उपासना पर बल दिया, अपितु उन्होंने अन्य जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया, उनमें भी मुख्य रूप से गायत्री–साधना का ही उपदेश प्राप्त होता है।

'विश्वामित्रकल्प,' 'विश्वामित्रसंहिता' तथा 'विश्वामित्रस्मृति' आदि उनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनमें भी सर्वत्र गायत्री देवी की आराधना का वर्णन दिया गया है और यह निर्देश है कि अपने अधिकारानुसार गायत्री–मन्त्र के जप से सभी सिद्धियाँ तो प्राप्त हो ही जाती हैं। इसीलिये केवल इस मन्त्र के जप कर लेने से सभी मन्त्रों का जप सिद्ध हो जाता है।

महामुनि विश्वामित्र तपस्या के धनी हैं। इन्हें गायत्री–माता सिद्ध थीं और इनकी पूर्ण कृपा इन्होंने प्राप्त थी। इन्होंने नवीन सृष्टि तथा त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग आदि भेजने और ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने–सम्बन्धी जो भी असम्भव कार्य किये, उन सबके पीछे गायत्री–जप एवं संध्योपासना का ही प्रभाव था।

भगवती गायत्री कैसी हैं, उनका क्या स्वरूप है, उनकी आराधना कैसे करनी चाहिये, यह सर्वप्रथम आचार्य विश्वामित्र जी ने ही हमें बताया है। उन्होंने भगवती गायत्री को सर्वस्वरूपा बताया है और कहा है कि यह चराचर जगत स्थूल–सूक्ष्म भेद से भगवती का ही विग्रह है, तथापि उपासना और ध्यान की दृष्टि से उनका मूल स्वरूप कैसा है– इस विषय में उनके द्वारा रचित निम्न श्लोक द्रष्टव्य है, जो आज भी गायत्री के उपासकों तथा नित्य सन्ध्या– वन्दनादि करने वालों के द्वारा ध्येय होता रहता है– 4’जो मोती मूँगा, सुवर्ण, नीलमणि तथा उज्ज्वल प्रभा के समान वर्णवाले पाँच मुखों से सुशोभित हैं। तीन नेत्रों से जिनके मुख की अनुपम शोभा होती है। जिनके रत्नमय मुकुट में चन्द्रमा जड़े हुए हैं, जो चौबीस वर्णों से युक्त हैं तथा जो वरदायिनी गायत्री अपने हाथों में अभय और वरमुद्राएँ, अंकुश, पाश, शुभ्रकपाल, रस्सी, शंख, चक्र और दो कमल धारण करती हैं, हम उनका ध्यान करते हैं’।

इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र का इस जगत पर महान् उपकार ही है। महिमा के विषय में इससे अधिक क्या कहा जा सकता है कि साक्षात भगवान जिन्हें अपना गुरु मानकर उनकी सेवा करते थे। महर्षि ने सभी शास्त्रों तथा धनुर्विद्या के आचार्य श्रीराम को बला, अतिबला आदि विद्याएँ प्रदान कीं, सभी शास्त्रों का ज्ञान प्रदान किया और भगवान श्रीराम की चिन्मय लीलाओं के वे मूल–प्रेरक रहे तथा लीला–सहचर भी बने।

क्षमा की मूर्ति वसिष्ठ के साथ विश्वामित्र का जो विवाद हुआ, प्रतिस्पर्धा हुई, वह

भी लोकशिक्षा का ही एक रूप है। इस आख्यान से गौ–महिमा, त्याग का आदर्श, क्षमा की शक्ति, तपस्या की शक्ति, उद्यम की महिमा, पुरुषार्थ एवं प्रयत्न की दृढ़ता, कर्मयोग, सच्ची लगन और निष्ठा एवं दृढ़तापूर्वक कर्म करने की प्रेरणा मिलती है। इस आख्यान से लोक को यह शिक्षा लेनी चाहिये कि काम, क्रोध आदि साधना के महान् बाधक हैं, जब तक व्यक्ति इनके मोहपाश में रहता है; उसका अभ्युदय सम्भव नहीं, किंतु जब वह इन आसुरी सम्पदाओं का परित्याग कर दैवी–सम्पदा का आश्रय लेता है तो वह सर्वपूज्य, सर्वमान्य तथा भगवान का प्रियपात्र हो जाता है। महर्षि वसिष्ठ से जब वे परास्त हो गये, तब उन्होंने तपोबल का आश्रय लिया, काम–क्रोध के वशीभूत होने का उन्हें अनुभव हुआ, अन्त में सर्वस्व त्याग कर वे अनासक्त पथ के पथिक बन गये और जगद्वन्द्य हो गये। ब्रह्मा जी स्वयं उपस्थित हुए, उन्होंने उन्हें बड़े आदर से ब्रह्मर्षिपद प्रदान किया। महर्षि वसिष्ठ ने उनकी महिमा का स्थापन किया और उन्हें हृदय से लगा लिया। दो महान् संतों का अद्भुत मिलन हुआ। देवताओं ने पुष्पवृष्टि की।

सत्यधर्म के आदर्श राजर्षि हरिश्चन्द्र महर्षि विश्वामित्र की दारुण परीक्षा से ही हरिश्चन्द्र की सत्यता में निखार आया, उस वृत्तान्त में महर्षि अत्यन्त निष्ठुर से प्रतीत होते हैं, किंतु महर्षि ने हरिश्चन्द्र को सत्यधर्म की रक्षा का आदर्श बनाने तथा उनकी कीर्ति को सर्वश्रुत एवं अखण्ड बनाने के लिये ही उनकी इतनी कठोर परीक्षा ली। अन्त में उन्होंने उनका राजैश्वर्य उन्हें लौटा दिया, रोहिताश्व को जीवित कर दिया और महर्षि विश्वामित्र की परीक्षा रूपी कृपा प्रसाद से ही हरिश्चन्द्र राजा से राजर्षि हो गये, सबके लिये आदर्श बन गये।

ऐतरेय ब्राह्मण आदि में भी हरिश्चन्द्र के आख्यान में महर्षि विश्वामित्र की महिमा का वर्णन आया है।

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल में 30वें, 33वें तथा 53वें सूक्त में महर्षि विश्वामित्र का

परिचयात्मक विवरण आया है। वहाँ से ज्ञान होता है कि ये कुशिक गोत्रोत्पन्न कौशिक थे। ये कौशिक लोग महान् ज्ञानी थे, सारे संसार का रहस्य जानते थे।

ऋग्वेद 53वें सूक्त के 9वें मन्त्र से ज्ञात होता है कि महर्षि विश्वामित्र अतिशय सामर्थ्यशाली, अतीन्द्रियार्थद्रष्टा, देदीप्यमान तेजों के जनयिता और अध्वर्यु आदि में उपदेष्टा हैं तथा राजा सुदास के यज्ञ के आचार्य रहे हैं।

महाभारत और पुराणों में विश्वामित्र

महर्षि विश्वामित्र के आविर्भाव का विस्तृत आख्यान पुराणों तथा महाभारत आदि में आया है। भरत वंश की परंपरा राजा अजमीढ़, जु, सिंधुद्वीप, बलाश्व, बल्लभ, कुशिक से होती हुई गाधि तक पहुंची। गाधि दीर्घकाल तक पुत्रहीन रहे तथा अनेक पुण्यकर्म करने के उपरांत उन्हें सत्यवती नामक कन्या की प्राप्ति हुई। च्यवन के पुत्र भृगुवंशी ऋचीक ने सत्यवती की याचना की तो गाधि ने उसे दरिद्र समझकर शुल्क रूप में उससे एक सहस्त्र श्वेत वर्ण तथा एक ओर से काले कानों वाले एक सहस्त्र घोड़े मांगे। ऋचीक ने वरुणदेव की कृपा से शुल्क देकर सत्यवती से विवाह कर लिया। कालांतर में पत्नी से प्रसन्न होकर ऋचीक ने वर मांगने को कहा। सत्यवती ने अपनी माँ की सलाह से माँ के तथा अपने लिए एक-एक पुत्र की कामना की। *ऋचीक ने सत्यवती को दोनों के खाने के लिए एक-एक मन्त्रपूत चरु दिया तथा ऋतुस्नान के उपरांत माँ को पीपल के वृक्ष का आलिंगन तथा सत्यवती को गूलर का आलिंगन करने को कहा। माँ ने यह सोचकर कि अपने लिए निश्चय ही ऋचीक ने अधिक अच्छे बालक की योजना की होगी, बेटी पर अधिकार जमाकर चारू बदल लिए तथा स्वयं गूलर का और सत्यवती को पीपल का आलिंगन करवाया। गर्भवती सत्यवती को देखकर ऋचीक पर यह भेद खुल गया। उसने कहा-'सत्यवती, मैंने तुम्हारे लिए ब्राह्मण पुत्र तथा माँ के लिए क्षत्रियपुत्र की योजना की थी।' सत्यवती यह जानकर बहुत

दुखी हुई। उसने ऋचीक से प्रार्थना की कि उसका पौत्र भले ही क्षत्रिय हो जाय, पर पुत्र ब्राह्मण हो। यथासमय सत्यवती की परम्परा में पुत्र रूप में जमदग्नि पैदा हुए और उन्हीं के पुत्र परशुराम हुए। जमदग्नि तथा गाधि नामक विख्यात राजा को विश्वामित्र नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। गाधि ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर अपने शरीर का त्याग कर दिया। प्रजा के मन में पहले से ही संशय था कि विश्वामित्र प्रजा की रक्षा कर पायेंगे कि नहीं। कालांतर में स्पष्ट हो गया कि वे गाधि जितने समर्थ राजा नहीं हैं। प्रजा राक्षसों से भयभीत थी, अत: विश्वामित्र अपनी सेना लेकर निकले।

वे वसिष्ठ के आश्रम के निकट पहुंचे। वसिष्ठ उनके सैनिकों को अन्याय आदि करते देख उनसे रुष्ट हो गये तथा अपनी गौ नंदिनी से उन्होंने भयानक पुरुषों की सृष्टि करने के लिए कहा। उन भयानक पुरुषों ने राजसैनिकों को मार भगाया। अपनी पराजय देखकर विश्वामित्र ने तप को अधिक प्रबल मानकर तपस्या में अपना मन लगाया। वे ब्रह्माजी के सरोवर से उत्पन्न हुई सरस्वती नदी के तट पर चले गये। वहां उन्होंने अर्ष्टिषेण तीर्थ का सेवन कर ब्रह्मा से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। कालांतर में तपस्या करते हुए उनको वसिष्ठ से स्पर्धा तदनंतर बैर हो गया। सरस्वती के पूर्वी तट पर वसिष्ठ तथा पश्चिमी तट पर विश्वामित्र तपस्या में लगे थे। एक दिन उन्होंने सरस्वती को बुलाकर कहा कि वह वसिष्ठ को बहाकर उनके पास ले आये ताकि वे वसिष्ठ का वध कर पायें। सरस्वती दोनों में से किसी का भी अहित करने से शाप की संभावना का अनुभव कर रही थी, अत: उसने वसिष्ठ से जाकर सब कह सुनाया। उन्होंने उसे विश्वामित्र की आज्ञा का पालन करने के लिए कहा। सरस्वती ने पूर्वी तट को तोड़कर बहाया तथा उस तट को वसिष्ठ सहित विश्वामित्र के पास पहुंचा दिया। विश्वामित्र जप और होम कर रहे थे। वे वसिष्ठ को मारने के लिए कोई अस्त्र ढूंढ़ ही रहे थे कि सरस्वती ने पुन: बहाकर

उन्हें दूसरे तट पर पहुंचा दिया। वसिष्ठ को फिर से पूर्वी तट पर देख विश्वामित्र सरस्वती से रुष्ट हो गये। उन्होंने शाप दिया कि वहां उसका जल रक्तमिश्रित हो जाये। उस स्थल पर सरस्वती का जल रक्त की धारा बन गया तथा उसका पान विभिन्न राक्षस इत्यादि करने लगे। कालांतर में कुछ मुनि तीर्थाटन करते हुए वहां पहुंचे। वहां रक्त देख तथा सरस्वती से समस्त घटना के विषय में जानकर उन लोगों ने शिव की उपासना की। उनकी कृपा से शापमुक्त होकर सरस्वती पुन: स्वच्छ जल–युक्त हो गयी। जो राक्षस निरंतर प्रवाहित रक्त का पान कर रहे थे, वे अतृप्त और भूखे होने के कारण मुनियों की शरण में गये। उन्होंने अपने पापों को मुक्त कंठ से स्वीकार किया तथा उनसे छुटकारा प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। उन्हें पापमुक्त करने की मुनियों की इच्छा जानकर सरस्वती अपनी ही स्वरूपभूता 'अरुणा' को ले आयी। उसके जल में स्नान करके राक्षस अपने शरीर का त्याग कर स्वर्ग चले गये। अरुणा ब्रह्महत्या का निवारण करने वाली नदी है।

त्रेता युग और द्वापर युग की संधि के समय बारह वर्ष तक अनावृष्टि रही। विश्वामित्र भूख से पीड़ित हो अपने परिवार को जनसमुदाय में छोड़कर भक्ष्य–अभक्ष्य ढूंढ़ने निकल पड़े। उन्हें एक चांडाल के घर में कुत्ते की जांघ का मांस दिखायी दिया। वे उसे चुराने की इच्छा से वहीं रह गये। रात्रि के समय यह सोचकर कि सब सो रहे हैं, वे घर में घुसे। चांडाल जगा हुआ था। अत: उसने पूछा, कौन है। परिचय पाकर तथा प्रयोजन जानकर उसने उन्हें इस कुकर्म से विरक्त होने के लिए कहा। यह भी कहा कि मुनि के लिए कुत्ते की जांघ का मांस अभक्ष्य है। विश्वामित्र ने आपत्धर्म मानकर वह मांस वहां से ले लिया तथा अपने परिवार के साथ भक्षण करने का विचार किया। मार्ग में उन्हें ध्यान आया कि इसमें से यज्ञादि के द्वारा देवताओं का भाग भी निकाल देना चाहिए। उनके यज्ञ

करते–करते ही वर्षा प्रारंभ हो गयी तथा दुर्भिक्ष दूर हो गया।

विश्वामित्र ने अपने सातों लड़कों से रुष्ट होकर उन्हें अपने आश्रम से निकाल दिया तथा शाप दिया। वे गर्ग मुनि को गुरु बनाकर रहने लगे। मुनि के पास एक गाय थी। वह हर साल एक बच्चा देती थी। एक दिन उसे जंगल से लाने गये तो सातों ने सबसे छोटे की सलाह से पितरों का आवाहन करके श्राद्ध निमित्त उस गाय को मारकर खा लिया तथा मुनि से यह कह दिया कि सिंह उसे खा गया है। मुनि ने मान लिया। गाय मारते हुए पितरों का आवाहन करने के कारण वे ज्ञान से च्युत नहीं हुए। पाप कर्म के कारण वे मरकर व्याध के घर में पैदा हुए। इसी प्रकार वे क्रमश: हरिण, चकवा–चकवी, हंस हुए, तदनंतर उनमें से चार ब्राह्मण घर में उत्पन्न हुए और जो राजा बनने के लोभी थे, वे राजा ब्रह्मदत्त और उसके दो मन्त्रियों के रूप में जन्मे। गोवध करते हुए भी पितरों का आवाहन करने के कारण वे अपने पूर्वज्ञान को भूले नहीं। राजा ब्रह्मदत्त की पत्नी राजा से काम–संबंध स्थापित नहीं करती थी। उसे सब ज्ञात था और वह राजा को धर्म के मार्ग की ओर अग्रसर करना चाहती थी। संयोग से चार ब्राह्मण भाई तीर्थाटन के लिए उद्यत हुए तो उन्होंने अपने बूढ़े पिता के हाथ राजा और मन्त्रियों को पूर्वजन्म का आख्यान लिख भेजा। राजा ने ब्राह्मण को धन देकर विदा किया तथा अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर वह योग की ओर प्रवृत्त हुआ। मन्त्रियों ने भी वही मार्ग अपनाकर मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार विश्वामित्र के सातों पुत्रों की इहलोक से मुक्ति हुई। इसका श्रेय पितरों की भक्ति को दिया गया है।

***

कश्यप ऋषि

वैदिक ऋषि

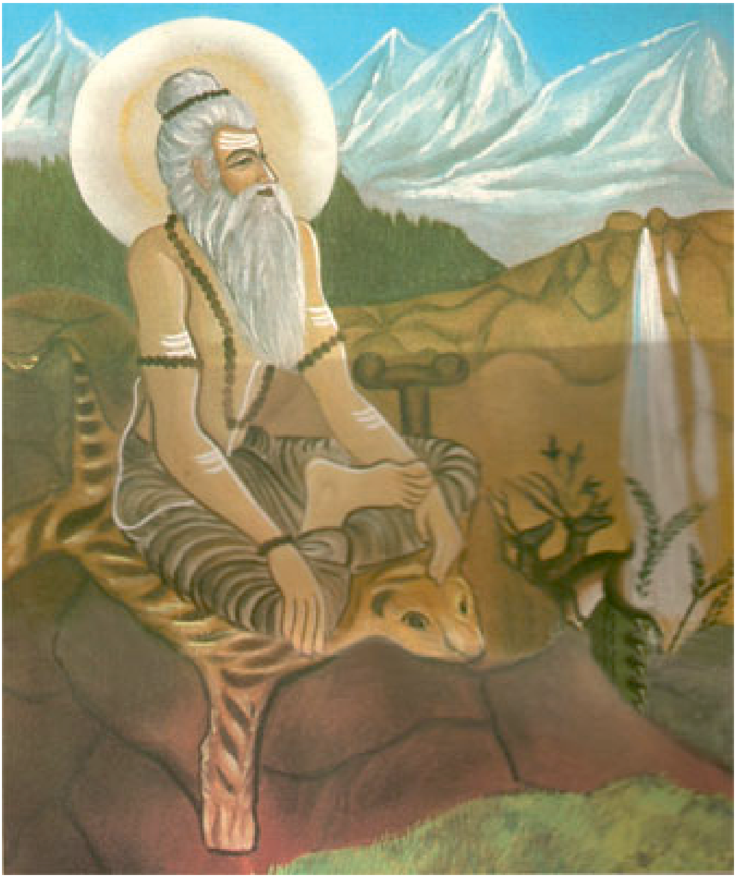

कश्यप ऋषि एक वैदिक ऋषि थे। इनकी गणना सप्तर्षि गणों में की जाती थी। हिंदू मान्यता के अनुसार वह ऋग्वेद के सात प्राचीन ऋषियों, सप्तर्षियों में से एक हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में कोलोफ़ोन छंद में सूचीबद्ध अन्य सप्तर्षियों के साथ, कश्यप सबसे प्राचीन और सम्मानित ऋषि हैं।

इनके पिता ब्रह्मा के पुत्र मरीचि ऋषि थे। इन्हे परमपिता ब्रह्मा का अवतार माना

गया है। माना जाता है कि द्वापर युग में कश्यप प्रजापति ही भगवान विष्णु के कृष्णावतार में उनके पिता वसुदेव थे तथा उनकी प्रथम पत्नी अदिति देवकी और उनकी द्वितीय पत्नी दिति रोहिणी थीं।

कश्यप ऋषि प्राचीन वैदिक ऋषियों में प्रमुख ऋषि हैं जिनका उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। अन्य संहिताओं में भी यह नाम बहुप्रयुक्त है। इन्हें सर्वदा धार्मिक एंव रहस्यात्मक चरित्र वाला बतलाया गया है एंव अति प्राचीन कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के उन्होंने 'विश्वकर्मभौवन' नामक राजा का अभिषेक कराया था। ऐतरेय ब्राह्मणों ने कश्यपों का सम्बन्ध जनमेजय से बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति को कश्यप कहा गया है:

स यत्कुर्मो नाम। प्रजापतिः प्रजा असृजत। यदसृजत् अकरोत् तद् यदकरोत्
तस्मात् कूर्मः कश्यपो वै कूम्स्र्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः कश्यपः।

महाभारत एवं पुराणों में असुरों की उत्पत्ति एवं वंशावली के वर्णन में कहा गया है की ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों में से एक 'मरीचि' थे जिसने कश्यप ऋषि उत्पन्न हुए। कश्यप ने दक्ष प्रजापति की 17 पुत्रियों से विवाह किया। दक्ष की इन पुत्रियों से जो सन्तान उत्पन्न हुई उसका विवरण निम्नांकित है।

महाभारत और विष्णु पुराण के अनुसार उन सत्रह पत्नियों के नाम हैं :– अदिति, दिति, दनु, अनिष्ठा, काष्ठा, सुरसा, इला, मुनि, सुरभि, कद्रू, विनता, यामिनी, ताम्रा, तिमि, क्रोधवशा, सरमा, पातंगी

मार्कण्डेय पुराण और भागवत पुराण के अनुसार तेरह पत्नियां – अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अनिष्ठा, सुरसा, मुनि, सुरभि, विनता, कद्रू, पातंगी, तिमि, इला

मत्स्य पुराण के अनुसार नौ पत्नियां – अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अनिष्ठा, कद्रू, सुरसा, विनता, सुरभि,

भागवत पुराण और मार्कण्डेय पुराण के अनुसार कश्यप की तेरह पत्नियां थीं और मत्स्य पुराण के अनुसार नौ।

एक परम्परा के अनुसार देवता, दैत्य, दानव, यक्ष, गंधर्व, रक्षा, नाग इन सभी जीवधारियों की उत्पत्ति कश्यप से हुई।

एक बार समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर परशुराम ने वह कश्यप मुनि को दान कर दी। कश्यप मुनि ने कहा–'अब तुम मेरे देश में मत रहो।' अत: गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए परशुराम ने रात को पृथ्वी पर न रहने का संकल्प किया। वे प्रति रात्रि में मन के समान तीव्र गमनशक्ति से महेंद्र पर्वत पर जाने लगे।

अरुण और गरुड़ – दक्ष प्रजापति की सत्रह कन्याएं थी जिनमें से सभी का विवाह कश्यप मुनि के साथ हुआ किंतु कश्यप मुनि को कद्रु तथा विनता से विशेष प्रेम था। एक बार प्रसन्न होकर कश्यप ने उन दोनों को मनचाहा वर मांगने को कहा। कद्रु ने समान पराक्रमी एक नाग–पुत्र मांगे तथा विनता ने उसके पुत्रों से अधिक तेजस्वी दो पुत्र मांगे। कालांतर में दोनों को क्रमश: एक सहस्त्र, तथा दो अंडे प्राप्त हुए। 500 वर्ष बाद कद्रु के अंडों के नाग प्रकट हुए। विनता ने ईर्ष्यावश अपना एक अंडा स्वयं ही तोड़ डाला। उसमें से एक अविकसित बालक निकला जिसका ऊर्ध्वभाग बन चुका था, अधोभाग का विकास नहीं हुआ थां उसने क्रुद्ध होकर मां को 500 वर्ष तक कद्रु की दासी रहने का शाप दिया तथा कहा कि यदि दूसरा अंडा समय से पूर्व नहीं फोड़ा तो वह पूर्णविकसित बालक मां को दासित्व से मुक्त करेगा। पहला बालक अरुण बनकर आकाश में सूर्य का सारथि बन गया तथा दूसरा बालक गरुड़ बनकर आकाश में उड़ गया।

विनता तथा कद्रु एक बार कहीं बाहर घूमने गयीं। वहाँ उच्चैश्रवा नामक घोड़े को देखकर दोनों की शर्त लग गयी कि जो उसका रंग गलत बतायेगी, वह दूसरी की दासी बनेगी। अगले दिन घोड़े का रंग देखने की बात रही। विनता ने उसका रंग सफेद बताया था तथा कद्रु ने उसका रंग सफेद, पर पूंछ का रंग काला बताया था। कद्रु के मन में कपट था। उसने घर जाते ही अपने पुत्रों को उसकी पूंछ पर लिपटकर काले बालों का रूप धारण करने का आदेश दिया जिससे वह विजयी हो जाय। जिन सर्पों ने उसका आदेश नहीं माना, उन्हें उसने शाप दिया कि वे

जनमेजय के यज्ञ में भस्म हो जायें। इस शाप का अनुमोदन करते हुए ब्रह्मा ने कश्यप को बुलाया और कहा–'तुमसे उत्पन्न सर्पों की संख्या बहुत बढ़ गयी है। तुम्हारी पत्नी ने उन्हें शाप देकर अच्छा ही किया, अत: तुम उससे रूष्ट मत होना।' ऐसा कहकर ब्रह्मा ने कश्यप को सर्पों का विष उतारने की विद्या प्रदान की। विनता तथा कद्रु जब उच्चैश्रवा को देखने अगले दिन गयीं तब उसकी पूंछ काले नागों से ढकी रहने के कारण काली जान पड़ रही थी। विनता अत्यंत दुखी हुई तथा उसने कद्रु की दासी का स्थान ग्रहण किया।

गरुड़ ने नागों से पूछा कि कौन–सा ऐसा कार्य है जिसको करने से उसकी माता को दासित्व से छुटकारा मिल जायेगा? उसके नाग भाइयों ने अमृत लाकर देने के लिए कहा। गरुड़ ने अमृत की खोज में प्रस्थान किया। उसको समस्त देवताओं से युद्ध करना पड़ा। सबसे अधिक शक्तिशाली होने के कारण गरुड़ ने सभी को परास्त कर दिया। तदनंतर वे अमृत के पास पहुंचा। अत्यंत सूक्ष्म रूप धारण करके वह अमृतघट के पास निरंतर चलने वाले चक्र को पार कर गया। वहां दो सर्प पहरा दे रहे थे। उन दोनों को मारकर वह अमृतघट उठाकर ले उड़ा। उसने स्वयं अमृत का पान नहीं किया था, यह देखकर विष्णु ने उसके निर्लिप्त भाव पर प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि कह बिना अमृत पीये भी अजर–अमर होगा तथा विष्णु–ध्वजा पर उसका स्थान रहेगा। गरुड़ ने विष्णु का वाहन बनना भी स्वीकार किया। मार्ग में इन्द्र मिले। इन्द्र ने उससे अमृत–कलश मांगा और कहा कि यदि नागों ने इसका पान कर लिया तो अत्यधिक अहित होगा। गरुड़ ने इन्द्र को बताया कि वह किसी उद्देश्य से अमृत ले जा रहा है। जब वह अमृत–कलश कहीं रख दे, इन्द्र उसे ले ले। इन्द्र ने प्रसन्न होकर गरुड़ को वरदान दिया कि नाग उसकी भोजन सामग्री होंगे। तदनंतर गरुड़ अपनी मां के पास पहुंचा। उसने नाग को सूचना दी कि वह अमृत ले आया है। नाग विनता को दासित्व से मुक्त कर दें तथा स्नान कर लें। उसने कुशासन पर अमृत–कलश रख दियां जब तक नाग स्नान करके लौटे, इन्द्र ने अमृत चुरा लिया था। नागों ने कुशा को ही चाटा जिससे उनकी जीभ के दो भाग हो गए, अत: वे द्विजिव्ह कहलाने लगे।

इन्द्र को बालखिल्य महर्षियों से बहुत ईर्ष्या थी। रूष्ट होकर बालखिल्य ने अपनी तपस्या का भाग कश्यप मुनि को दिया तथा इन्द्र का मद नष्ट करने के लिए कहा। कश्यप ने सुपर्णा तथा कद्रु से विवाह किया। दोनों के गर्भिणी होने पर वे उन्हें सदाचार से घर में ही रहने के लिए कहकर अन्यत्र चले गये। उनके जाने के बाद दोनों पत्नियां ऋषियों के यज्ञों में जाने लगीं। वे दोनों ऋषियों के मना करने पर भी हविष्य को दूषित कर देती थीं। अत: उनके शाप से वे नदियां (अपगा) बन गयीं। लौटने पर कश्यप को ज्ञात हुआ। ऋषियों के कहने से उन्होंने शिवाराधना की। शिव के प्रसन्न होने पर उन्हें आशीर्वाद मिला कि दोनों नदियां गंगा से मिलकर पुन: नारी–रूप धारण करेंगी। ऐसा ही होने पर प्रजापति कश्यप ने दोनों का सीमांतोन्नयन संस्कार किया। यज्ञ के समय कद्रु ने एक आंख से संकेत द्वारा ऋषियों का उपहास किया। अत: उनके शाप से वह कानी हो गयी। कश्यप ने पुन: ऋषियों को किसी प्रकार प्रसन्न किया। उनके कथनानुसार गंगा स्नान से उसने पुन: पुर्वरूप धारण किया।

जब हम सृष्टि विकास की बात करते हैं तो इसका मतलब है जीव, जंतु या मानव की उत्पत्ति से होता है। ऋषि कश्यप एक ऐसे ऋषि थे जिन्होंने बहुत–सी स्त्रीयों से विवाह कर अपने कुल का विस्तार किया था। आदिम काल में जातियों की विविधता आज की अपेक्षा कई गुना अधिक थी।

ऋषि कश्यप ब्रह्माजी के मानस–पुत्र मरीची के विद्वान पुत्र थे। मान्यता अनुसार इन्हें अनिष्टनेमी के नाम से भी जाना जाता है। इनकी माता 'कला' कर्दम ऋषि की पुत्री और कपिल देव की बहन थी।

कश्यप को ऋषि–मुनियों में श्रेष्ठ माना गया हैं। पुराणों अनुसार हम सभी उन्हीं की संतानें हैं। सुर–असुरों के मूल पुरुष ऋषि कश्यप का आश्रम मेरू पर्वत के शिखर पर था, जहाँ वे परब्रह्म परमात्मा के ध्यान में लीन रहते थे। समस्त देव, दानव एवं मानव ऋषि कश्यप की आज्ञा का पालन करते थे। कश्यप ने बहुत से स्मृति–ग्रंथों की रचना की थी।

कश्यप कथा : पुराण अनुसार सृष्टि की रचना और विकास के काल में धरती पर सर्वप्रथम भगवान ब्रह्माजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी से दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ। ब्रह्माजी के निवेदन पर दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी असिक्नी के गर्भ से 66 कन्याएँ पैदा की।

इन कन्याओं में से 13 कन्याएँ ऋषि कश्यप की पत्नियाँ बनीं। मुख्यत इन्हीं कन्याओं से सृष्टि का विकास हुआ और कश्यप सृष्टिकर्ता कहलाए। ऋषि कश्यप सप्तऋषियों में प्रमुख माने जाते हैं। विष्णु पुराणों अनुसार सातवें मन्वन्तर में सप्तऋषि इस प्रकार रहे हैं– वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भारद्वाज।

श्रीमद्भागवत के अनुसार दक्ष प्रजापति ने अपनी साठ कन्याओं में से 10 कन्याओं का विवाह धर्म के साथ, 13 कन्याओं का विवाह ऋषि कश्यप के साथ, 27 कन्याओं का विवाह चंद्रमा के साथ, 2 कन्याओं का विवाह भूत के साथ, 2 कन्याओं का विवाह अंगीरा के साथ, 2 कन्याओं का विवाह कृशाश्व के साथ किया था। शेष 4 कन्याओं का विवाह भी कश्यप के साथ ही कर दिया गया।

* कश्यप की पत्नीयाँ : इस प्रकार ऋषि कश्यप की अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सुरसा, तिमि, विनता, कद्रू, पतांगी और यामिनी आदि पत्नियाँ बनीं।

1. अदिति : पुराणों अनुसार कश्यप ने अपनी पत्नी अदिति के गर्भ से बारह आदित्यों को जन्म दिया, जिनमें भगवान नारायण का वामन अवतार भी शामिल था।

माना जाता है कि चाक्षुष मन्वन्तर काल में तुषित नामक बारह श्रेष्ठगणों ने बारह आदित्यों के रूप में जन्म लिया, जो कि इस प्रकार थे– विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इंद्र और त्रिविक्रम (भगवान वामन)।

2. दिति : कश्यप ऋषि ने दिति के गर्भ से हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र एवं सिंहिका नामक एक पुत्री को जन्म दिया। श्रीमद्भागवत् के अनुसार इन तीन संतानों के अलावा दिति के गर्भ से कश्यप के 49 अन्य पुत्रों का जन्म भी हुआ, जो कि मरुन्दण कहलाए। कश्यप के ये पुत्र निसंतान रहे। जबकि हिरण्यकश्यप के चार पुत्र थे– अनुहल्लाद, हल्लाद, भक्त प्रह्लाद और संहल्लाद।

3. दनु : ऋषि कश्यप को उनकी पत्नी दनु के गर्भ से द्विमुर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अरुण, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, दुर्जय, अयोमुख, शंकुशिरा, कपिल, शंकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाबली पुलोम और विप्रचिति आदि 61 महान पुत्रों की प्राप्ति हुई।

4. अन्य पत्नीयाँ : रानी काष्ठा से घोड़े आदि एक खुर वाले पशु उत्पन्न हुए। पत्नी अरिष्टा से गंधर्व पैदा हुए। सुरसा नामक रानी से यातुधान (राक्षस) उत्पन्न हुए। इला से वृक्ष, लता आदि पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों का जन्म हुआ। मुनि के गर्भ से अप्सराएँ जन्मीं। कश्यप की क्रोधवशा नामक रानी ने साँप, बिच्छु आदि विषैले जन्तु पैदा किए।

ऋषि कश्यप के पुत्र विस्वान से मनु का जन्म हुआ। महाराज मनु को इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रान्शु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र नामक दस श्रेष्ठ पुत्रों की प्राप्ति हुई।

ताम्रा ने बाज, गिद्ध आदि शिकारी पक्षियों को अपनी संतान के रूप में जन्म दिया। सुरभि ने भैंस, गाय तथा दो खुर वाले पशुओं की उत्पत्ति की। रानी सरसा ने बाघ आदि हिंसक जीवों को पैदा किया। तिमि ने जलचर जन्तुओं को अपनी संतान के रूप में उत्पन्न किया।

रानी विनता के गर्भ से गरुड़ (विष्णु का वाहन) और वरुण (सूर्य का सारथि) पैदा हुए। कद्रू की कोख से बहुत से नागों की उत्पत्ति हुई, जिनमें प्रमुख आठ नाग थे–अनंत (शेष), वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक।

रानी पतंगी से पक्षियों का जन्म हुआ। यामिनी के गर्भ से शलभों (पतंगों) का जन्म हुआ। ब्रह्माजी की आज्ञा से प्रजापति कश्यप ने वैश्वानर की दो पुत्रियों पुलोमा और कालका के साथ भी विवाह किया। उनसे पौलोम और कालकेय नाम के साठ हजार रणवीर दानवों का जन्म हुआ जो कि कालान्तर में निवातकवच के नाम से विख्यात हुए।

माना जाता है कि कश्यप ऋषि के नाम पर ही कश्मीर का प्राचीन नाम था। समूचे कश्मीर पर ऋषि कश्यप और उनके पुत्रों का ही शासन था। कश्यप ऋषि का इतिहास प्राचीन माना जाता है। कैलाश पर्वत के आसपास भगवान शिव के गणों की सत्ता थी। उक्त इलाके में ही दक्ष राजाओं का साम्राज्य भी था। कश्यप ऋषि के जीवन पर शोध किए जाने की आवश्यकता है।

***

मुनि अत्रि

ब्रह्मा के मानस पुत्र

मुनि अत्रि ब्रह्मा के मानस पुत्र थे जो ब्रह्मा जी के नेत्रों से उत्पन्न हुए थे. यह सोम के पिता थे जो इनके नेत्र से आविर्भूत हुए. इन्होंने कर्दम की पुत्री अनुसूया से विवाह किया था जो एक महान पतिव्रता के रूप में विख्यात हुईं हैं. पुत्रोत्पत्ति के लिए इन्होंने ऋक्ष पर्वत पर पत्नी अनुसूया के साथ घोर तप किया था जिस कारण इन्हें त्रिमूर्तियों की प्राप्ति हुई जिनसे त्रिदेवों के अशं रूप में दत्त (विष्णु)

दुर्वासा (शिव) और सोम (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए.

इस तथ्य पर एक कथा आधारित है जो इस प्रकार है ऋषि अत्री और माता अनुसूइया अपने दाम्पत्य जीवन को बहुत सहज भाव के साथ व्यतीत कर रहे थे. देवी अनुसूइया जी की पतिव्रतता के आगे सभी के नतमस्तक हुआ करते थे. इनके जीवन को देखकर देवता भी प्रसन्न होते थे जब एक बार देवी लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती को ऋषि अत्रि की पत्नि अनुसूइया के दिव्य पतिव्रत के बारे में ज्ञात होता है तो वह उनकी परीक्षा लेने का विचार करती हैं और तीनों देवियां अपने पतियों भगवान विष्णु, शंकर व ब्रह्मा को अनुसूइया के पतिव्रत की परीक्षा लेने को कहती हैं.

विवश होकर त्रिदेव अपने रूप बदलकर एक साधू रूप में ऋषि अत्रि के आश्रम जाते हैं और अनुसूइया से भिक्षा की मांग करते हैं. पर वह एक शर्त रखते हैं कि भिक्षा निर्वस्त्र होकर देनी पड़ेगी इस पर देवी अनुसूइया जी धर्मसंकट में फँस जातीं हैं. यदि भिक्षा न दी तो गलत होगा और देती हैं तो पतिव्रत का अपमान होता है अत: वह उनसे कहती हैं की वह उन्हें बालक रूप में ही यह भिक़्षा दे सकती हैं तथा हाथ में जल लेकर संकल्प द्वारा वह तीनों देवों को शिशु रूप में परिवर्तित कर देती हैं और भिक्षा देती हैं.

इस प्रकार तीनों देवता ऋषी अत्रि के आश्रम में बालक रूप में रहने लगते हैं और देवी अनसूइया माता की तरह उनकी देखभाल करती हैं कुछ समय पश्चात जब त्रिदेवियों को इस बात का बोध होता है तो वह अपने पतियों को पुन: प्राप्त करने हेतु ऋषि अत्रि के आश्रम में आतीं हैं और अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करती हैं.

इस तरह से ऋषि अत्री के कहने पर माता अनुसूइया त्रिदेवों को मुक्त करती हैं. अपने स्वरूप में आने पर तीनों देव ऋषि अत्रि व माता अनुसूइया को वरदान देते हैं कि वह कालाम्तर में उनके घर पुत्र रूप में जन्म लेंग और त्रिदेवों के अशं रूप में दत्तात्रेय , दुर्वासा और सोम रुप में उत्पन्न हुए थे.

वैदिक मन्त्रद्रष्टा –

महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि माने गए हैं अनेक धार्मिक ग्रंथों में इनके आविर्भाव तथा चरित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है. महर्षि अत्रि को ज्ञान, तपस्या, सदाचार, भक्ति एवं मन्त्रशक्ति के ज्ञाता रूप में व्यक्त किया जाता है.

ऋषि अत्रि और श्री राम –

भगवान श्री राम अपने भक्त महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूया की भक्ति को सफल करने के लिए स्वयं उनके आश्रम पर पधारते हैं और माता अनुसूइया देवी सीता को पतिव्रत का उपदेश भी देती हैं. उन्हें दिव्य वस्त्र एवं आभूषण प्रदान करती हैं महर्षि अत्रि तीनों गुणों सत्त्व, रजस, तमस गुणों से परे थे वह गुणातीत थे महर्षि अत्रि सदाचार का जीवन व्यतीत करते हुए चित्रकूट के तपोवन में रहा करते थे.

ऋषि अत्रि जीवन वृतांत –

वेदों में वर्णित है कि ऋषि अत्रि को अश्विनीकुमारों की कृपा प्राप्त थी इस पर एक कथा भी प्राप्त होती है कि एक बार जब महर्षि अत्रि समाधिस्थ थे, तब दैत्यों ने इन्हें उठाकर शतद्वार यन्त्र में डाल देते हैं और जलाने का प्रयत्न करते हैं परंतु समाधी में होने के कारण इन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता तभी उचित समय पर अश्विनीकुमार वहाँ पहुँचकर ऋषि अत्रि को उन दैत्यों के चंगुल से बचाते हैं यही कथा ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में भी बताई गई है. ऋग्वेद के दशम मण्डल में महर्षि अत्रि के तपस्या अनुष्ठान का वर्णन है एवं अश्विनीकुमारों ने इन्हें यौवन प्रदान किया इस तथ्य को व्यक्त किया गया है.

ऋग्वेद के पंचम मण्डल में वसूयु, सप्तवध्रि नामक अनेक पुत्रों को ऋषि अत्रि के पुत्र कहा गया है. ऋग्वेद के पंचम 'आत्रेय मण्डल2, 'कल्याण सूक्त' ऋग्वेदीय 'स्वस्ति–सूक्त' महर्षि अत्रि द्वारा रचित हैं यह सूक्त मांगलिक कार्यों, शुभ संस्कारों तथा पूजा, अनुष्ठानों में पठित होते हैं इन्होंने अलर्क, प्रह्लाद आदि को शिक्षा भी दी थी. महर्षि अत्रि त्याग, तपस्या और संतोष के गुणों से युक्त एक

महान ऋषि हुए.

मुनि अत्रि ब्रह्मा के मानस पुत्र थे जो ब्रह्मा जी के नेत्रों से उत्पन्न हुए थे. यह सोम के पिता थे जो इनके नेत्र से आविर्भूत हुए. इन्होंने कर्दम की पुत्री अनुसूया से विवाह किया था जो एक महान पतिव्रता के रूप में विख्यात हुईं हैं. पुत्रोत्पत्ति के लिए इन्होंने ऋक्ष पर्वत पर पत्नी अनुसूया के साथ घोर तप किया था जिस कारण इन्हें त्रिमूर्तियों की प्राप्ति हुई जिनसे त्रिदेवों के अशं रूप में दत्त (विष्णु) दुर्वासा (शिव) और सोम (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए.

चन्द्रमा का जन्म कैसे हुआ

कुछ लोग कहते हैं कि उनका जन्म ऋषि अत्रि (ब्रह्मा के 10 मस्तिष्क संतानों में से एक) के खुशी के आंसुओं से हुआ था। कुछ लोग कहते हैं कि जब देवता और दैत्य ने अमृत निकालने के लिए समुद्र मंथन किया था, तब चन्द्रमा का जन्म समुद्र से हुआ था।

उनके जन्म के बारे में एक और कहानी है। एक बार ऋषि अत्रि और उनकी पत्नी अनसूया ने संतान प्राप्ति के लिए कठोर तप किया। परमपिता परमात्मा उनके तप से बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में उनके सामने प्रकट हुए। जब अत्रि ने उन सभी को देखा, तो वे हतप्रभ रह गए। वे कौन थे, वे तो केवल परमपिता परमात्मा की पूजा कर रहे थे, फिर ये तीनों उनके सामने कैसे प्रकट हो गए? तो उन्होंने उनसे पूछा – तुम कौन हो? उन्होंने कहा – हम वही हैं जिनकी तुम पूजा कर रहे थे। अत्रि जी ने कहा – लेकिन मैं तो केवल परमपिता परमात्मा की पूजा कर रहा था, तुम तीनों की नहीं, तुम कौन हो? उन्होंने कहा – हम वही हैं जिनकी तुम तीनों रूप धारण करके पूजा कर रहे थे। जो इच्छा हो, मांगो। अत्रि जी ने कहा – मैंने पुत्र प्राप्ति के लिए तप किया था। उन्होंने कहा – ऐसा ही हो। इस प्रकार चूँकि उन तीनों ने उन्हें पुत्र प्रदान किया, इसलिए उनके तीन बच्चे हुए – दत्तात्रेय विष्णु के अवतार के रूप में, दुर्वासा शिव के अवतार के रूप में, और चंद्रमा ब्रह्मा के अवतार के रूप में। उनके जन्म की एक और कहानी

है। अत्रि की पत्नी अनसूया एक पतिव्रता महिला थी। एक बार ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने उसके पतिव्रत धर्म की परीक्षा लेने के बारे में सोचा, इसलिए सभी ने ब्राह्मण का रूप धारण किया और भिक्षा माँगने आए। जब अनसूया उन्हें भोजन देने के लिए बाहर आईं, तो उन्होंने कहा – हम इस तरह से भिक्षा स्वीकार नहीं करते हैं। बिना कपड़ों के आओ और फिर हमें भिक्षा दो। यह सुनकर अनसूया को बहुत घबराहट हुई। उसने परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना की और अपने तप की शक्ति से, उन्होंने उन्हें नवजात शिशुओं में बदल दिया। उसने अपने कपड़े उतार दिए और उन्हें स्तनपान कराना शुरू कर दिया। इस तरह उसने उनके वचनों का पालन किया, साथ ही साथ अपने पतिव्रत धर्म की भी रक्षा की। उसकी बुद्धि और पतिव्रत धर्म से प्रसन्न होकर सभी ने उससे वर मांगने को कहा। उसने कहा – मैं चाहती हूँ कि मैं तुम तीनों को अपने सगे बच्चों की तरह स्तनपान कराऊँ। तीनों ने उसे यह वरदान दिया और वे उसके घर दुर्वासा, दत्तात्रेय और चंद्रमा के रूप में जन्मे। उनके जन्म की एक और कहानी – जब ब्रह्मा ने अत्रि को पुत्र दिया, तो उन्होंने उसे इस प्रकार दिया। अत्रि ऋषि 3,000 वर्षों तक बिना पलक झपकाए अपनी भुजाएँ उठाए खड़े रहे। फिर जब उनका शरीर सोम से भर गया, तो वे स्वयं सोम बन गए। सोम रस ने उनके शरीर को इतना भर दिया कि वह उनके ऊपर भर गया और स्वर्ग को प्रकाश से भर दिया। दसों दिशाओं की देवियाँ उस सोम को लेने के लिए एकत्रित हुईं और उसे अपने गर्भ में जमा कर लिया। लेकिन वे उसे अधिक समय तक रोक नहीं सकीं और उनका गर्भस्थ शिशु धरती पर गिर गया और उसने चंद्रमा का रूप ले लिया। सभी देवों ने चंद्रमा की पूजा की।

चंद्र देव, अत्रि के पुत्र और इंद्र के चाचा –

चंद्रमा – सूर्य के प्रतिनिधि द्वारा सूर्य के बारे में अपनी बात समाप्त करने के बाद, सभी ने उनकी प्रस्तुति की प्रशंसा की। अब चंद्रमा के अधिवक्ता की बारी थी कि वे उनके बारे में बताएं, इसलिए वे उठे और उनके बारे में बोलना शुरू किया –

चंद्रमा सभी का मन है, इंद्रियों और भावनाओं का स्वामी है। उनकी पूजा से लोगों को अपने रोगों से बचने और स्वास्थ्य प्राप्त करने में मदद मिलती है। वे चंद्र महल के राजा हैं। शिव उनके सिर पर अपना अर्धचंद्राकार रूप धारण करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इससे चंद्रमा भगवान शिव का 1/8वाँ अवतार बन जाता है।

हालाँकि वे रात्रि के स्वामी हैं, लेकिन वे अनुष्ठानों का समय निर्धारित करते हैं और पितरों के लिए आश्रय हैं। जब लोग यज्ञ करते हैं, तो वे सोम पीते हैं और निश्चित रूप से वे चंद्र लोक जाते हैं। वेद कहते हैं कि चंद्रमा और राजा सोम (देवता का भोजन) एक ही हैं। जब भी यज्ञ पूरा होता है, तो उसका प्रसाद चंद्रमा को ही जाता है। वे सभी पौधों, जड़ी–बूटियों और पेड़ों के स्वामी हैं। वह उन्हें बढ़ने में मदद करता है। वह जल का स्वामी है और समुद्र में ज्वार को नियंत्रित करता है। वह सफेद कपड़े पहनता है, सफेद फूलों से प्यार करता है, उसकी धातु कांस्य या चांदी है, और उसका रत्न सफेद मोती है। वह घूमना पसंद करता है और जाति से वैश्य है। वह शरीर में रक्त को नियंत्रित करता है और क्योंकि वह वीर्य की प्रकृति का है, वह काम–पूर्ण है। जो कोई भी यौन संतुष्टि चाहता है उसे चंद्रमा की पूजा करनी चाहिए। वह उत्तर पश्चिम दिशा का दिक्पाल (दिशा का स्वामी), सोमवार का स्वामी है और नक्षत्रों में उसका अपना घर कर्क (कर्क) है। वह 27 नक्षत्रों का पति है। ये 27 नक्षत्र दक्ष की 27 पुत्रियाँ हैं। वह विश्व का मित्र है। सूर्य की सुषुम्ना किरण महीने के शुक्ल पक्ष में दिन–प्रतिदिन चंद्रमा को विकसित करती है और पूर्णिमा (पूर्णिमा) के दिन इसे पूर्ण करती है। दूसरे अंधेरे आधे में देवता उस सोम को पीकर पोषित होते हैं। कृष्ण पक्ष की अंतिम तिथि अमावस्या को पितर उस सोम को पीते हैं। यह चक्र ऐसे ही चलता रहता है।

अनुसूया माता / अत्रि मुनि आश्रम

अनुसूया मंदिर उत्तराखंड के चमोली जिले में मैगपाई कैंप चोपता से लगभग 30 किलोमीटर दूर स्थित है। प्रकृति की खूबसूरत वादियों में स्थित यह भव्य मंदिर

तीर्थयात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करता है।

सती अनुसूया मंदिर भारत के प्रमुख देवी मंदिरों में से एक है। यह देवी सती को समर्पित एक पवित्र स्थान है, और यह भारत की धार्मिक प्रकृति को भी दर्शाता है।

ऋषि अत्रि का ज्योतिष में योगदान –

ज्योतिष के इतिहास से जुडे 18 ऋषियों में से एक थे ऋषि अत्रि. एक मान्यता के अनुसार ऋषि अत्रि का जन्म ब्रह्मा जी के द्वारा हुआ था. भगवान श्री कृष्ण ऋषि अत्रि के वंशज माने जाते है. कई पीढीयों के बाद ऋषि अत्रि के कुल में ही भगवान श्री कृ्ष्ण का जन्म हुआ था. यह भी कहा जाता है, कि ब्रह्मा जी के सात मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे, उसमें ऋषि पुलस्त्य, ऋषि पुलह, ऋषि वशिष्ठ, ऋषि कौशिक, ऋषि मारिचि, ऋषि क्रतु, ऋषि नारद है. इन महाऋषियों के ज्योतिष के प्राद्रुभाव में महत्वपूर्ण योगदान रहा है.

ब्रह्मा के मानस पुत्र

हिंदू धर्म के प्रमुख ऋषियों में से एक ऋषि अत्री एक महान कवि और विद्वान थे. अत्री मुनि नौ प्रजापतियों में से एक तथा ब्रह्मा जी के मानस पुत्र थे. अत्री एक गोत्र भी है जिस कारण इस गोत्र में जन्में व्यक्ति अत्री ऋषि के वंशज माने गए. ऋषि अत्री का स्थान सप्तऋषियों में लिया जाता है उनकी महानता एवं विद्वता से प्राचीन ग्रंथ भरे पडे. हैं. संपूर्ण ऋग्वेद दस मण्डलों में से एक ऋग्वेद के पंचम मण्डल के मंत्र द्रष्टा महर्षि अत्रि हैं जिस कारण इसे आत्रेय मण्डल कहा जाता है.

ब्रह्मा जी के यही सात पुत्र आकाश में सप्तर्षि के रुप में विद्यमान है. इस संबन्ध में एक पौराणिक कथा प्रचलित है. तारामंडल का प्रयोग दिन, तिथि, कुण्डली निर्माण, त्यौहार और मुहूर्त आदि कार्यो के लिए किया जाता है. व इन सभी का उपयोग भारत की कृषि के क्षेत्र में प्राचीन काल से होता रहा है.

ज्योतिष के इतिहास के ऋषि अत्रि का नाम जुडा होने के साथ साथ, देवी

अनुसूया और रायायण से भी ऋषि अत्रि जुडे हुए है. भगवान राम और सीता जब इनसे मिलने के लिए ऋषि अत्रि के आश्रम जाते हैं तो वहां उनका साक्षात्कार देवी अनुसूया से भी होता है. वहीं देवी अनुसूया सीता जी को पतिधर्म की शिक्षा देती हैं ओर उन्हें भेंट स्वरुप दिव्यवस्त्र भी प्रदान करती हैं. इसी के अलावा महाभार्त में भी ऋषि अत्रि के विषय में ओर उनके गोत्र से संबंधित विचार भी मिलता है.

ज्योतिष में ऋषि अत्रि का योगदान

ऋषि अत्रि ने ज्योतिष में चिकित्सा ज्योतिष पर कार्य किया, इनके द्वारा लिखे गये. सिद्धांत आज चिकित्सा ज्योतिष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है. इसके साथ ही अत्री संहिता की रचना हुई, महर्षि अत्रि को मंत्र की रचना करने वाले और उसके भेद को जानने वाला भी कहा गया है. अपनी त्रिकाल दृष्टा शक्ति से इन्हेंने धार्मिक ग्रंथों की रचना भी की और साथ ही इनकी कथाओं द्वारा चरित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है. महर्षि अत्रि को बौद्धिक, मानसिक ज्ञान, कठोर तप, उचित धर्म आचरण युक्त व्यवहार, प्रभु भक्ति एवं मन्त्रशक्ति के जानकार के रुप में सदैव पूजा जाता रहा है.

ऋषि अत्रि द्वारा ज्योतिष में शुभ मुहुर्त एवं पूजा अर्चना की विधियों का भी उल्लेख मिलता है. ऋग्वेद के आत्रेय मण्डल, कल्याण सूक्त स्वस्ति–सूक्त इन्ही द्वारा रचे बताए गए हैं. इन के अंतर्गत महर्षि अत्रि ने पूजा पाठ एवं उत्सव किस प्रकार मनाए जाएं इन विषयों का वर्णन किया है. इन्होंने जिन सूक्तों का वर्णन किया है उन्हें आज भी मांगलिक कार्यों एवं किसी न किसी शुभ संस्कारों और अनुष्ठानों में उपयोग किया जाता रहा है.

अत्रि ऋषि का विवाह देवी अनुसूया जी के साथ हुआ था. देवी अनुसूया को पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली श्रेष्ठ नारियों में स्थान प्राप्त है. ऋषि अत्रि और अनुसूया ने अपनी साधना और तपस्या के बल पर त्रिदेवों को संतान रुप में प्राप्त किया. इन्हें विष्णु के अंश रुप में दत्तात्रेय, भगवान शिव के अंश रुप में दुर्वासा

और ब्रह्माजी के अंश रुप में सोम की प्राप्ति होती है.

आयुर्वेद में योगदान

आयुर्वेद और प्राचीन चिकित्सा क्षेत्र सदैव ऋषि का आभारी रहेगा. इन्हें आयुर्वेद में अनेक योगों का निर्माण किया. पुराणों के अनुसार ऋषि अत्रि का जन्म ब्रह्मा जी के नेत्रों से हुआ माना जाता है. ऋर्षि अत्रि को चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपुर्ण उपलब्धी प्राप्त रही है.

प्राचीन धर्म ग्रंथों के अनुसार देवताओं के चिकित्स्क अश्विनी कुमारों ने ऋषि अत्रि को वरदान प्रदान किया. ऋगवेद में भी इस विषय के बारे में विस्तार पूर्वक एक कथा का उल्लेख भी मिलता है. कथा अनुसार एक बार ऋषि अत्रि पर दैत्यों द्वारा हमला होता है पर जिस समय दैत्य उन्हें मारने का प्रयास कर रहे होते हैं तो उस समय ऋषि अत्रि साधना में लिप्त होते हैं. अपनी आधना की ध्यान अवस्था में उन्हें अपने ऊपर हुए इस जानलेवा हमले का बोध नही होता है. से में उस समय पर अश्विनी कुमार इस घटना के समय वहां उपस्थित होते हैं और ऋषि अत्रि को उन दैत्यों से बचा लेते हैं.

इसके अतिरिक्त भी एक अन्य कथा है की अश्विनी कुमारों ने ऋषि अत्रि को यौवन प्राप्ति का वरदान देते हैं और उन्हें नव यौवन प्राप्त कैसे किया जाए इस विधि का भी ज्ञान देते हैं.

ऋषि अत्रि और उनका जीवन दर्शन

अत्री संहिता में बहुत से से विषयों पर विचार किया गया है जो मनुष्य के सामाजिक एवं आत्मिक उत्थान की बात करते हैं. व्यक्ति के नैतिक कर्तव्यों एवं उसके अधिकारों का का वर्णन भी इसमें मिलता है. इस संहिता में व्यक्ति को सहृदय और करुणा से युक्त और दूसरों का उपकार करने वाला कहा गया है. अपने परिवार मित्र के साथ कैसा व्यवहार किया जाए इन बातों का उल्लेख भी हमे इससे प्राप्त होता है.

महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद दस मण्डलों में प्रविभक्त है। प्रत्येक मण्डल के मन्त्रों के ऋषि अलग–अलग हैं। उनमें से ऋग्वेद के पंचम मण्डल के द्रष्टा महर्षि अत्रि हैं। इसीलिये यह मण्डल 'आत्रेय मण्डल' कहलाता है। इस मण्डल में 87 सूक्त हैं। जिनमें महर्षि अत्रि द्वारा विशेष रूप से अग्नि, इन्द्र, मरूत, विश्वेदेव तथा सविता आदि देवों की महनीय स्तुतियाँ ग्रथित हैं। इन्द्र तथा अग्निदेवता के महनीय कर्मों का वर्णन है। अत्रि ब्रह्मा के पुत्र थे जो उनके नेत्रों से उत्पन्न हुए थे। ये सोम के पिता थे जो इनके नेत्र से आविर्भूत हुए थे। इन्होंने कर्दम की पुत्री अनुसूया से विवाह किया था। इन दोनों के पुत्र दत्तात्रेय थे। इन्होंने अलर्क, प्रह्लाद आदि को अन्वीक्षकी की शिक्षा दी थी। भीष्मजब शर–शैय्या पर पड़े थे, उस समय ये उनसे मिलने गये थे। परीक्षित जब प्रायोपवेश का अभ्यास कर रहे थे, तो ये उन्हें देखने गये थे। पुत्रोत्पत्ति के लिए इन्होंने ऋक्ष पर्वत पर पत्नी के साथ तप किया था। इन्होंने त्रिमूर्तियों की प्रार्थना की थी जिनसे त्रिदेवों के अशं रूप में दत्त (विष्णु) दुर्वासा (शिव) और सोम (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए थे। इन्होंने दो बार पृथु को घोड़े चुराकर भागते हुए इन्द्र को दिखाया था तथा हत्या करने को कहा था। ये वैवस्वत युग के मुनि थे। मन्त्रकार के रूप में इन्होंने उत्तानपाद को अपने पुत्र के रूप में ग्रहण किया था। इनके ब्रह्मावादिनी नाम की कन्या थी। परशुराम जब ध्यानावस्थित रूप में थे उस समय ये उनके पास गये थे। इन्होंने श्राद्ध द्वारा पितरों की अराधना की थी और सोम की राजक्ष्मा रोग से मुक्त किया था। ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि की रचना के लिए नियुक्त किये जाने पर इन्होंने 'अनुत्तम' तक किया था जब कि शिव इनसे मिले थे। सोम के राजसूय यज्ञ में इन्होंने होता का कार्य किया था। त्रिपुर के विनाश के लिए इन्होंने शिव की आराधना की थी। बनवास के समय राम अत्रि के आश्रम भी गये थे

वैदिक मन्त्रद्रष्टा –

पुराणों में इनके आविर्भाव का तथा उदात्त चरित्र का बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है। वहाँ के वर्णन के अनुसार महर्षि अत्रि ब्रह्मा जी के मानस–पुत्र हैं और उनके चक्षु

भाग से इनका प्रादुर्भाव हुआ।

सप्तर्षियों में महर्षि अत्रि का परिगणन है। साथ ही इन्हें 'प्रजापति' भी कहा गया है। महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया जी हैं, जो कर्दम प्रजापति और देवहूति की पुत्री हैं। देवी अनुसूया पतिव्रताओं की आदर्शभूता और महान् दिव्यतेज से सम्पन्न हैं। महर्षि अत्रि जहाँ ज्ञान, तपस्या, सदाचार, भक्ति एवं मन्त्रशक्ति के मूर्तिमान स्वरूप हैं ; वहीं देवी अनुसूया पतिव्रता धर्म एवं शील की मूर्तिमती विग्रह हैं। भगवान श्री राम अपने भक्त महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूया की भक्ति को सफल करने स्वयं उनके आश्रम पर पधारे। माता अनुसूया ने देवी सीता को पतिव्रत का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पतिव्रत के बल पर शैव्या ब्राह्मणी के मृत पति को जीवित कराया तथा बाधित सूर्य को उदित कराकर संसार का कल्याण किया। देवी अनुसूया का नाम ही बड़े महत्त्व का है। अनुसूया नाम है परदोष–दर्शन का – गुणों में भी दोष–बुद्धि का और जो इन विकारों से रहित हो, वही 'अनुसूया' है। इसी प्रकार महर्षि अत्रि भी 'अ+त्रि' हैं अर्थात् वे तीनों गुणों (सत्त्व, रजस, तमस)– से अतीत है– गुणातीत हैं। इस प्रकार महर्षि अत्रि–दम्पति एवं विध अपने नामानुरूप जीवन यापन करते हुए सदाचार परायण हो चित्रकूट के तपोवन में रहा करते थे। अत्रि पत्नी अनुसूया के तपोबल से ही भागीरथी गंगा की एक पवित्र धारा चित्रकूट में प्रविष्ट हुई और 'मंदाकिनी' नाम से प्रसिद्ध हुई।

सृष्टि के प्रारम्भ में जब इन दम्पति को ब्रह्मा जी ने सृष्टिवर्धन की आज्ञा दी तो इन्होंने उस ओर उन्मुख न हो तपस्या का ही आश्रय लिया। इनकी तपस्या से ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया और दम्पति की प्रार्थना पर इनका पुत्र बनना स्वीकार किया। अत्रि–दम्पति की तपस्या और त्रिदेवों की प्रसन्नता के फलस्वरूप विष्णु के अंश से महायोगी दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा तथा शंकर के अंश से महामुनि दुर्वासा महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूया के पुत्र रूप में आविर्भूत हुए। वेदों में उपर्युक्त वृत्तान्त यथावत नहीं मिलता है, कहीं–कहीं नामों में अन्तर भी है। ऋग्वेद – में 'अत्रि:सांख्य:' कहा गया है। वेदों में यह

स्पष्ट रूप से वर्णन है कि महर्षि अत्रि को अश्विनीकुमारों की कृपा प्राप्त थी। एक बार जब ये समाधिस्थ थे, तब दैत्यों ने इन्हें उठाकर शतद्वार यन्त्र में डाल दिया और आग लगाकर इन्हें जलाने का प्रयत्न किया, किंतु अत्रि को उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था। उस समय अश्विनीकुमारों ने वहाँ पहुँचकर इन्हें बचाया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 51वें तथा 112वें सूक्त में यह कथा आयी है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में महर्षि अत्रि के दीर्घ तपस्या के अनुष्ठान का वर्णन आया है और बताया गया है कि यज्ञ तथा तप आदि करते–करते जब अत्रि वृद्ध हो गये, तब अश्विनीकुमारों ने इन्हें नवयौवन प्रदान किया।ऋग्वेद के पंचम मण्डल में अत्रि के वसूयु, सप्तवध्रि नामक अनेक पुत्रों का वृत्तान्त आया है, जो अनेक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि रहे हैं। इसी प्रकार अत्रि के गोत्रज आत्रेयगण ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों के द्रष्टा हैं।ऋग्वेद के पंचम 'आत्रेय मण्डल' का 'कल्याण सूक्त' ऋग्वेदीय 'स्वस्ति–सूक्त' है, वह महर्षि अत्रि की ऋतम्भरा प्रज्ञा से ही हमें प्राप्त हो सका है यह सूक्त 'कल्याण–सूक्त', 'मंगल–सूक्त' तथा 'श्रेय–सूक्त' भी कहलाता है। जो आज भी प्रत्येक मांगलिक कार्यों, शुभ संस्कारों तथा पूजा, अनुष्ठानों में स्वस्ति–प्राप्ति, कल्याण–प्राप्ति, अभ्युदय–प्राप्ति, भगवत्कृपा–प्राप्ति तथा अमंगल के विनाश के लिये सस्वर पठित होता है। इस मांगलिक सूक्त में अश्विनी, भग, अदिति, पूषा, द्यावा, पृथिवी, बृहस्पति, आदित्य, वैश्वानर, सविता तथा मित्रा वरुण और सूर्य–चंद्रमा आदि देवताओं से प्राणिमात्र के लिये स्वस्ति की प्रार्थना की गयी है। (इससे महर्षि अत्रि के उदात्त–भाव तथा लोक–कल्याण की भावना का किंचित स्थापना होता है।इसी प्रकार महर्षि अत्रि ने मण्डल की पूर्णता में भी सविता देव से यही प्रार्थना की है कि 'हे सविता देव! आप हमारे सम्पूर्ण दुःखों को–अनिष्टों को, शोक–कष्टों को दूर कर दें और हमारे लिये जो हितकर हो, कल्याणकारी हो, उसे उपलब्ध करायें'।इस प्रकार स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रि की भावना अत्यन्त ही कल्याणकारी थी और उनमें त्याग, तपस्या, शौच, संतोष, अपरिग्रह, अनासक्ति तथा विश्व कल्याण की पराकष्ठा विद्यमान थी।)

एक ओर जहाँ उन्होंने वैदिक ऋचाओं का दर्शन किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी प्रजा को सदाचार और धर्माचरणपूर्वक एक उत्तम जीवनचर्या में प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित किया है तथा कर्तव्या–कर्तव्य का निर्देश दिया है। इन शिक्षोपदेशों को उन्होंने अपने द्वारा निर्मित आत्रेय धर्मशास्त्र में उपनिबद्ध किया है। वहाँ इन्होंने वेदों के सूक्तों तथा मन्त्रों की अत्यन्त महिमा बतायी है। अत्रिस्मृति का छठा अध्याय वेदमन्त्रों की महिमा में ही पर्यवसित है। वहाँ अघमर्षण के मन्त्र, सूर्योपस्थान का यह 'उदु त्यं जातवेदसं'

मन्त्र, पावमानी ऋचाएँ, शतरुद्रिय, गो–सूक्त, अश्व–सूक्त एवं इन्द्र–सूक्त आदि का निर्देश कर उनकी महिमा और पाठ का फल बताया गया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रि की वेद मन्त्रों पर कितनी दृढ़ निष्ठा थी। महर्षि अत्रि का कहना है कि वैदिक मन्त्रों के अधिकारपूर्वक जप से सभी प्रकार के पाप–क्लेशों का विनाश हो जाता है। पाठ कर्ता पवित्र हो जाता है, उसे जन्मान्तरीय ज्ञान हो जाता है– जाति–स्मरता प्राप्त हो जाती है और वह जो चाहता है, वह प्राप्त कर लेता है।

अपनी स्मृति के अन्तिम 9वें अध्याय में महर्षि अत्रि ने बहुत सुन्दर बात बताते हुए कहा है कि यदि विद्वेष भाव से वैरपूर्वक भी दमघोष के पुत्र शिशुपाल की तरह भगवान का स्मरण किया जाय तो उद्धार होने में कोई संदेह नहीं; फिर यदि तत्परायण होकर अनन्य भाव से भगवदाश्रय ग्रहण कर लिया जाय तो परम कल्याण में क्या संदेह?

इस प्रकार महर्षि अत्रि ने अपने द्वारा द्रष्ट मन्त्रों में, अपने धर्मसूत्रों में अथवा अपने सदाचरण से यही बात बतायी है कि व्यक्ति को सत्कर्म का ही अनुष्ठान करना चाहिये।

भारद्वाज ऋषि

ब्रह्मऋषि

भारद्वाज प्राचीन भारतीय ऋषि थे। । चरक संहिता के अनुसार भारद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद का ज्ञान पाया। ऋक्तंत्र के अनुसार वे ब्रह्मा, बृहस्पति एवं इन्द्र के बाद वे चौथे व्याकरण–प्रवक्ता थे। उन्होंने व्याकरण का ज्ञान इन्द्र से प्राप्त किया था तो महर्षि भृगु ने उन्हें धर्मशास्त्र का उपदेश दिया। तमसा–तट पर क्रौंचवध के समय भारद्वाज महर्षि वाल्मीकि के साथ थे, वाल्मीकि रामायण के अनुसार भारद्वाज

महर्षि वाल्मीकि के शिष्य थे।

पदवी	–	हिंदु ऋषि
प्रसिद्धि का कारण	–	हिंदू ग्रन्थों और वेदो के रचयिता
धर्म	–	हिंदू
बच्चे	–	द्रोण (पुत्र), गर्ग, इलविदा, कात्यायनी
माता–पिता	–	बृहस्पति (पिता), ममता (माता)

महर्षि भारद्वाज व्याकरण, आयुर्वेद संहित, धनुर्वेद, राजनीतिशास्त्र, यंत्रसर्वस्व, अर्थशास्त्र, पुराण, शिक्षा आदि पर अनेक ग्रंथों के रचयिता हैं। पर आज यंत्र सर्वस्व तथा शिक्षा ही उपलब्ध हैं। वायुपुराण के अनुसार उन्होंने एक पुस्तक आयुर्वेद संहिता लिखी थी, जिसके आठ भाग करके अपने शिष्यों को सिखाया था। चरक संहिता के अनुसार उन्होंने आत्रेय पुनर्वसु को कायचिकित्सा का ज्ञान प्रदान किया था।

ऋषि भारद्वाज को प्रयाग का प्रथम वासी माना जाता है अर्थात ऋषि भारद्वाज ने ही प्रयाग को बसाया था। प्रयाग में ही उन्होंने घरती के सबसे बड़े गुरूकुल(विश्वविद्यालय) की स्थापना की थी और हजारों वर्षों तक विद्या दान करते रहे। वे शिक्षाशास्त्री, राजतंत्र मर्मज्ञ, अर्थशास्त्री, शस्त्रविद्या विशारद, आयुर्वेद विशारद,विधि वेत्ता, अभियाँत्रिकी विशेषज्ञ, विज्ञानवेत्ता और मँत्र द्रष्टा थे। ऋग्वेद के छठे मंडल के द्रष्टाऋषि भारद्वाज ही हैं। इस मंडल में 765 मंत्र हैं। अथर्ववेद में भी ऋषि भारद्वाज के 23 मंत्र हैं। वैदिक ऋषियों में इनका ऊँचा स्थान है। आपके पिता वृहस्पति और माता ममता थीं।

ऋषि भारद्वाज को आयुर्वेद और सावित्र्य अग्नि विद्या का ज्ञान इन्द्र और कालान्तर में भगवान श्री ब्रह्मा जी द्वारा प्राप्त हुआ था। अग्नि के सामर्थ्य को आत्मसात कर ऋषि ने अमृत तत्व प्राप्त किया था और स्वर्ग लोक जाकर आदित्य से सायुज्य प्राप्त किया था। (तै. ब्राह्मण 3/10/11)

सम्भवतः इसी कारण ऋषि भारद्वाज सर्वाधिक आयु प्राप्त करने वाले ऋषियों में से एक थे। चरक ऋषि ने उन्हें अपरिमित आयु वाला बताया है। (सूत्र – स्थान 1/26)

ऋषि भारद्वाज ने प्रयाग के अधिष्ठाता भगवान श्री माधव जो साक्षात श्री हरि हैं, की पावन परिक्रमा की स्थापना भगवान श्री शिव जी के आशीर्वाद से की थी। ऐसा माना जाता है कि भगवान श्री द्वादश माधव परिक्रमा सँसार की पहली परिक्रमा है। ऋषि भारद्वाज ने इस परिक्रमा की तीन स्थापनाएं दी हैं–

1–जन्मों के संचित पाप का क्षय होगा, जिससे पुण्य का उदय होगा।

2–सभी मनोरथ की पूर्ति होगी।

3–प्रयाग में किया गया कोई भी अनुष्ठान/कर्मकाण्ड जैसे अस्थि विसर्जन, तर्पण, पिण्डदान, कोई संस्कार यथा मुण्डन यज्ञोपवीत आदि, पूजा पाठ, तीर्थाटन,तीर्थ प्रवास, कल्पवास आदि पूर्ण और फलित नहीं होंगे जबतक स्थान देवता अर्थात भगवान श्री द्वादश माधव की परिक्रमा न की जाए।

आयुर्वेद सँहिता, भारद्वाज स्मृति, भारद्वाज सँहिता, राजशास्त्र, यँत्र–सर्वस्व(विमान अभियाँत्रिकी) आदि ऋषि भारद्वाज के रचित प्रमुख ग्रँथ हैं।

ऋषि भारद्वाज खाण्डल विप्र समाज के अग्रज है।खाण्डल विप्रों के आदि प्रणेता ऋषि जगाने के लिए ऋषि एक स्थान पर कहते हैं–अग्नि को देखो यह मरणधर्मा मानवों स्थित अमर ज्योति है। यह अति विश्वकृष्टि है अर्थात सर्वमनुष्य रूप है। यह अग्नि सब कार्यों में प्रवीणतम ऋषि है जो मानव में रहती है। उसे प्रेरित करती है ऊपर उठने के लिए। अतः स्वयं को पहचानो। भाटुन्द गाँव के श्री आदोरजी महाराज भारद्वाज गोत्र के थे।

उत्तराखंड के उप्रेती और पंचुरी ब्राह्मण भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण व बरनवाल हैं। उत्तराखंड के डंगवाल रावत भरद्वाज गौत्र के क्षत्रिय है। पंचुरी ब्राह्मण वेदिक काल से उत्तराखंड में रहते हैं। भारतीय व सनातन धर्मो के लिए ये सप्तऋषियों में से

एक मने जाते है। (2)

'पाठक' और 'शर्मा' उपनाम लिखने वाले ब्राह्मण महर्षि भारद्वाज के वे वंशज हैं जिन्होंने उनके द्वारा स्थापित गुरुकुल में पठन, पाठन और अध्यापन की परंपरा को आगे बढ़ाया।

भारद्वाज का वंश – ऋषि भरद्वाज के पुत्रों में 10 ऋषि ऋग्वेद के मन्त्र द्रष्टा हैं और एक पुत्री जिसका नाम 'रात्रि' था, वह भी रात्रि सूक्त की मन्त्रद्रष्टा मानी गयी है। भारद्वाज के मन्त्रद्रष्टा पुत्रों के नाम हैं– ऋजिष्वा, गर्ग, नर, पायु, वसु, शास, शिराम्बिठ, शुनहोत्र, सप्रथ और सुहोत्र। ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणी के अनुसार 'कशिपा' भारद्वाज की पुत्री कही गयी है। इस प्रकार ऋषि भारद्वाज की 12 संताने मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की कोटि में सम्मानित थीं। भारद्वाज ऋषि ने बड़े गहन अनुभव किये थे। उनकी शिक्षा के आयाम अतिव्यापक थे।

भारद्वाज की शिक्षा –

- भारद्वाज ने इन्द्र से व्याकरण–शास्त्र का अध्ययन किया था और उसे व्याख्या सहित अनेक ऋषियों को पढ़ाया था। 'ऋक्तन्त्र' और 'ऐतरेय ब्राह्मण' दोनों में इसका वर्णन है।
- भारद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद पढ़ा था, ऐसा चरक ऋषि ने लिखा है। अपने इस आयुर्वेद के गहन अध्ययन के आधार पर भारद्वाज ने आयुर्वेद–संहिता की रचना भी की थी।
- भारद्वाज ने महर्षि भृगु से धर्मशास्त्र का उपदेश प्राप्त किया और 'भारद्वाज–स्मृति' की रचना की। महाभारत तथा हेमाद्रि ने इसका उल्लेख किया है। पांचरात्र–भक्ति–सम्प्रदाय में प्रचलित है कि सम्प्रदाय की एक संहिता 'भारद्वाज–संहिता' के रचनाकार भी ऋषि भारद्वाज ही थे।
- महाभारत, शान्तिपर्व के अनुसार ऋषि भारद्वाज ने 'धनुर्वेद'– पर प्रवचन किया था। 2 वहाँ यह भी कहा गया है कि ऋषि भारद्वाज ने 'राजशास्त्र' का

प्रणयन किया था। 3 कौटिल्य ने अपने पूर्व में हुए अर्थशास्त्र के रचनाकारों में ऋषि भारद्वाज को सम्मान से स्वीकारा है।

- ऋषि भारद्वाज की रचनाए :– ऋषि भारद्वाज ने 'यन्त्र–सर्वस्व' नामक बृहद् ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ का कुछ भाग स्वामी ब्रह्ममुनि ने 'विमान–शास्त्र' के नाम से प्रकाशित कराया है। इस ग्रन्थ में उच्च और निम्न स्तर पर विचरने वाले विमानों के लिये विविध धातुओं के निर्माण का वर्णन है।
- इस प्रकार एक साथ व्याकरणशास्त्र, धर्मशास्त्र, शिक्षा–शास्त्र, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद और भौतिक विज्ञानवेत्ता ऋषि भारद्वाज थे– इसे उनके ग्रन्थ और अन्य ग्रन्थों में दिये उनके ग्रन्थों के उद्धरण ही प्रमाणित करते हैं।
- उनकी शिक्षा के विषय में एक मनोरंजक घटना तैत्तिरीय ब्राह्मण–ग्रन्थ में मिलती है। घटना का वर्णन इस प्रकार है– भारद्वाज ने सम्पूर्ण वेदों के अध्ययन का यत्न किया। दृढ़ इच्छा–शक्ति और कठोर तपस्या से इन्द्र को प्रसन्न किया। भारद्वाज ने प्रसन्न हुए इन्द्र से अध्ययन हेतु सौ वर्ष की आयु माँगी। भारद्वाज अध्ययन करते रहे। सौ वर्ष पूरे हो गये। अध्ययन की लगन से प्रसन्न होकर दुबारा इन्द्र ने फिर वर माँगने को कहा, तो भारद्वाज ने पुनः सौ वर्ष अध्ययन के लिये और माँगा। इन्द्र ने सौ वर्ष प्रदान किये। इस प्रकार अध्ययन और वरदान का क्रम चलता रहा। भारद्वाज ने तीन सौ वर्षों तक अध्ययन किया। इसके बाद पुनः इन्द्र ने उपस्थित होकर कहा–'हे भारद्वाज! यदि मैं तुम्हें सौ वर्ष और दे दूँ तो तुम उनसे क्या करोगे?' भारद्वाज ने सरलता से उत्तर दिया, 'मैं वेदों का अध्ययन करूँगा।' इन्द्र ने तत्काल बालू के तीन पहाड़ खड़े कर दिये, फिर उनमें से एक मुट्ठी रेत हाथों में लेकर कहा–'भारद्वाज, समझो ये तीन वेद हैं और तुम्हारा तीन सौ वर्षों का अध्ययन यह मुट्ठी भर रेत है। वेद अनन्त हैं। तुमने आयु के तीन सौ वर्षों में जितना जाना है, उससे न जाना हुआ अत्यधिक है।' अतः मेरी बात पर ध्यान

दो– 'अग्नि है सब विद्याओं का स्वरूप। अत: अग्नि को ही जानो। उसे जान लेने पर सब विद्याओं का ज्ञान स्वत: हो जायगा, इसके बाद इन्द्र ने भारद्वाज को सावित्र्य–अग्नि–विद्या का विधिवत ज्ञान कराया। भारद्वाज ने उस अग्नि को जानकर उससे अमृत–तत्त्व प्राप्त किया और स्वर्गलोक में जाकर आदित्य से सायुज्य प्राप्त किया'।

- इन्द्र द्वारा अग्नि–तत्त्व का साक्षात्कार किया, ज्ञान से तादात्म्य किया और तन्मय होकर रचनाएँ कीं।
- आयुर्वेद के प्रयोगों में ये परम निपुण थे। इसीलिये उन्होंने ऋषियों में सबसे अधिक आयु प्राप्त की थी। वे ब्राह्मणग्रन्थों में 'दीर्घजीवितम' पद से सबसे अधिक लम्बी आयु वाले ऋषि गिने गये हैं।
- चरक ऋषि ने भारद्वाज को 'अपरिमित' आयु वाला कहा।
- भारद्वाज ऋषि काशीराज दिवोदास के पुरोहित थे। वे दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन के पुरोहित थे और फिर प्रतर्दन के पुत्र क्षत्र का भी उन्हीं मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने यज्ञ सम्पन्न कराया था।
- वनवास के समय श्री राम इनके आश्रम में गये थे, जो ऐतिहासिक दृष्टि से त्रेता–द्वापर का सन्धिकाल था। उक्त प्रमाणों से भारद्वाज ऋषि को 'अनूचानतम' और 'दीर्घजीवितम' या 'अपरिमित' आयु कहे जाने में कोई अत्युक्ति नहीं लगती है।

साम–गायक – भारद्वाज ने 'सामगान' को देवताओं से प्राप्त किया था।

- ऋग्वेद के दसवें मण्डल में कहा गया है– 'यों तो समस्त ऋषियों ने ही यज्ञ का परम गुह्य ज्ञान जो बुद्धि की गुफ़ा में गुप्त था, उसे जाना, परंतु भारद्वाज ऋषि ने द्युस्थान (स्वर्गलोक)–के धाता, सविता, विष्णु और अग्नि देवता से ही बृहत्साम का ज्ञान प्राप्त किया'। 8 यह बात भारद्वाज ऋषि की श्रेष्ठता और विशेषता दोनों दर्शाती है।

- ’साम’ का अर्थ है (सा+अम:) ऋचाओं के आधार पर आलाप। ऋचाओं के आधार पर किया गया गान ’साम’ है। ऋषि भारद्वाज ने आत्मसात किया था ’बृहत्साम’।
- ब्राह्मण–ग्रन्थों की परिभाषाओं के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि ऋचाओं के आधार पर स्वर प्रधान ऐसा गायन जो स्वर्गलोक, आदित्य, मन, श्रेष्ठत्व और तेजस को स्वर–आलाप में व्यंजित करता हो, ’बृहत्साम’ कहा जाता है। ऋषि भारद्वाज ऐसे ही बृहत्साम–गायक थे। वे चार प्रमुख साम–गायकों– गौतम, वामदेव, भारद्वाज और कश्यप की श्रेणी में गिने जाते हैं।
- संहिताओं में ऋषि भारद्वाज के इस ’बृहत्साम’ की बड़ी महिमा बतायी गयी है। काठक–संहिता में तथा ऐतरेय–ब्राह्मण में कहा गया है कि ’इस बृहत्साम के गायन से शासक सम्पन्न होता है तथा ओज, तेज़ और वीर्य बढ़ता है। ’राजसूय यज्ञ’ समृद्ध होता है। राष्ट्र और दृढ़ होता है।
- राष्ट्र को समृद्ध और दृढ़ बनाने के लिये भारद्वाज ने राजा प्रतर्दन से यज्ञ में इसका अनुष्ठान कराया था, जिससे प्रतर्दन का खोया राष्ट्र उन्हें मिला था’।
- प्रतर्दन की कथा महाभारत के अनुशासन पर्व में आयी है।

भारद्वाज के विचार –

- भारद्वाज कहते हैं अग्नि को देखो, यह मरणधर्मा मानवों में मौजूद अमर ज्योति है। यह अग्नि विश्वकृष्टि है अर्थात् सर्वमनुष्य रूप है। यह अग्नि सब कर्मों में प्रवीणतम ऋषि है, जो मानव में रहती है, उसे प्रेरित करती है ऊपर उठने के लिये। अत: पहचानो।
- मानवी अग्नि जागेगी। विश्वकृष्टि को जब प्रज्ज्वलित करेंगे तो उसे धारण करने के लिये साहस और बल की आवश्यकता होगी। इसके लिये आवश्यक है कि आप सच्चाई पर दृढ़ रहें।

- ऋषि भारद्वाज कहते हैं– 'हम झुकें नहीं। हम सामर्थ्यवान के आगे भी न झुकें। दृढ़ व्यक्ति के सामने भी नहीं झुकें। क्रूर–दुष्ट–हिंसक–दस्यु के आगे भी हमारा सिर झुके नहीं'।
- ऋषि समझाते हैं कि जीभ से ऐसी वाणी बोलनी चाहिये कि सुनने वाले बुद्धिमान बनें।
- हमारी विद्या ऐसी हो, जो कपटी दुष्टों का सफाया करे, युद्धों में संरक्षण दे, इच्छित धनों का प्राप्त कराये और हमारी बुद्धियों को निन्दित मार्ग से रोके।
- भारद्वाज ऋषि का विचार है कि हमारी सरस्वती, हमारी विद्या इतनी समर्थ हो कि वह सभी प्रकार के मानवों का पोषण करे। 'हे सरस्वती! सब कपटी दुष्टों की प्रजाओं का नाश कर।'
- हे सरस्वती! तू युद्धों में हम सबका रक्षण कर।
- हे सरस्वती! तू हम सबकी बुद्धियों की सुरक्षा कर।
- इस प्रकार भारद्वाज के विचारों में वही विद्या है, जो हम सबका पोषण करे, कपटी दुष्टों का विनाश करे, युद्ध में हमारा रक्षण करे, हमारी बुद्धि शुद्ध रखे तथा हमें वाञ्छित अर्थ देने में समर्थ हो।
- ऐसी विद्या को जिन्होंने प्राप्त किया है, ऋषि का उन्हें आदेश है– 18अरे, ओ ज्ञान को प्रत्यक्ष करने वाले! प्रजाजनों को उस उत्तम ज्ञान को सुनाओ और जो दास हैं, सेवक हैं, उनको श्रेष्ठ नागरिक बनाओ।
- ज्ञानी, विज्ञानी, शासक, कुशल योद्धा और राष्ट्र को अभय देने वाले ऋषि भरद्वाज के ऐसे ही तीव्र तेजस्वी और प्रेरक विचार हैं।

रामायण से –

- राम, लक्ष्मण और सीता गंगा पार करने के उपरांत चलते–चलते गंगा–यमुना के संगमस्थल पर श्री भारद्वाज के आश्रम में पहुंचे। महर्षि भारद्वाज

अपने शिष्यों से घिरे बैठे थें राम ने अपना परिचय दिया। भारद्वाज ने उन तीनों का स्वागत किया। रात–भर वहां रहकर राम, सीता और लक्ष्मण ने श्री भारद्वाज के परामर्श के अनुसार चित्रकूट पर्वत की ओर प्रस्थान किया।

- राम से मिलने के लिए भरत अपनी सेना के साथ वन की ओर चले। मार्ग में मुनि भारद्वाज के आश्रम में पहुंचे। पहले भारद्वाज ने शंका की कि कहीं वे राम के अहित की कामना से तो नहीं आये हैं। तदुपरांत उन्हें सेना समेत आतिथ्य स्वीकार करने को कहा। भारद्वाज अपनी अग्निशाला में गये। आचमन करने के उपरांत उन्होंने विश्वकर्मा का आह्वान किया और आतिथ्य में सहायता मांगी, इसी प्रकार इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर से भी उन्होंने सहायता मांगी। फलस्वरूप उन्होंने मदिरा, सुंदर अप्सराएं तथा सुंदर महल एवं उपवनों के अनायास आविर्भाव से उन सबको पूर्ण तृप्त किया।

***

गौतम

(अक्षपाद गौतम)

गौतम जिन्हें 'अक्षपाद गौतम' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है, 'न्याय दर्शन' के प्रथम प्रवक्ता माने जाते हैं। इनकी पत्नी का नाम अहल्या और पुत्र तथा पुत्री के नाम क्रमश: शतानन्द व विजया थे। अक्षपाद गौतम ने 'न्याय दर्शन' का निर्माण तो शायद नहीं किया, पर यह कहा जा सकता है कि न्याय दर्शन का सूत्रबद्ध, व्यवस्थित रूप अक्षपाद के 'न्यायसूत्र' में ही पहली बार मिलता है। महर्षि गौतम

परम तपस्वी एवं संयमी थे। महाराज वृद्धाश्व की पुत्री अहिल्या इनकी पत्नी थी, जो महर्षि के शाप से पाषाण बन गयी थी। त्रेता युग में भगवान श्रीराम की चरण–रज से अहिल्या का शापमोचन हुआ, जिससे वह पाषाण से पुन: ऋषि पत्नी बनी।

धनुर्धर तथा स्मृतिकार –

महर्षि गौतम बाण विद्या में अत्यन्त निपुण थे। जब वे अपनी बाणविद्या का प्रदर्शन करते और बाण चलाते तो देवी अहिल्या बाणों को उठाकर लाती थी। एक बार वे देर से लौटीं। ज्येष्ठ की धूप में उनके चरण तप्त हो गये थे। विश्राम के लिये वे वृक्ष की छाया में बैठ गयी थीं। महर्षि ने सूर्य देवता पर रोष किया। सूर्य ने ब्राह्मण के वेष में महर्षि को छात्ता और पादत्राण (जूता) निवेदित किया। उष्णता निवारक ये दोनों उपकरण उसी समय से प्रचलित हुए। महर्षि गौतम न्यायशास्त्र के अतिरिक्त स्मृतिकार भी थे तथा उनका धनुर्वेद पर भी कोई ग्रन्थ था, ऐसा विद्वानों का मत है। उनके पुत्र शतानन्द निमि कुल के आचार्य थे। गौतम ने गंगा की आराधना करके पाप से मुक्ति प्राप्त की थी। गौतम तथा मुनियों को गंगा ने पूर्ण पतित्र किया था, जिससे वह 'गौतमी' कहलायीं। गौतमी नदी के किनारे त्र्यंबकम् शिवलिंग की स्थापना की गई, क्योंकि इसी शर्त पर वह वहाँ ठहरने के लिए तैयार हुई थीं।

न्याय दर्शन में गौतम –

उपलब्ध न्याय दर्शन के आदि प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं। यही 'अक्षपाद' नाम से भी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने उपलब्ध न्यायसूत्रों का प्रणयन किया तथा इस आन्वीक्षिकी को क्रमबद्ध कर शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठापित किया। न्यायवार्त्तिककार उद्योतकराचार्य ने इनको इस शास्त्र का कर्ता नहीं वक्ता कहा है–

यदक्षपाद: प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद।।1।।

अत: वेद विद्या की तरह इस आन्वीक्षिकी को भी विश्वस्रष्टा का ही अनुग्रहदान मानना चाहिए। महर्षि अक्षपाद से पहले भी यह विद्या अवश्य रही होगी। इन्होंने तो सूत्रों में बाँधकर इसे सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध एवं पूर्णांग करने का सफल प्रयास

किया है। इससे शास्त्र का एक परिनिष्ठित स्वरूप प्रकाश में आया और चिन्तन की धारा अपनी गति एवं पद्धति से आगे की ओर उन्मुख होकर बढ़ने लगी। वात्स्यायन ने भी न्यायभाष्य के उपसंहार में कहा है कि ऋषि अक्षपाद को यह विद्या प्रतिभात हुई थी–

योऽक्षपादमृर्षि न्यायः प्रत्यभाद् वदतां वरम्।

न्यायसूत्रों के परिसीमन से भी ज्ञात होता है कि इस शास्त्र की पृष्ठभूमि में अवश्य ही चिरकाल की गवेषणा तथा अनेक विशिष्ट नैय्यायिकों का योगदान रहा होगा। अन्यथा न्यायसूत्र इतने परिष्कृत एवं परिपूर्ण नहीं रहते। चतुर्थ अध्याय में सूत्रकार ने प्रावादुकों के मतों का उठाकर संयुक्तिक खण्डन किया है तथा अपने सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा की है। इससे प्रतीत होता है कि उनके समक्ष अनेक दार्शनिकों के विचार अवश्य उपलब्ध थे। महाभारत में भी इसकी पुष्टि देखी जाती है। वहाँ कहा गया है कि न्यायदर्शन अनेक हैं। उनमें से हेतु, आगम और सदाचार के अनुकूल न्यायशास्त्र पारिग्राह्य है–

न्यायतन्त्राण्यनेकानि तैस्तैरुक्तानि वादिभिः।

हेत्वागमसदाचरैर्यद् युक्तं तत्प्रगृह्यताम्।।2।।

महाभारत में उल्लेख –

महाभारत के अध्ययन से विदित होता है कि गौतमीय न्याय दर्शन के सिद्धान्त उस समय के विद्वत्समाज में अधिक प्रचलित थे। उस समय के प्रमुख राष्ट्रहित चिन्तक देवर्षि नारद को पंचाव्यवयुक्त न्यायवाक्य का ज्ञाता कहा गया है। यद्यपि न्याय का दशावयववाद भी कभी प्रसिद्ध रहा होगा, जो परवर्तीकाल में किसी एक देशीय नैय्यायिक की परम्परा में सुरक्षित रहा, किन्तु महर्षि गौतम को वह मान्य नहीं था। अतः उसका उल्लेख एवं खण्डन 'न्यायभाष्य' में देखा जाता है। महाभारत में इस दशावयववाद का संकेत नहीं मिलता है। साथ ही महाभारत में अनेक स्थलों पर पंचावयव न्यायवाक्य का उल्लेख हुआ है। शान्तिपर्व में महर्षि

व्यास ने युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहा है कि प्रत्यक्ष आदि प्रमाण तथा प्रतिज्ञा आदि पञ्चावयव न्यायवाक्य प्रमेय की सिद्धि के लिए प्रयोजनीय है। ये अनेक वर्गों की सिद्धि के साधन हैं। इनमें भी प्रत्यक्ष और अनुमान निर्णय के प्रमुख आधार के रूप में स्वीकृत हैं।

प्रत्यक्षमनुमानं च उपमानं तथागमः।

प्रतिज्ञा चैव हेतुश्च दृष्टान्तोपनयौ तथा।

उक्तं निगमनं तेषां प्रमेयञ्च प्रयोजनम्।

एतानि साधनान्याहुर्वहुवर्गप्रसिद्धये।।

प्रत्यक्षमनुमानं च सर्वेषां योनिरिष्यते।।3।।

आदिपर्व में वर्णित है कि कण्व ऋषि के आश्रम में अनेक नैयायिक रहा रकते थे, जो न्यायतत्त्वों के कार्यकारणभाव, कथासम्बन्धी स्थापना, आक्षेप और सिद्धान्त आदि के ज्ञाता थे।।4।। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में नैय्यायिकगण उपस्थित थे, जो परस्पर विजय की इच्छा रखते थे।

तस्मिन् यज्ञे प्रवृत्ते तु वाग्मिनो हेतुवादिनः।

हेतुवादान् बहूनाहुः परस्परजिगीषवः।।5।।

न्याय दर्शन मोक्षावस्था में धर्म तथा अधर्म आदि आत्मविशेष गुणों का उपरम स्वीकार करता है। इसका संकेत महाभारत में मिलता है–

अपुण्यपुण्योपरमे यं पुनर्भवनिर्भयाः।

शान्ताः सन्न्यासिनो यान्ति तस्मै मोक्षात्मने नमः।।6।।

न्यायभाष्य के हेय, हान, उपाय और अधिगन्तव्य रूप चार प्रसिद्ध अर्थतत्त्व महाभारत में स्पष्टतः निर्दिष्ट हैं–

दु:खं विद्यादुपादानादभिमानाच्च वर्धते।

त्यागात्तेभ्यो निरोध: स्यात् निरोधज्ञो विमुच्यते।।7।।

महाराज युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश देते समय पितामह भीष्म ने कहा है कि प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा आगम रूप न्यायदर्शन के प्रसिद्ध प्रमाणों से परीक्षित कर अपने तथा पराये की पहचान रखना आवश्यक है।

प्रत्यक्षेणानुमानेन तथोपम्यागमैरपि।

परीक्ष्यास्ते महाराज स्वे परे चैव नित्यश:।।8।।

इससे प्रतीत होता है कि न्यायविद्या चिरकाल से ही दृढ़मूल की तरह विशाल और वैविध्यपूर्ण रही है, जो वेद, पुराण, स्मृति तथा महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में विकीर्ण है। न्यायसूत्रकार महर्षि गौतम के समक्ष सुदृढ आधारशिला की तरह न्याय दर्शन के अनेक प्रसिद्ध सिद्धान्त उपलब्ध थे। इनमें से युक्तिसंगत सिद्धान्तों का चयन कर उसे शास्त्र रूप में प्रतिष्ठित करने के श्रेयस का लाभ इन्होंने किया। फलस्वरूप आज हम लोगों को पूर्णांग, सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध न्यायदर्शन उपलब्ध है।

न्यायसूत्र के रचयिता –

चरक संहिता के विमान स्थान में संभाषा विधि की चर्चा आती है, और उसमें वादमार्ग ज्ञान के लिए जानने लायक़ तत्वों की जो सूची मिलती है, वही सूची गौतम के सोलह पदार्थों के लिए आधारभूत थी, ऐसा तर्क किया जा सकता है। सतीश चन्द्र विद्याभूषण के मत में 'चरकसंहिता' में मिलने वाला न्याय दर्शन मेधातिथि गौतम द्वारा प्रतिपादित न्याय दर्शन है। उनके मत में अक्षपाद से पहले न्याय दर्शन के रचयिता, मेधातिथि गौतम हुए थे, जिनका उल्लेख महाभारत, भासकृत प्रतिभानाटक जैसे ग्रन्थों में मिलता है। विद्याभूषण के अनुसार अक्षपाद गौतम ने ही न्याय दर्शन को वह रूप दिया, जिस रूप में न्याय दर्शन आज उपलब्ध है। आधुनिक पंडित कहने लगे हैं कि न्यायसूत्र का कोई एक कर्ता नहीं

है, बल्कि न्यायसूत्र कई भागों में विकसित हुआ, जिनमें से पहले कुछ की रचना ईसा पूर्व है। आज न्यायसूत्र का जो रूप दिखाई देता है, उसका पूर्ण रूप दूसरी सदी में सम्पन्न हुआ। जी. ओबर हैमर का कहना है कि न्यायसूत्र के पहले और आखिरी (पांचवें) अध्याय का काल बहुत ही प्राचीन है। उसके मत में तीसरे और चौथे अध्याय किसी दूसरी कृति से लिए गए थे, और चौथी सदी के बाद वे बाकी अध्यायों के साथ जोड़ दिये गए।

न्याय दर्शन के पदार्थ –

एक बात निश्चित है कि अक्षपाद के नाम से प्रचलित न्यायसूत्र न केवल प्राचीन नैयायिकों के लिए, बल्कि नव्य नैयायिकों के लिए भी एक प्रमाणभूत ग्रन्थ रहा। यद्यपि न्याय दर्शन एक परिवर्तनशील दर्शन प्रतीत होता है, तथापि हर एक नैयायिक अक्षपाद गौतम को आप्त (यथार्थवक्ता) के रूप में देखता है और उनके वचनों को कभी अपनी मती के तो कभी प्रचलित न्याय परम्परा के अनुसार स्पष्टीकरण और समर्थन करने का प्रयास करता है। गौतम के न्याय दर्शन का प्रधान प्रतिपाद्य विषय प्रमाण और वाद है। इसीलिए गौतम का न्याय दर्शन मुख्यत: प्रणालीशास्त्र है। उसे मूलत: सत्ता शास्त्र कहना कठिन है। गौतम इस बात का ध्यान भी ज़रूर रखते हैं कि प्रमाण और वाद तत्वज्ञान के साधनमात्र हैं। 'पदार्थों' का अच्छी तरह से ज्ञान होने से मनुष्य मोक्ष के लायक़ बन सकता है, और 'पदार्थों' के ज्ञान के लिए प्रमाण और वाद साधन हैं, जिनका ज्ञान न्याय दर्शन का प्रमुख क्षेत्र है।

गौतम के न्याय दर्शन के सोलह पदार्थ इस प्रकार हैं– प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह स्थान।

अध्याय संख्या –

गौतम के न्यायसूत्र के पांच अध्याय हैं। पहले अध्याय में गौतम ने सोलह पदार्थों

की सूची देते हुए उनके लक्षण तथा कुछ स्थूल प्रकार दिए हैं। दूसरे अध्याय में गौतम ने संशय और प्रमाण की विशेष परीक्षा की है। तीसरे और चौथे अध्याय में प्रमेयों का विशेष विवेचन किया है। पांचवें अध्याय में गौतम ने जाति और निग्रह स्थान का सविस्तार वर्गीकरण किया है। इससे मालूम होता है कि यद्यपि गौतम ने सोलह पदार्थों का लक्षण तथा वर्गीकरण किया है, तथापि प्रमाण, प्रमेय तथा संशय, इन तीन पदार्थों को उन्होंने विशेष परीक्षा की है। प्रमेयों का विवेचन गौतम ने बड़े विस्तार से किया है और यह करते समय समकालीन सत्ताशास्त्रीय सिद्धांतों की चर्चा भी गौतम ने की है। इस विवेचन में जिन मतों का खंडन मिलता है, उसमें चार्वाकों का देहात्मक, सांख्यों का परिणामवाद, अभावकारणवाद(9), ईश्वर कारणवाद 'सब कुछ अनित्य है' अभ्युपगम10, 'सब कुछ नित्य है' यह अभ्युपगम, जो ब्रह्मवाद के नजदीक आता है, 'सब कुछ पृथक् है' यह अभ्युपगम, जो 'सब कुछ स्वलक्षण है' इस बौद्धमत से सामर्थ्य रखता है, इत्यादि बहुत से सिद्धांत हैं। इसमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बौद्ध दर्शन में पाये जाने वाले अनेक विचार गौतम ने पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किए हैं। गौतम ने मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति और अपवर्ग में जो कारण–कार्य संबंध बताया है11 वह बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत का आंशिक अनुकरण मालूम होती है। इस सब निर्देशों से प्रतीत होता है कि अक्षपाद गौतम बुद्ध के पश्चातवर्ती थे और अंशत: बौद्ध विचारों से प्रभावित थे।

ईश्वरकारणवाद का खंडन –

परम्परा में माना गया है कि गौतम ने अभाव से भाव की उत्पत्ति होने का जो सिद्धांत पूर्वपक्ष के रूप में लिया है, वह बौद्धों का शून्यवाद है। गौतम की प्रमेय परीक्षा में और एक बात पर प्रकाश पड़ता है। परम्परा में माना जाता है कि न्याय दर्शन शुरू से ईश्वरनिष्ठ दर्शन है। लेकिन इस प्रमेय परीक्षा में गौतम ईश्वरकारणवाद का खंडन करते हुए नज़र आते हैं। टीकाकारों ने इस ईश्वर खंडन का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि गौतम ने वेदान्तियों के इस सिद्धांत का

खंडन किया है कि ईश्वर जगत् का उपादान करण है। लेकिन ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है, इस मत का गौतम ने समर्थन ही किया है। पर जिस सूत्र का आधार ये टीकाकार लेते हैं, उसका अर्थ निमित्त कारण ईश्वर के अनुकूल लगाना और प्रकृत संदर्भ में उसकी संतोषजनक उत्पत्ति देना कठिन है। गौतम ईश्वरवादी नहीं थे, यह सिद्ध करने के लिए दूसरा भी आधार मिलता है। गौतम के मत में अपवर्ग प्राप्ति के लिए जिन पदार्थों का ज्ञान आवश्यक था, उन पदार्थों का समावेश गौतम ने 'प्रमेय' तत्त्व में किया था। उन प्रमेयों की सूची में पहला ही प्रमेय आत्मा है। गौतम ने आत्मा का जो विवरण दिया है, उससे स्पष्ट है कि गौतम का उल्लिखित आत्मा 'जीवात्मा' ही था। गौतम की प्रमेय सूची में 'परमात्मा' का कोई स्थान नहीं है। अगर गौतम ईश्वरवादी होते तो उन्होंने प्रमेयों की सूची में ईश्वर को विशेष स्थान दिया होता। भासर्वज्ञ नामक पश्चातवर्ती नैयायिक के 'न्यायसार' में हम देख सकते हैं कि वहाँ ईश्वर ही सबसे अधिक महत्त्व रखने वाला प्रमेय माना गया है।

तत्वज्ञान की प्राप्ति –

गौतम के अनुसार तत्वज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रमाणों का सहारा लेना आवश्यक है तथा तत्वज्ञान का संरक्षण तथा संवर्धन करने के लिए वाद पद्धति का सहाय्य ज़रूरी है। गौतम कहते हैं कि जिस प्रकार बगीचे को पशुओं से तथा चोरों से बचाने के लिए उसकी सीमाओं पर कांटें बिखेरने पड़ते हैं, उसी प्रकार अल्प, वितण्डा आदि वाद प्रकारों का बुरे होते हुए भी तत्वनिश्चय का रक्षण करने के लिए इस्तेमाल करना पड़ता है। नैयायिकों को चाहिए कि वे उनका इस्तेमाल जब कभी ज़रूरत हो करें।

यथार्थ ज्ञान के साधन –

गौतम के अनुसार प्रमाण, यथार्थ ज्ञान के चार साधन हैं–

प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण, उपमान प्रमाण, शब्द प्रमाण,

प्रत्यक्ष प्रमाण –

इन्द्रियों का विषय के साथ संबंध होने पर जो ज्ञान मिलता है, जो शब्दात्मक नहीं होता, तथा जो बाद में खंडित या बाधित न होने वाला निश्चयात्मक ज्ञान होता है, वही प्रत्यक्ष है। गौतम ने, प्रमा–यथार्थ अनुभव और प्रमाण, उस यथार्थ अनुभव का कारण याने साधन, इनमें अन्तर नहीं किया, इसीलिए उन्होंने प्रत्यक्ष प्रमाण को ही प्रत्यक्ष प्रमाण कर दिया है। पश्चातवर्ती नैयायिकों ने प्रमा और प्रमाण में होने वाला अन्तर स्पष्ट किया। जयंतभट्ट ने अपनी 'न्यायमंजरी' में दिखाया है कि प्रत्यक्ष प्रमाण के इस गौतमकृत लक्षण में 'खंडित न होने वाला निश्चयात्मक ज्ञान'12 यह वर्णन सब प्रमाणों को समान रूप से लागू होता है।

अनुमान प्रमाण –

प्रत्यक्ष के बाद गौतम ने अनुमान का वर्णन किया है। गौतम ने अनुमान का 'लक्षण' नहीं दिया। अनुमान 'प्रत्यक्षपूर्वक' ज्ञान है। लेकिन प्रत्यक्षपूर्वकत्व तो उपमान और शब्द प्रमाण में भी समान है। इसलिए गौतम के किये हुए अनुमान के वर्गीकरण के आधार पर अनुमान का अन्य प्रमाणों से भेद करने की कोशिश न्यायसूत्र के टीकाकारों ने की है। गौतम के अनुसार अनुमान तीन प्रकार का है– पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। इस वर्गीकरण का निश्चित अर्थ बताने में वास्त्यायन, उद्योतकर आदि असफल रहे हैं। लेकिन सांख्यकारिका की गौडपादकृत टीका तथा दिङनागपूर्व बौद्ध तर्कग्रन्थों में पाये जाने वाले उल्लेखों के आधार पर हम इस वर्गीकरण का अर्थ स्थूल रूप में इस प्रकार बता सकते हैं–

(1) जिसमें पूर्वकालीन उदाहरणों के आधार पर वर्तमानकालीन या भविष्यकालीन साध्य सिद्ध किया जाता है, वह पूर्ववत् अनुमान है। जैसे कि आसमान में बादल घिरे हुए देखकर हम अनुमान लगाते हैं कि अब बारिश होगी। या धूप और अग्नि का हमेशा साथ रहना हमने देखा है, इससे हम वर्तमान में देखे गए धूम के बारे में अनुमान लगाते हैं कि यह धूम भी किसी अग्नि से उत्पन्न हुआ है।

(2) जिसमें वर्तमान वस्तु स्थिति का ही एकदेश देखकर उसके अवशिष्ट देश के सम्बन्ध में अनुमान किया जाता है, वह शेषवत् अनुमान है। जैसे कि समुद्र की एक बूँद चखकर समुद्र का सारा पानी खारा है, ऐसा अनुमान।

(3) जिस अनुमान में दिये जाने वाले प्रत्यक्ष दृष्ट उदाहरण साध्य के साक्षात् उदाहरण नहीं है, साध्य की जाति के नहीं हैं, बल्कि साध्य के सदृश हैं, वह अनुमान सामान्य यानी सादृश्य पर आधारित होने के कारण सामान्यतोदृष्ट कहलाता है, बल्कि साध्य का दर्शन सादृश्य के माध्यम से ही हो सकता है। जैसे कि चंद्र की गति हम प्रत्यक्षतः नहीं देख सकते, लेकिन चंद्र अपना स्थान बदलता है, इतना हम देख सकते हैं। इस स्थानान्तरण से हम अनुमान लगाते हैं कि चंद्र ज़रूर गतिमान है। उसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियों का प्रत्यक्ष ज्ञान हमें कभी नहीं होता है, बल्कि दूसरे क्रियासाधकों के साथ सादृश्य जानकर ज्ञान साधन के रूप में हम सिर्फ़ उनका अनुमान ही कर सकते हैं।

उपमान प्रमाण –

तीसरा उपमान प्रमाण है। उपमान किसी अप्रसिद्ध वस्तु की ऐसी जानकारी है, जो प्रसिद्ध वस्तु के साथ उसका साधर्म्य जानकर होती है। जैसे हमें अगर गवय नामक प्राणी की जानकारी न हो और हमें किसी सत्य वक्ता ने बताया हो कि गवय बैल होता है, तो उसके बताए हुए सादृश्य के आधार पर हम गवय को पहचान सकते हैं। चौथा शब्द प्रमाण है, जो आप्त (यथार्थवक्ता) का वचन है।

शब्द प्रमाण –

आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, (पंच ज्ञानेन्द्रिय), अर्थ (रूपरसगन्धस्पर्शशब्द) बुद्धि (ज्ञान), मनस, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (मरणोत्तर अस्तित्व) फल, दुःख और अपवर्ग (मोक्ष) यह बारह प्रमेय हैं। इनके स्वरूप का ज्ञान अपवर्ग के लिए उपयोगी है। गौतम मानते हैं कि अपवर्ग के लिए सर्वप्रथम मिथ्या ज्ञान का नाश होना चाहिए। उसी से काम, क्रोधादि दोषों का नाश हो सकता है। उससे कर्म के

प्रति प्रवृत्ति का नाश होगा तथा प्रवृत्ति नाश से ही पुनर्जन्म श्रृंखला खंडित होगी। पुनर्जन्म श्रृंखला खंडित होने से ही दु:ख का नाश होगा और दु:ख नाश ही अपवर्ग का स्वरूप है। इसीलिए यह स्वाभाविक ही है कि दु:ख, जन्म (प्रत्यभाव), प्रवृत्ति, दोष, ज्ञान तथा अपवर्ग और इनके आश्रयभूत द्रव्य आत्मा, शरीर, इन्द्रिए, अर्थ और मनस के स्वरूप के बारे में मिथ्या ज्ञान नष्ट हो, क्योंकि यथार्थ ज्ञान होना अपवर्ग के लिए अत्यावश्यक है। इस प्रकार गौतम के प्रमेयों की सूची उनके द्वारा प्रतिपादित मोक्ष मार्ग से ताल्लुक रखती है।

जब किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु के अनेक समान धर्म दिखाई देते हैं, जैसे– खम्भे में ऊँचाई, कालापान आदि जो किसी मनुष्य में भी दिखाई देते हैं, लेकिन जिनके आधार पर भेद किया जा सके, ऐसे विशेष धर्म स्पष्ट नहीं दिखाई देते, तब संशय पैदा होता है, जैसे– खम्भे के बारे में यह खम्भा है, ऐसा निश्चय न हो, बल्कि खम्भापन और मनुष्यत्व इन दोनों विशेष धर्मों का स्मरण हो, तब दोनों विशेष धर्मों में से कौन–सा विशेष धर्म है, आगे आने वाली वस्तु खम्भा है या मनुष्य, ऐसा संशय हो सकता है। न्याय दर्शन में संशय का बड़ा महत्व है। प्राचीन नैयायिकों ने कहा है कि संशय ही न्याय का द्वार है।

सिद्धांत के प्रकार –

जिस उद्देश्य से कोई प्राणी प्रवृत्त होता है, वह प्रयोजन है। जिसके बारे में सामान्य जन तथा परीक्षक दोनों की सहमति होती है, वह दृष्टांत कहलाता है। सिद्धांत चार प्रकार का होता है–

(1) सर्वतंत्र – यह सब शास्त्रकारों को मान्य है।

(2) प्रतितंत्र – यह थोड़े ही शास्त्रकारों को मान्य है।

(3) अधिकरण– जिसके आधार पर दूसरे सिद्धांत सिद्ध किए जाते हैं।

(4) अभ्युपगम – जो किसी दूसरे सिद्धांत की सिद्धि के लिए थोड़ी देर के लिए स्वीकृत किया जाता है।

न्याय में अवयव एक विशेष तत्व है। अवयव का अर्थ है, अनुमान के घटक, जब कोई व्यक्ति किसी हेतु पर आधारित अनुमान का प्रयोग करता है, तब उसे एक विशिष्ट आकार में ही प्रस्तुत करना चाहिए, ऐसा तार्किक मानते हैं। वह उचित आकार क्या है, इसके बारे में दार्शनिकों में मतभेद हैं। गौतम के और बाद में हुए वैशेषिकों के अनुसार यह आकार पांच घटकों स बनता है– प्रतिज्ञा (साध्य का कथन), हेतु (हेतु या साधन का कथन), दृष्टांत (उदाहरण), उपनय (दृष्टांत और साध्य में अपेक्षित साधर्म्य या वैधर्म्य का प्रदर्शनश) और निगमन (निष्कर्ष का प्रतिपादन)। कारणोत्पत्ति के (कार्यकारण भाव के) आधार पर तत्व निश्चिति की दिशा में जो विचार किया जाता है वह विचार तर्क है। पक्ष और प्रतिपक्ष का विचार करते हुए जो पदार्थ का निश्चय किया जाता है, वही निर्णय है।

संभाषा का वर्गीकरण

चरकसंहिता में संभाषा का (चर्चा, बहस) वर्गीकरण दो प्रकारों में किया गया था–

(1) संधायसंभाषा – जब दो वादी एक दूसरे का पराभव करने की और खुद विजय पाने की इच्छा नहीं रखते हैं, बल्कि ज्ञान पाने के लिए चर्चा करते हैं, तब वह चर्चा संधायसंभाषा कहलाती है।

(2) विगृह्यसंभाषा – जब बहस में प्रतिपक्ष को पराजित करने की इच्छा रहती है, तब वह बहस विगृह्यसंभाषा कहलाती है।

गौतम ने न्यायसूत्र में संधायसंभाषा का ही उल्लेख 'वाद' नाम से किया तथा जिसे चरक ने विगृह्यसंभाषा कहा, उसी का वर्गीकरण जल्प और वितण्डा में किया। जल्प और वितण्डा में अन्तर यह है कि जल्प करने वाला अपना पक्ष स्थापन करते हुए प्रतिपक्ष का खंडन करने का प्रयास करता है। वितण्डा करने वाला भी प्रतिपक्ष का खंडन करने का यत्न ज़रूर करता है, लेकिन अपना कोई पक्ष स्थापित नहीं करता। पाश्चात्य दर्शनों में जिसे संशयवाद (स्केप्टिसिज़्म) के

नाम से जाना जाता है, उसका व्यवहार वितण्डा का अनुपम उदाहरण है।

हेत्वाभास – अनुमानों में जो हेतु पेश किया जाता है, वह सदोष हो तो उसे हेत्वाभास कहते हैं। गौतम ने पांच हेत्वाभासों का निर्देश किया है। बाद में उन हेत्वाभासों का अर्थ बदला, नाम और संख्या वही क़ायम रखी गयी। वाद, जल्प और वितण्डा, तीनों प्रकार की बहस में हेत्वाभास संभव है। जब वादी प्रतिवादी के बोलने का दूसरा ही अर्थ लगाकर प्रतिवादी के बोलने में बाधा डालता है, तब उसे छल कहा जाता है। गौतम ने उसके तीन प्रकार बताए हैं।

जाति का अर्थ – जाति का अर्थ है आक्षेप, जो साधर्म्य या वैधर्म्य के आधार पर उपस्थित किया जाता है। जब वादी की युक्ति का खंडन किसी समर्थ प्रतियुक्ति से करना प्रतिवादी के लिए संभव नहीं होता, तब प्रतिवादी साधर्म्याश्रित या वैधर्म्याश्रित आक्षेप का प्रयोग करता है। यह आक्षेप समर्थ नहीं होता, लेकिन समर्थ आक्षेप का आधार होता है। इसलिए बाद में इसे दूषणाभास नाम मिला। चरकसंहिता में 'उत्तर' नाम का तत्व उल्लिखित है, जो जाति के सदृश है। लेकिन वाद पद्धति में महत्त्व रखने वाले इस जाति तन्त्र का विस्तृत विचार पहले गौतम ने ही प्रस्तुत किया, ऐसा मालूम पड़ता है। गौतम ने जाति के चौबीस प्रकारों का निर्देश किया है। इससे बाद में हमेशा प्रयुक्त की जाने वाली युक्तियों का गौतम ने कितनी गहराई से अध्ययन किया था, यह भी स्पष्ट दिखाई देता है। अरस्तु की 'सोफ़िस्टिकल रेफ़्युटेशंस' में जो तत्व है, वही जाति का मूल तत्व दीखता है। गौतम ने समकालीन सोफ़िस्टों का अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि किसी एक हद तक (अच्छे उद्देश्यों से प्रेरित) सोफ़िज्म का प्रस्ताव भी किया था।

निग्रह स्थान – जब कोई वादी अपना पक्ष सफलता के साथ सिद्ध करता है तथा प्रतिपक्ष का दोष स्पष्टता के साथ दिया जाता है, तब प्रतिपक्ष पराभूत होता है। वही प्रतिपक्ष के पराभव का स्थल है, जिसे गौतम ने निग्रह स्थान कहा। जाति और निग्रह स्थान के प्रकारों का विशद विवेचन गौतम ने पांचवें अध्याय में किया है। गौतम के पहले जो न्याय दर्शन प्रवृत्त हुआ था, उसे आन्वीक्षिकी कहा जाता

है। आन्वीक्षिकी के अर्थ दो हैं– हेतुविद्या और आत्मविद्या। ऐसा लगता है कि गौतम से पहले न्याय का स्वरूप प्रमाणविद्या तथा वादविद्या ही था। न्याय की कोई अपनी सत्ताशास्त्रीय भूमिका नहीं थी। यद्यपि गौतम का न्याय दर्शन भी प्रस्तुत रूप से प्रमाणविद्या तथा वादविद्या ही था तथापि गौतम ने प्रमेय पदार्थ का सविस्तार विचार करते हए 'आत्मा' को न्याय दर्शन का एक विचार्य विषय बनाकर उसका प्रतिपादन किया। इस प्रकार गौतम का न्याय दर्शन हेतु विद्या और आत्म विद्या इन दोनों अर्थों में आन्वीक्षिकी सिद्ध हुआ।

टीका टिप्पणी –

1. न्यायवार्त्तिक का मंगलाचरण।
2. महाभारत शान्तिपर्व 210.22
3. शान्तिपर्व महाभारत 24.11–14
4. महाभारत, आदिपर्व 71.42–45
5. आश्वमेधिकपर्व 85.57
6. शान्तिपर्व महाभारत 47.36
7. शान्तिपर्व महाभारत 241.19
8. शान्तिपर्व महाभारत 56.41
9. जिसका वर्गीकरण बौद्धों के शून्यवाद के साथ किया जाता है
10. जो कि बौद्धों का माना जा सकता है
11. (न्यायसूत्र 1.12)
13. अव्यभिचारी, व्यवसायात्मक ज्ञानम्

***

नोट – यह bharatdiscovery.org से साभार लिया है।

जमदग्नि ऋषि

(पुराणों में एक ऋषि)

जमदग्नि ऋषि एक ऋषि थे, जो भृगुवंशी ऋचीक के पुत्र थे तथा जिनकी गणना सप्तऋषियों में होती है। पुराणों के अनुसार इनकी पत्नी रेणुका थीं, व इनका आश्रम सरस्वती नदी के तट पर था। इनके पांच पुत्र हुए,वैशाख शुक्ल तृतीया इनके पांचवें प्रसिद्ध पुत्र प्रदोषकाल में जन्मे थे जिन्हें परशुराम के नाम से जाना जाता है। जमदग्नि गोत्र के ब्राह्मण इन्ही ऋषि जमदग्नि के वंशज हैं।

आश्रम – हरियाणा में कैथल से उत्तरपूर्व की ओर 28 किलोमीटर की दूरी पर जाजनापुर गाँव स्थित है। यहां महर्षि जमदग्नि का आश्रम था। अब यहां एक सरोवर अवशेष रूप में हैं। यहां प्रत्येक मास की शुक्ल पक्ष की दसवीं को मेला लगता है। महर्षि जमदग्नि की परम्परा में बाबा साधु राम ने जहां तपस्या की है और अपने शरीर का त्याग किया है। उस स्थान को बाबा साधु राम की समाधि के रूप में पूजा जाता है। इस सरोवर की आज भी विशेष बात यह मानी जाती है कि इसमें पानी भरने के बाद फूंकार–हंकार की आवाज आती है। पूर्ण लबालब भरा सरोवर भी पन्द्रह दिनों में सुख जाता है। सांपों की इस जगह अधिकता माना जाती है। लेकिन आज तक कोई नुकसान नहीं हुआ। (1)

जनश्रुति के अनुसार महर्षि जमदग्नि ऋचीक के पुत्र और भगवान परशुराम के पिता थे। इनके आश्रम में इच्छित फलों को प्रदान करने वाली गाय थी जिसे कार्तवीर्य छीनकर अपनी राजधानी माहिष्मति ले गया। परशुराम को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने कार्तवीर्य को मार दिया ओर कामधेनु वापिस आश्रम में ले आए और एक दिन अवसर पाकर कीर्तवीर्य के पुत्रों को भी मार डाला और समस्त पृथ्वी पर घूम–घूमकर इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया तब उन्होंने अपने पिता के मस्तक को धड़ से जोडा और उनका अन्त्येष्टि संस्कार माहूर, जिला– नांदेड महाराष्ट्र मे सम्पन्न किया। यहां माता रेणुका का प्राचीन मंदिर स्थापित है और प्रमुख शक्तिपीठों में से एक माना जाता है। कुरूक्षेत्र भूमि में पांच कुण्ड बनाकर पितरों का तर्पण किया। ये पांचों सरोवर समन्त पंचक–तीर्थ के नाम से विख्यात हुए। जिसे ब्रह्मा जी उतर वेदी कहते हैं वह यही समन्त पंचक तीर्थ है। वामन पुराण में लिखा है कि समन्त पंचक नाम धर्मस्थल चारों ओर पांच–पांच योजन तक फैला हुआ है। सम्भवतः परशुराम द्वारा स्थापित पांचकुण्डों में से एक कुण्ड जाजनपुर का यही स्थल है।

अरूणाचल प्रदेश में लोहित नदी के तट पर ही परशुराम कुण्ड स्थित है। पौराणिक मान्यता अनुसार परशुराम अपनी माता रेणुका की हत्या के पाप से मुक्ति पाने के लिए यहां आए थे। इस कुण्ड में स्नान के बाद वे मां की हत्या के पाप से मुक्त हुए थे। इस संदर्भ में पौराणिक आख्यान है कि किसी कारण वश परशुराम के पिता ऋषि जमदग्नि अपनी धर्मपत्नी रेणुका पर कुपित हो गए। उन्होंने तत्काल अपने पुत्रों को रेणुका का वध करने का आदेश दे दिया। लेकिन उनके आदेश का पालन करने के लिए कोई पुत्र तैयार नहीं हुआ। परशुराम पितृभक्त थे, जब पिता ने उनसे कहा तो उन्होंने अपने फरसे से मां का सर धड़ से अलग कर दिया। इस आज्ञाकारिता से प्रसन्न पिता ने जब वर मांगने को कहा तो परशुराम ने माता को जीवित करने का निवेदन किया। इस पर जमदग्नि ऋषि ने अपने तपोबल से रेणुका को पुन: जीवित कर दिया।

रेणुका तो जीवित हो गईं लेकिन परशुराम मां की हत्या के प्रयास के कारण आत्मग्लानि से भर उठे। यद्यपि मां जीवित हो उठीं थीं लेकिन मां पर परशु प्रहार करने के अपराधबोध से वे इतने ग्रस्त हो गए कि उन्होंने पिता से अपने पाप के प्रायश्चित का उपाय भी पूछा। पौराणिक प्रसंगों के अनुसार ऋषि जमदग्नि ने तब अपने पुत्र परशुराम को जिन जिन स्थानों पर जाकर पापविमोचन तप करने का निर्देश दिया उन स्थानों में परशुराम कुण्ड सर्वप्रमुख है।

जमदग्नि (संस्कृत: जमदग्नि, शाब्दिक अर्थ 'महान अग्नि') हिंदू साहित्य में एक ऋषि हैं। हिंदू परंपरा में उन्हें 7वें और वर्तमान मन्वंतर युग में सप्तऋषि (सात वैदिक ऋषि) में से एक माना जाता है।

वे ऋषि भृगु के वंशज हैं, जो सृष्टिकर्ता देवता ब्रह्मा द्वारा बनाए गए प्रजापतियों में से एक हैं। जमदग्नि की अपनी पत्नी रेणुका से पाँच संतानें हैं, जिनमें से सबसे छोटे परशुराम हैं, जो विष्णु के अवतार हैं।

जन्म – भागवत पुराण के अनुसार, ऋषि ऋचीक को राजा गाधि ने सत्यवती से विवाह करने के लिए काले कानों वाले एक हज़ार सफ़ेद घोड़े लाने को कहा था। ऋचीक ने वरुण की मदद से उन घोड़ों को लाया और राजा ने ऋचीक को सत्यवती से विवाह करने की अनुमति दे दी।

अपनी शादी के बाद, सत्यवती और उसकी माँ ने ऋचीक से पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद मांगा। तदनुसार, ऋषि ने प्रत्येक के लिए दूध उबले चावल के दो भाग तैयार किए, एक ब्रह्म मंत्र (सत्यवती के लिए) और दूसरे क्षात्र मंत्र (अपनी सास के लिए) के साथ। संबंधित भाग देकर, वह स्नान करने चला गया। इस बीच, सत्यवती की मां ने अपनी बेटी से उनके हिस्से बदलने के लिए कहा। उसकी बेटी ने उनकी बात मान ली। जब ऋचीक को इस आदान–प्रदान के बारे में पता चला, तो उसने कहा कि उसकी सास से पैदा होने वाला बच्चा एक महान ब्राह्मण होगा, लेकिन उसका बेटा एक आक्रामक योद्धा बनेगा, जो इस दुनिया में रक्तपात लाएगा। सत्यवती ने इस परिणाम को संशोधित करने के लिए प्रार्थना की, ताकि उसका बेटा महान ब्राह्मण के रूप में पैदा हो, लेकिन उसका पोता आक्रामक योद्धा बने। इसके परिणामस्वरूप जमदग्नि ने एक ऋषि के रूप में (सत्यवती के गर्भ से) जन्म लिया और अंततः परशुराम ने जमदग्नि के पुत्र के रूप में जन्म लिया, इस बीच, जमदग्नि के जन्म के लगभग उसी समय, गाधि की पत्नी पौरकुत्सु (सत्यवती की माँ) ने क्षत्रिय गुणों वाले एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम कौशिक रखा गया। बाद में वे प्रसिद्ध विश्वामित्र बने, जो जन्म से क्षत्रिय थे, लेकिन बाद में ब्रह्मर्षि के पद पर आसीन हुए।

गृहस्थ – बड़े होकर, जमदग्नि ने कड़ी मेहनत की और वेदों के अपने अध्ययन में पांडित्य प्राप्त किया। कहा जाता है कि उन्होंने अपने पिता के मार्गदर्शन में बिना किसी औपचारिक निर्देश के हथियारों के विज्ञान के बारे में ज्ञान प्राप्त किया था।

औषणस धनुर्वेद, जो अब लुप्त हो गया है, युद्ध के अभ्यास पर जमदग्नि और उशनस के बीच बातचीत के बारे में है।

ऋषि का दर्जा प्राप्त करने के बाद, जमदग्नि ने कई पवित्र स्थलों का दौरा किया, और अंत में सूर्य वंश के राजा प्रसेनजित के महल में पहुँचे। उन्हें अपनी बेटी, राजकुमारी रेणुका से प्यार हो गया, उसे देखते ही, और उन्होंने राजा से उसका विवाह करने के लिए कहा। इसके बाद, दोनों का विवाह हुआ और उनके पांच पुत्र हुएः सुमनवान, सुहोत्र, वसु, विश्वावसु और राम, जिन्हें बाद में परशुराम के नाम से जाना गया।356 दंपत्ति नर्मदा नदी के तट पर तपस्या करने लगे।

उन्होंने अपने पिता ऋचीक से विष्णु का दिव्य धनुष शारंग प्राप्त किया।

रेणुका की मृत्यु – ब्रह्मांड पुराण के अनुसार, रेणुका एक बार पानी लाने के लिए नर्मदा नदी के तट पर गई थीं। वहाँ उन्होंने शाल्व राज्य के राजा को अपनी रानी के साथ पानी में खेलते देखा। वह दृश्य की सुंदरता से मंत्रमुग्ध होकर वहीं खड़ी रहीं। जब तक वह पानी लेकर अपने पति के आश्रम पहुंची, तब तक उन्हें काफी देर हो चुकी थी। थके हुए जमदग्नि ने जब उनकी देरी का कारण सुना तो वे क्रोधित हो गए परशुराम, फिर भी, आगे आए और एक ही बाण से अपनी मां का सिर काट दिया। ऋषि ने अपने चार बड़े बेटों को उनकी अवज्ञा के कारण जंगलों में निर्वासित कर दिया। परशुराम की भक्ति से प्रसन्न होकर, उन्होंने अपने बेटे को उसकी पसंद का कोई भी वरदान दिया। परशुराम ने अपनी मां के जीवन को पुनः प्राप्त करने की कामना की, और यह प्रदान किया गया।7

धर्म की परीक्षा – महाभारत के अश्वमेध पर्व में, धर्म ने क्रोध का रूप धारण किया, और जमदग्नि के आश्रम में प्रकट हुए। उन्होंने देखा कि ऋषि ने अभी–अभी अपनी गाय, कामधेनु को दुहा था, और उसका दूध एक बर्तन में रखा था। क्रोध के रूप में, धर्म बर्तन में घुस गया। इसे पीने के बावजूद, जमदग्नि शांत रहे।

यह देखकर, धर्म ऋषि के सामने एक ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए, और उन्हें वरदान दिया कि वह भविष्य में हमेशा धर्मी रहेंगे।

सूर्य से वरदान – महाभारत के अनुसार, जमदग्नि एक बार सूर्य देव से बहुत अधिक गर्मी पैदा करने के कारण नाराज़ हो गए थे। योद्धा–ऋषि ने सूर्य को भयभीत करते हुए आकाश में कई बाण छोड़े। तब सूर्य ब्राह्मण के रूप में ऋषि के सामने प्रकट हुए, और उन्हें दो आविष्कार दिए जो मानव जाति को उनकी गर्मी से निपटने में मदद करेंगे – चप्पल और एक छाता।9

मृत्यु – एक बार जमदग्नि से हैहय राजा कार्तवीर्य अर्जुन और उनके अनुचर (जिन्हें हज़ार भुजाएँ/हाथ कहा जाता था) मिलने आए, जिन्हें उन्होंने दिव्य गाय, कामधेनु द्वारा भेंट की गई दावत दी। राजा ने चंद्रगुप्त नामक अपने मंत्री को भेजा, जिसने इस प्रचुर गाय को खरीदने के लिए दस लाख गायें, या यहाँ तक कि आधा राज्य भी देने की पेशकश की, लेकिन जमदग्नि ने उसे देने से इनकार कर दिया।

***

अध्याय चतुर्थ

मुनि किसे कहते है?

1. नारदमुनि
2. अंगिरा मुनि
3. ऋषि पुलस्य
4. कर्दम ऋषि
5. पंचशिखा मुनि

अध्याय चतुर्थ

मुनि किसे कहते है

मुनि शब्द का अर्थ है – राग–द्वेष–रहित–संतो, साधुओं और ऋषियों को मुनि कहा गया है। मुनियों को यति, तपस्वी, भिक्षु और श्रमण भी कहा जाता है। भगवत् गीता में कहा है कि जिनका चित्त दुःख से उद्विग नहीं होता, जो सुख की इच्छा नही करते और जो राग, भय और क्रोध से रहित हैं, ऐसे निश्चल बुद्धि वाले मुनि कहे जाते है। वैदिक ऋषि–जंगल के कंदमूल खाकर जीवन निर्वाह करते थे।

जैन मुनि – जैन ग्रंथो में उन निग्रंथ महर्षियों को मुनि कहा जाता है जिनकी आत्मा संयम से स्थिर है, सांसारिक वासनाओं से जो रहित है और जीवों की रक्षा करते हैं। जैन मुनि 28 मूलगणों का पालन करते हैं। वे अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच व्रतों तथा ईर्या (गमन में सावधानी) भाषा एषणा (भोजन शुद्धि), आदान निक्षेप (धार्मिक उपकरण उठाने रखने में सावधानी) और प्रतिष्ठापना मूल मंत्र के त्याग में सावधानी), इन पाँच समितियों का पालन करते हैं। वे पाँच इंद्रियों को निग्रह करते हैं, तथा सामायिक चतुर्विंशतिस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान (त्याग और कायोत्सर्ग (देह में ममत्व का त्याग) इन छह आवश्यकों को पालते हैं। वे केशलोच करते हैं, नग्न रहते है, स्नान और दातौन नहीं करते हैं पृथ्वी पर सोते हैं, त्रिशुद्ध आहार ग्रहण करते हैं और दिन में केवल एक बार भोजन करते है ये सब मिलाकर 28 मूल गुण होते है है।

संदर्भ –

दशवैकालिक सूत्रः, वदकेर, मूलाचार, हरिभद्र, अस्टक प्रकरण।

मुनि का हिन्दी में क्या अर्थ है।

मुनि शब्द का मतलब है, आध्यात्मिक ज्ञानी, ऋषि, तपस्वी, या आत्म–साक्षात्कारी आत्मा मुनि शब्द का इस्तेमाल राग–द्वेष रहित संतो साधुओं और ऋषियों के लिए भी किया जाता है।

मुनि शब्द के अर्थ – जो अधिकांश समय मौन धारण करते है या बहुत कम बोलते है।

- जो ईश्वर धर्म, और सत्या/सत्य आदि का सूक्ष्म विचार करते हैं।
- जा मानसिक कौशल के बल पर परम सत्य तक पहुंचने का प्रयास करते हैं।
- जो वेद और ग्रंथो का पूर्ण ज्ञान रखते है।

- जो घोर तपस्या के बाद मौन धारण करने की शपथ लेते है।

मुनि शब्द से जुड़े कुछ और शब्द –

- मुनीन्द्र का मतलब है ''मुनियों का स्वामी''
- मुनिवर का मतलब है ''मुनियों में सबसे महान''
- मुनिराज का मतलब है ''मुनियों का राजा''
- मुनिश्वर का मतलब है'' मुनियों का देवता''
- महामुनि का मतलब है ''सबसे महान मुनि''

बौद्ध धर्म में गौतम बुद्ध को 'मुनि' उपाधि से जाना जाता है।

मुनि (संस्कृत : मुनि, ''मौन'' प्राचीन भारतीय ऋषियों और तपस्वियों या प्राचीन भारतीय तपस्वियों के किए एक शब्द है। (1) इसके बारे में ऋषियों के बारे में कहा गया है कि वे वैज्ञानिक या धार्मिक ग्रंथों के आधार पर वैज्ञानिक या धार्मिक ग्रंथों के आधार पर नहीं बल्कि अपनी स्वयं स्वयं की भावनाओं के माध्यम से सत्य को जानते है।

1. हिन्दू धर्म

- ऋग्वेद मुनि का नाम एक प्रसिद्ध वैदिक है ऋषि है जो पोस्ट किया गया है केशिन थे। (3)
- बहुत बाद में एक काम में लघु–योग–वशिष्ठ, (4) मुनियों को योनियों में विभाजित किया गया है।

1. कस्ट तपस्वी – स्थीर रूप से शांति में रहने वाले तपस्वी,
2. जीवन मुक्त – वे जो भौतिक शरीर में जीवनभर के किये मुक्त हो गये है।

संदर्भ –

1. मुनि –
2. बसवेल, रॉबर्ट ई. ज्यूनियर, लोपेज, डोनाल्ड एस. ज्यूनियर (2013) बौद्व धर्म का प्रिसंटन शब्दकोश (प्रिसंटन युनिवर्सिटी प्रस /पी.74) आई.आई.एस.बी.एन. 9781400848058
3. मुनि
4. (6, 7, 3)

मुनि का अर्थ हिन्दी में – आध्यात्मिक और भौतिक तत्वों का ज्ञाता परम बुद्धिमान, दूरदर्शी, सच्चरित्र और त्यागी व्यक्ति वह जो मनन करे, ईश्वर, धर्म और सत्या सत्य आदि का सूक्ष्म विचार करने वाला व्यक्ति, मननशील महात्मा, जैसे अंगिरा, भृगु कर्दम, पंचशिखा आदि।

नारदमुनि

नारदमुनि के जन्म से लेकर देवर्षि बनने की कथा कहा जाता है नारद मुनि बम्हा के मानस पुत्र थे और भगवान विष्णु के परम भक्त। हिन्दू कैलेंडर के अनुसार हर साल वैशाख मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को नारद जयंती मनाई जाती है। कहते है कि नारद मूनि का जन्म एक श्राप से हुआ था। वे ब्रम्हा के मानस पुत्र थे। यहाँ पढ़े नारद मुनि का जन्म कैसे हुआ था और वे देवर्षि कैसे बने? पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इंद्रलोक में उपबहर्ण नाम के गंधर्व हुआ करते थे। उपबर्हण को स्त्रियों के साथ समय बिताना पसंद था। स्वर्ग में वह अप्सराओं के साथ ही क्रीड़ा करते थे। एक बार गंधर्व और अप्सरा जगदगुरू ब्रम्हा की आराधना कर रहे थे। तभी उपबर्हण अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करने लगे। इससे ब्रम्हाजी क्रोधित हो गये और उन्हें शुद योनि में जन्म लेने का श्राप दे दिया?

ब्रम्हाजी के श्राप के चलते उपबर्हण को अगले जन्म में एक शुद्र दासी ने जन्म दिया उनका नाम नंद रखा गया। नंद को बचपन से ब्राम्हणों की सेवा में लगा दिया गया था। वे तनम न से ब्राम्हणों की सेवा में लीन हो गए। इससे उनके पूर्व जन्म के पाप धीरे–धीरे धुले गए। समय के साथ उनका मन प्रभु की भक्ति में लगने लगा। वे भगवान विष्णु की भक्ति में लीन हो गए। इससे खुश होकर खुद प्रभु ने इन्हें दर्शन दिए और नंद को ब्रम्हपुत्र होने का वरदान मिला। इस तरह वे देवर्षि बन गए।

कहते है कि सृष्टि के अंत के हजारों सालों बाद इसकी फिरसे रचना हुई। तब ब्रम्हाजी ने 10 मानस पुत्रों को जन्म दिया। इनमें से एक नारद है। नारद विष्णु भगवान के परम भक्त थे इसलिए तीनों लोको में विचरण करते हुए वे विष्णुजी की महिमा का बखान करने लगें। तीनों लेके में विचरण करने की वजह से उनके पास हर जगह की खबर होती थी। इसलिए उन्हें संसार का पहला पत्रकार भी माना जाता है। इस वर्ष नारद जयन्ती मंगलवार मई 13, 2025 को मनाई जायेगी नारदमुनि किसी भी समय स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक, तथा पाताललोक का भ्रमण कर सकत हैं। नारद मुनि समस्त प्रकार की सुचनाओं का

संचार करने हेतु ब्रह्मंड में भ्रमण करते रहते हैं। हॉलाकि अधिकांश समय पर उनकी सूचना वाद–विवाद को जन्म देती है, किन्तु यह वाद विवाद ब्रह्माण्ड के हित के लिये होता है।

उत्तर भारतीय पूर्णिमान्त कैलेण्डर के अनुसार ज्येष्ठ माह की कृष्ण पक्ष प्रतिपदा तिथि को नारद जयन्ती मनायी जाती है। दक्षिण भारतीय अमावस्यान्त कैलेन्डर के अनुसार नारद जयन्ती वैशाख माह की कृष्ण पक्ष प्रतिपदा तिथि को होती है। हाला कि यह चन्द्र माह के भिन्न भिन्न नाम है, किन्तु दोनों ही प्रकार के कैलेण्डर में नारद जयन्ती एक ही दिन पड़ती है।

धारणतः नारद जयन्ती बुद्ध–पूर्णिमा के अगले दिन आती है। यदि प्रतिपदा तिथि का ह्रास होता है, तो बुद्धपूर्णिमा तथा नारद जयन्ती एक ही दिन हो सकते है।

एक कथा के अनुसार ब्रह्मजी की सभा में सभी देवता और गंधर्व संकीर्तन करने के लिए आये गंधर्व नारदजी भी अपनी स्त्रियों के साथ उस सभा संकीर्तन में आए भगवान के संकीर्तन में स्त्रियों के साथ विनोद करते हुए ब्रह्मजी ने देख लिया और इन्हें शुद्र होने का श्राप दे दिया। उस श्राप के प्रभाव से नारदजी का जन्म एक शुद्र कुल मे हुआ। जन्म लेने के बाद ही इनके पिता की मृत्यु हो गयी। इनकी माता दासी का कार्य करके इनका भरण पोषण करने लगी एक दिन इनके गाँव में कुछ महात्मा आये और चातुर्मास (चौमास) बिताने के लिये वही ठहर गये। नारदजी बचपन से ही अत्यन्त सुशील थे। वे खेलकुद छोड़कर उन साधुओं के पास ही बैठे रहते थे और उनकी छोटी से छोटी सेवा भी बडे मन से करते थे। संत सभा में जब भागवत कथा होती थी तो ये तन्मय होकर सुना करते थे। संत लोग इन्हें अपना बचा हुआ भोजन खाने के लिये दे देते थे।

साधुसेवा और सत्संग अमोध फल प्रदान करने वाला होता है। उसके प्रभाव से नारदजी का हृदय पवित्र हो गया और इनके समस्त पाप धुल गये। जाते समय महात्माओं ने प्रसन्न होकर इन्हें भगवन्नामका जप एवं भगवान के स्वरूप के ध्यान का उपदेश दिया। एक दिन सांप के काटने से इनकी माताजी भी इस संसार से चल बसी। अब नारदजी इस संसार में अकेले रह गए। उस समय इनकी आय मात्र पाँच वर्ष की थी। माता के वियोग को भी भगवान का परम अनुग्रह मानकर थे अनाथों के नाथ दीनानाथ का भजन करने के लिये चल पड़े। एवं दिन जब नारदजी वन में बैठकर भगवान के स्वरूप का ध्यान कर रहे थे। अचानक इनके हृदय में भगवान प्रकट हो गय और थोड़ी देर तक अपने दिव्य स्वरूप की झलक दिखाकर अन्तर्धान हो गए। भगवान का दुबारा दर्शन करने के लिए नारदजी के

मन में परम परम व्याकुल पैदा हो गयी। वे बार–बार अपने मन को समेटकर भगवान के ध्यान का प्रयास करने लगे, किन्तु सफल नहीं हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई'' हे दासी पुत्र। अब इस जन्म में फिर तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा। अगले जन्म में तुम मेरे पार्षद रूप में मुझे पुनः प्राप्त करोंगे।''

समय आने पर नारदजी का पांच भौतिक शरीर छुट गया। और कल्प के अन्त में ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र के रूप में पैदा हुए। देवर्षि नारद भगवान के भक्तों में सर्वश्रेष्ठ है। ये भगवान की भक्ति महात्म्य के विस्तार के लिए अपनी वीणा की माथुर तान पर भागवद गुणों का गान करते हुए निरन्तर विचरण किया करते है। इन्हे भगवान का मन कहा गया है। इनके द्वारा प्रणीत भक्ति सूत्र में भक्ति की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या है। अब भी ये अप्रत्यक्ष रूप से भक्तों की सहायता करते रहते हैं। भक्त प्रहलाद, भक्त अम्बरीष, भक्त ध्रुव आदि भक्तिों को उपदेश देकर इन्होंने ही भक्तिमार्ग में प्रवृत्त किया। इनकी समस्त लोकों में अबाधित गति है, इनका मंगलमय जीवन संसार के मंगल के लिये ही है। ये ज्ञान के स्वरूप, विद्या के भण्डार, आनन्द के सागर तथा भूतों के अकारण प्रेमी ओर विश्व के सहज हितकारी हैं।

नारद का अर्थ – नारद का अर्थ दो भागों में बांटा गया है – नार का अर्थ है 'मानव जाति' और दा का अर्थ है 'दिया' हिन्दु पौराणिक कथाओं में नारद का अर्थ है एक देवता जिसे भगवान ब्रह्मा ने सृजन की शक्ति के साथ निर्देश किया था। पुराण उन्हें ऋषि कश्यप का पुत्र मानते है। उन्हें त्यागराज और पुरंदरदास जैसे संतो का का अवतार भी माना जाता था। भगवान विष्णु के परम भक्त होन के कारण वे अपने देवता नारायण नारायण क नाम का जाप करते हुए एक वीणालेकर घुमते थे। नारद एक महत्वपूर्ण देवऋषि थे जो दिवंगत आत्माओं को मोक्ष या मोक्ष की और ले जाते थे। उनके पास ऐसी शक्तियाँ थी जो उन्हें तीनों लोकों या संसारों मुख्य रूप से आकाश पाताल और पृथ्वी के माध्यम से यात्रा करने में सक्षम बनानी थी।

कुल 18 पुराणों में से एक नारद पुराण, ऋषिराज नारदमुनिजी को समर्पित है श्रीमदभगवत गीता के दसवें अध्याय विभ्ति योगः के 26 वें श्लोक द्वारा नारदजी की महानता का संबोधन कुछ इस प्रकार कियाः

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां

देवर्शीणां च नारदः। अर्थात देवर्षियों में नारद हूं)

गन्धर्वाणां चित्ररथः सिध्दानां कपिलोमुनिः।। 10.26।।

वे (दिवर्षि नारद) ऋग्वेद के आठवे मण्डल के तेरहवे सुत्र के दृष्टा थे (1) (6)

- वैष्णव समुदाय उन्हें एक दिव्य आत्मा के रूप में देखता है जो भगवान विष्णु के भक्त थे) उन्होंने भगवान विष्णु की किवंदतियों को दूसरों के बीच प्रचारित और संप्रेषित किया भगवान विष्णु पर उनके प्रसिद्ध प्रार्थना उध्दरण थे।

'ॐ नारायण। नारायण।' ॐ नारदाय नामः

- वे वेदों और सनातन परंपरा के अन्य ग्रंथो के अच्छे जानकार थे। देवर्षि नारद का उल्लेख रामायण महाभारत, और पुराणों आदि में मिलता हैं। सनातन धर्म के भक्ति पुराण जैसे ग्रंथों के अनुसार उनके द्वारा रचित महत्वपूर्ण कार्य नारद पुराण, नारद स्मृति और नारद भक्ति सूत्र आदि है। हिन्दू धर्म में उन्हें देवताओं के साथ–साथ असुरों और ग्रह पर मानव जीवन के लिए दिव्य ऋषि और दूत माना जाता है। (3)

संदर्भ –

6. सिंह जय प्रकाश (2024–04–24) नारदीय संचार नीति (अरबी में) प्रभात प्रकाशन आई.एस.बी.एन. 978–93–556–235–8

3. abcd नारद जयन्ती 2024 : तिथि, समय, कहानी और महत्व टाइम्स ऑफ इंडिया? 2024–05–24 आईएस.बी.एन. 0971–8257। 2024–0524 को लिया गया है।

अंगिरा मुनि

पुराणों के अनुसार ब्रह्माजी के मानस प़त्र :– मन से मारिचि, नेत्र से अत्रि मुख से अंगिरस, कान से पुलस्त्य, नाभि से पुलह, हाथ से कतु, त्वचा से भृगु, प्राण से वशिष्ठ, अंगुष्ठ से दक्ष, छाया से कंदर्भ, गोद से नारद, इच्छा से सनक, से सनन्दन, सनातन, सनतकुमार, शरीर से स्वायंभुव मनु, ध्यान से चित्रमुक्त आदि।

महान, ऋषि अंगिरा के वंशज अंगिरस

1. अंगिरा देव को ऋषि मारिच की बेटो सुरूपा व कर्दम ऋषि की बेटी स्वराट् और मनु ऋषि कन्या पथ्या ये तीनों विवाही गई। सुरूपा के गर्भ से बृहस्पति, स्वराट् से गोतम, प्रबंध, वामदेव, उतथ्य और उशिरये पांच पुत्र जन्में। पथ्या के गर्भ

से विष्णु संवर्त, विचित, अयास्य, असिज, दीर्घतमा, सुधन्वा ये सात पुत्र जन्में। उतथ्य, ऋषि से शरद्वान, वामदेव से बृहदुकथ्य उत्पन्न हुए। महर्षि सुधन्वा के ऋषि विभ्मा और बाज आदि नाम से तीन पुत्र हुए। ये ऋषि पुत्र रथकार में कुशल थे।

2. एक अन्य मान्यता के अनुसार अंगिरा की पत्नी दक्ष प्रजापति की पुत्री स्मृति (मतांतर से श्रद्धा थीं। अंगिरा के तीन प्रमुख पुत्र थे। उतथ्य, संवर्त और बृहस्पति। अंगिरा के पुत्रों को अंगिरस्त कहा गया।

3. अग्निवायुरविभ्यस्तु त्र्यं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिध्यर्थमृगयुः समलक्षणम्।। मनु (1/13)

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न कर अग्नि आदि चारों ऋषियों के द्वारा चारों वेद ब्रम्हा को प्राप्त करायें उस ब्रम्हा ने अग्नि, वायु, आदित्य और (तु अर्थात) अंगिरा से ऋग, यजु, साम, और अथर्ववेद का ग्रहण किया।

4. ब्रम्हा के मानस पुत्रों में से एक ब्रम्हा ऋषि अंगिरा को वेदों के रचयिता चार ऋषियों में शामिल किया जाता है। माना जाता है कि अंगिरा से हो भृगु, अत्रि, आदि ऋषियों ने ज्ञान प्राप्त किया।

5. ऋग्वेद के अनुसार, ऋषि अंगिरा ने सर्वप्रथम अग्नि उत्पन्न की थीं। अंगिरा ने धर्म और राज्य व्यवस्था पर बहुत काम किया।

6. अंगिरा स्मृतिः अंगिरा स्मृति में सुंदर उपदेश तथा धर्माचरण की शिक्षा व्याप्त है। अंगिरा स्मृति के अनुसार बिना कुशा के धर्मानुष्ठान, बिना जल स्पर्श के दान, संकल्प, बिना माला के संख्याहीन जाप सब निष्फल होते हैं।

संदर्भ – Webdunia से आभार लिया।

महर्षि अंगिरा

अंगिरा – पुराणों में बताया गया है कि महर्षि ब्रम्हाजी के मानस पुत्र है तथा ये गुणों में ब्रम्हाजी के समान है। इन्हें प्रजापति भी कहा गया है और सप्त ऋषियों में वशिष्ठ, विश्वामित्र तथा मरीचि आदि के साथ इनका भी परिगमन हुआ है। इनके दिव्य अध्यात्म ज्ञान, योगबल, तप–साधना एवं मंत्र शक्ति की, विशेष प्रतिष्ठा है। इनकी पत्नी दक्ष प्रजापति की पुत्री स्मृति (मतान्तर से श्रद्धा थी, जिनसे इनके वंश का विस्तार हुआ। इनकी तपस्या और उपासना इतनी तीव्र थी कि इनका तेज और

प्रभाव अग्नि की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया। उस समय अग्निदेव भी जल में रहकर तपस्या कर रहे थें। जब उन्होंने देखा कि अंगिरा के तपो बल के सामने मेरी तपस्या और प्रतिष्ठा तुच्छ हो रही है तो वे दुःखी हो अंगिरा के पास गए और कहने लगे – ''आप प्रथम अग्नि है मैं आपके तेज की तुलना में अपेक्षाकृत न्यून होने से द्वितीय अग्नि हूँ। मेरा तेज आपके सामने फीका पड़ गया है, अब मुझे कोई अग्नि नही कहेगा।'' तब महर्षि अंगिरा न सम्मानपूर्वक उन्हें देवताओं को हवि पहुँचान का कार्य सौंपा साथ ही पुत्र के रूप में अग्नि का वरण किया। तत्पश्चात वे अग्नि देव ही बृहस्पति नाम से अंगिरा के नाम से पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए। उतथ्य तथा महर्षि संवर्त भी इन्हीं के पुत्र है। महर्षि अंगिरा की विशेष महिमा है। ये मंत्र दृष्टा, योगी, संत तथा महान भक्त है। इनकी 'अंगिरा स्मृति' में सुन्दर उपदेश तथा धर्मा चरण की शिक्षा व्याप्त है।

सम्पूर्ण ऋग्वेद में महर्षि अंगिरा तथा उनके वंशधरों तथा शिष्य–प्रशिष्यों का जितना उल्लेख है उतना अन्य किसी ऋषि के संबंध में नही है। विद्वानों का यह अभिगत है कि महर्षि अंगिरा से सम्बन्धित वंश और गोलकार ऋषि ऋग्वेद कें नवम मण्डल के द्रष्टा हैं। नवम मण्डल के साथ ही ये अंगिरस ऋषि प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि अनेक मण्डलों के तथा कतिपथ सूक्तों के दष्टा ऋषि हैं। जिनमें से महर्षि कुत्स, हिरण्यस्तूप, सप्तगु, नृमेध, संकपूत, प्रियमेध, सिन्धुसित, वीतहत्य, अभिवर्त, अंगिरस, संवर्त तथा हविर्धान आदि मुख्य है।

ऋग्वेद का नवम मण्डल जो 114 सूक्तों में निबध्द हैं, 'पवमान मण्डल,' के नाम से विख्यात है। इसकी ऋचाऐं पावमानी ऋचाएँ कहलाती हैं। इन ऋचाओं में सोमदेवता की महिमा परक स्तुतियाँ है, जिनमें यह बताया गया है कि इन पावमानी ऋचाओ के पाठ से देवताओं का आष्टायन होता हैं।

- बाहरी कडियाँ
- सप्तऋषियों और चतुष्टय वेदज्ञों मं एक महर्षि अंगिरा
- साभार विकिपीडिया से किया है –

ऋषि पुलस्त्य

पुलस्त्य ऋषि ब्रह्मा के प्रजापति या मन से जन्मे पत्रों में से एक है और प्रथम मन्वतर में सप्तऋषियों में से एक हैं। वे ही माध्यम थे जिनके माध्यम से कुछ पुराणों को मनुष्य तक पहुँचाया गया। उन्होनें भगवान ब्रह्मा से विष्णु पुराण प्राप्त किया और इसे पाराशर को सुनाया, जिन्होंने इसे मानव जाति तक पहुँचाया।

कहा जाता है कि, सभी राक्षस ऋषि पुलस्त्य के वंश से आए थे। पुलस्त्य का विवाह कदंम मुनि की नौ बेटियों में से एक हविर्भू से हुआ था। उनके दो बेटे थे महर्षि अगत्स्य और विश्रवा। विश्रवा और उनकी पत्नी केकसो ने रावण, कुंभकर्ण, और विभीषण को जन्म दिया। अपनी पत्नी इलाविदा से उन्हें एक बेटा हुआ था जिसका नाम कुबेर था।

इडविदा, मरूत वंश के त्रिन बिंदु और अलम्बुषा अप्सरा की पुत्री थी, जो एक चक्रवर्ती राजा थी और वैवस्वत मनु श्राध्ददेव के वंशावली में थी। उसने अपने यज्ञ में सभी सोने के बर्तनों का इस्तेमाल किया, और ब्राह्मणों को इतना धन दिया कि वे बहुत सी चीजें पीछे छोड़ गए। यह वही सोना था जिसे युधिष्ठीर ने अपने यज्ञ के लिए लिया और इस्तेमाल किया।

पुलस्त्य ऋषि रावण के दादा थे, जिन्होने एक बार सहस्राबाहु से उसे बचाया था। सहस्राबाहु महिष्मती पुरी के राजा थे, जिन्होंने महर्षि परशुराम के पिता ऋषि जमदग्नि की हत्या कर दी थी। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए, परशुराम ने उनसे बहादुरी से युद्ध किया और उनके खून से पाँच तालाब बनाए। सहस्राबाहु को कार्तवीर्य अर्जुन के नाम से भी जाना जाता है, लेकिन अपनी हजार भुजाओं के कारण उन्हे सहस्राबाहु के नाम से जाना जाता था।

एक बार सहस्राबाहु रावण को अपने महल में ले गया और उसे अपने अस्तबल में कैद कर लिया। दोनों के बीच लड़ाई हुई, क्योंकि राजा ने नर्मदा नदी का पानी मोड़ दिया था, जिसमें रावण स्नान करने की कोशिश कर रहा था। राजा से झगड़ा करते हुए रावण अस्तबल में आ गया। पुलस्त्य ऋषि ने अपने पोते को बचाने के लिए हस्तक्षेप किया और सहस्राबाहु ने तब कई रत्न, बढ़िया वस्त्र आदि देकर अपनी मित्रता का परिचय दिया।

पुलस्त्य ऋषि की अनेक लीलाओं से वैष्णवों को शायद सबसे अधिक प्रिय वह कथा हैं जिसमें पुलस्त्य ने श्री गोवर्धन पर्वत को ब्रज में पहुंचाया था। जैसा कि श्री ब्रज मण्डल परिक्रमा में वर्णित है।

''एक बार सप्तमुनियों में से एक पुलस्त्य मुनि जब समस्त तीर्थ स्थानों का भ्रमण कर रहे थे, ता द्रोणकाल के अत्यंत सुन्दर पुत्र गिरिराज गोवर्धन के सुन्दर वृक्षों, सुन्दर पुष्पों, फूलों तथा उद्यानों को देखकर दंग रह गये। पुलस्त्य मुनि द्रोणाचार्य के पास गये तथा उन्हें बहुत आदर–सत्कार करते हुए इस प्रकार कहा कि, तुम काशीवासी मुनि हो, कासी में गंगा है, विश्वेश्वर महादेव है, तथा वहाँ पापी मनुष्य साध्य मुक्ति प्राप्त करते है, किन्तु वे काशी में गोवर्धन की स्थापना करके तपस्या करना चाहते हैं।

पुलस्त्य मुनि ने द्रोणकाल से इस प्रकार प्रार्थना की कि वे अपने पुत्र गोवर्धन को उन्हें दे दें। द्रौणकाल अपने पुत्र से बहुत स्नेह करते थे। लेकिन मुनि के श्राप के डर से उन्होंने कहा, ''तुम गोवर्धन को कैसे ले जा पाओगे? गोवर्धन आठ योजन/64 मील लंबा, पांच योजन (40 मील) चौड़ा और दो योजना (16 मील) ऊँचा है।'' यह प्रश्न पुलस्त्य मुनि के समक्ष पूछा गया, जिन्होने उत्तर दिया कि वे इसे आसानो से एक हाथ पर उठा सकते है। (गर्ग संहिता में गिरिराज गोवर्धन की चौड़ाई आठ योजन, अर्थात (64 मील बताई गई हैं) लेकिन भौतिकवादी दृष्टि इसे वर्तमान में केवल सात मील ही देखती और सुनती हैं। परिक्रमा पथ चौदह मील का हैं।

गौवर्धन एक शर्त पर मुनि के साथ जाने को तैयार हो गया, ''मुनि भारी वजन के कारण आप मुझे जहाँ भी बिठाऐंगे, मैं वही रहूँगा।'' पुलस्त्य मुनि ने वचन दिया, ''वे गोवर्धन को काशी ले जऐगे, उसे रास्ते में कहीं नहीं उतारेंगे। ''गोवर्धन के शक्तिशाली पिता द्रोणकाल ने प्रणाम किया और फिर मनि ने गोवर्धन को अपने दाहिने हाथ में उठा लिया और धीरे–धीरे आगे बढ़ने लगे। जैसे ही वे आगे बढ़े, मुनि सर्व श्रेष्ठ ब्रजमण्डल में पहुँच गए।

ब्रजमण्डल की अद्वितीय सुन्दरता को देखकर, जहाँ श्रीकृष्ण की बाल लीलाऐं और किशोर लीलाऐं तथा यमुना, गोपियों का स्मरण, तथा युवा श्रीराधा और उनकी सुखियों के

साथ कृष्ण की लीलाऐं देखकर, गोवर्धन की ब्रज छोड़कर अन्यत्र जाने की इच्छा नहीं हुई। इस प्रकार गोवर्धन इतना भारी हो गया कि मुनि को अस्वस्थता महसूस हुई ओर वे अपना वादा भूल गए और इस प्रकार उन्होनें ब्रज की भूमि पर गोवर्धन को रख दिया।

मुनिश्रेष्ठ ने अपनी शारीरिक शुद्धि पुरी करने के बाद फिर से गोवर्धन से आग्रह किया कि वे उनके हाथ पर आकर बैठ जाऐं जैसा कि उन्होंने पहले किया था। लेकिन गोवर्धन ने उठने का उनका अनुरोध स्वीकार नहीं किया। तब मुनि श्रेष्ठ ने खुद उठाने की कोशिश की लेकिन वे ऐसा करने में असमर्थ रहे। प्रार्थना की शर्त के कारण गोवर्धन फिर से जाना नहीं चाहते थे, इसलिए पुलस्त्य मुनि अगस्त्य क्रोधित हो गए और बोले, ''चूंकि तुमने मेरी आकांक्षा पूरी नही की, इसलिए हर दिन तुम्हारा एक तिल कम होता जाएगा।'' उस समय स गोवर्धन पर्वत पर प्रतिदिन एक तिल कम होता गया।''

ऐसा भी कहा जाता है कि जब पुलस्त्य मुनि काशी जाते समय गोवर्धन को लेकर ब्रज भूमि के उपर से उड़ रहे थे, तो गिरिराज ने उनका वजन इतना बढ़ा दिया कि ऋषि को उन्हें नीचे रखना पड़ा और यही कारण था कि ऋषि को तिल का श्राप मिला। बाद में अपने श्राप की सच्चाई को त्यागते हुए, ऋषि ने गिरिराज से वादा किया कि द्वारपर युग में, हर कोई उनकी पूजा करना शुरू कर देगा।

– 000 –

इस कहानी पर अधिक जानकारी, वसिष्ठ ऋषि भाग–3, वसिष्ठ ऋषि भाग – 2

कर्दम ऋषि

कर्दम ऋषि की उत्पत्ति सृष्टि की रचना के समय ब्रह्मा जी की छाया से हुई थी। ब्रह्मा जी ने उन्हें प्रजा में ऋद्धि करने की आज्ञा दी। उनके आदेश का पालन करने के लिए कर्दम ऋषि ने स्वायंभुव मनु की द्वितीय कन्या देवहुति से विवाह कर नौ कन्याओं तथा एक पुत्र की उत्पत्ति की। कन्याआ के नाम कला, अनुसइया, श्रद्धा, हविर्भू, गति, क्रिया, ख्याति, अरूद्धती और शान्ति थे। तथा पुत्र का नाम कपिल था। कपिल के रूप में देवहूति के गर्भ से स्वयं भगवान विष्णु अवतरित हुये थे।

कर्दम ऋषि जन्मजात विरक्त व भगवान के प्रेमी और पिता के आज्ञाकारी थे। आचार्य रवि शास्त्री महाराज के ग्राम घाघरी में चल रही श्रीमद् भागवत कथा के तीसरे दिन की कथा में कहा कि, कर्दम ऋषि ब्रह्माजी के पुत्र थे। ब्रह्माजी ने उनको आदेश दिया सृष्टि का कार्य आगे बढ़ओं, कर्दम ऋषि जन्म जात विरक्त थे भगवान के प्रेमी थे लेकिन पिता के आज्ञाकारी थे। उनका गृहस्थाश्रम में जाने का मन नही था, पर पिता की आज्ञा को मानना भी आवश्यक था अतः उन्होंने बीच का रास्ता निकाला। कर्दम जी ने सोचा पिता की आज्ञा का पालन तो करना है पर पहले कोई ऐसा काम करलो जिससे सृष्टि में प्रवेश करने के बाद उससे बाहर निकलने का रास्ता मिल जाए।

गृहस्थाश्रम में जाने से पहले गृहस्थाश्रम के झंझटों से कैसे निकलोगे ये सीखकर तब जाना चाहिए। उन्होने सरस्वती नदी के किनारे शंख, चक्र, गदा हाथ में लिए भगवान प्रकट हो जाते हैं। कर्दम जी भगवान की स्तुति करते हुए कहते है प्रभु आपको पाने के बाद यदि कोई आपसे दुनिया की वस्तु मांगता है तो आपकी माया के द्वारा ठगा गया है। कर्दम जी भगवान से कहते हैं पिताजी ने सृष्टि रचना के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश कहने की आज्ञा दी है। अतः मैं चाहता हूँ ऐसी पत्नी, मिले जो गृहस्थाश्रम में भी सहयोग करे और गृहस्थाश्रम के बाद मेरी साधना में भी सहयोग करें। इसलिए मैने आपकी साधना की है।

भगवान ने कर्दम ऋषि को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की अनुमति दे दी। गृहस्थाश्रम में रहते हुए कर्दम जी ने भगवान से प्रार्थना की आपने वचन दिया था। हमारे घर पुत्र के रूप में आएगें अतः अपना वचन पूरा कीजिए। भगवान देवहूति मैया के गर्भ में

प्रवेश करते हैं गर्भ में प्रवेश करते ही सभी देवता भगवान की स्तुति करते हैं। इसके बाद भगवान अपनी दैवीयमान स्वरूप में गर्भ में प्रकट हो जाते है। भारी उत्सव मनाया जाता है। कर्दम जी ब्रह्माजी से कहते है अब मुझे इन नौ कन्याओं क विवाह की चिंता है। ब्रह्ममाजी ने कहा तुम चिंता क्यों करते हो। तुम्हारे घर तो स्वयं भगवान पधारे है। तुम चिंता करने के बदले प्रभु का चिंतन करो। ब्रह्माजी ने कन्याओं का विवाह करा दिया। कपिल भगवान पालने में लेटें है। कर्दम ऋषि नें उन्हें साष्टांग प्रणाम किया ओर बोले आपकी आशा हो तो अब से सन्यास लेकर जीवन मुक्ति का आनंद लूं। भगवान ने पालने में लेटे–लेटे उपदेश कर दिया जाओ तुम जीवन मुक्ति का आनंद लो।

इस संसार को मेरा ही रूप जानना, भगवददृष्टि रखना तभी जीवन मुक्ति का आनंद मिलेगा। कर्दम जी ने भगवान की परिक्रमा की परिक्रमा की प्रणाम किया और वहां से जंगल चले गए। भगवान को आत्मरूप में अनुभव करते हुए वे अंत में भगवान को ही प्राप्त हो गए। इस प्रकार पिता की आज्ञा का पालन उन्होने मानव कल्याण के लिए किया।

— 000 —

पंचशिखा

पंचशिखा

शीर्षक	मुनि
व्यक्तिगत जीवन	
उल्लेखनीय कार्य	षष्ठो मंत्री
धर्मिक जीवन	
धर्म	सनातन
संस्था	प्राचीन मिथिला विश्वविद्यालय
दर्शन	सांख्य
पंथ	सांख्यदर्शन
वरिष्ठ पदस्थापना	
शिष्य	आसुरी

पंचशिख, जो महाभारत के शांति पर्व (अध्याय 218) में दिखाई देते है, आसुरी के एक दीर्घजीवी शिष्य थे जो सांख्यदर्शन के शिक्षक थे। कपिल के अनुयायी के रूप में पंचशिख सांख्या विचारधारा से संबंधित दर्शन के शुरूआती शिक्षको में से एक थे। (1)

(1) विवरण :— उन्होने पदार्थ (प्रकृति) की प्रकृति, स्वयं की प्रकृति धारणा और क्रिया के संकायों और सामान्य शक्तियों की प्रकृति के बारे में 60000 छंदो सहित कई बड़ी रचनाऐ लिखी माना जाता है कि षष्ठी तंत्र उनका कार्य है। उलक, उपनाम, कणद, वैशेषिक सूत्र के लेखक और जिन्होनें कृष्ण को शिक्षा दी, पंचशिख के शिष्य थे। (2)

(2) पंचशिख के शिष्यों में से एक मिथिल के राजा धर्मध्वजा जनक ने पंचशिख से सांसारिक जीवन में और मृत्यु के बाद शरीर और आत्मा के बीच के संबंध के बारे में पूछा था। (3)

(3) कई स्थानों पर व्यास ने पतंजलि योग सूत्र 115.116.11.17 आदि पर अपनी टिप्पणी में स्पष्टीकरण के तौर पर ऐसा माना जाता है कि कफ ने अपनी दूध पर पंचशिखा को विकसित किया और इस प्रकार सांख्य दर्शन का उदय हुआ।

संदर्भ :– 1. एपिक इंडिया एशियन एजुकेशनल सर्विसेस 2001 पृ.सं. 373, 374, 376, 487 आईएसबीवएन 9788120615649

2. एलेन डेनियलौ (अगस्त 1987) जब देवता खेलते है। आंतरिक परंपारा पृष्ठ 58 आईएसबीएन 9781594777363

3. जयंतनुज बंदोपाध्याय (2007) पाचीन भारत में वर्ग और धर्म एथंम प्रेस पृष्ठ. 215 आईएसबीएन 9781843313328

4. पतंजलि के योग सूत्र – मोतीलाल बनारसीदास 2001 पीपी. 57, 59, 72, 84, 92, 252, 254, 278, 300 आई.एस.बी.एन. 9788120818255

5. व्यास के भाष्य के साथ योग दर्शन – जैन प्रकाशन 2002, पी. 201आई.एस.बी.एन. 9780895819512

6. महिलाओं पर क्षेत्रीय लेखन में मौन पीड़ा और अनसुनी पीड़ा – स्वरूप एड संस 2008 पृष्ठ 101 आईएसबी.एन – 9788176258449

पंचशिख पंचशिखा

पंचशिख सांख्यदर्शन के एक प्रधान आचार्य थे जिनका वर्णन महाभारत के शान्तिपर्व में आया है। ये कपिल की शिष्यपरंपरा में आसुरि के शिष्य थे। इनके उल्लेख वामनपुराण, कुर्मपुराण और वायुपुराण तथा तर्पण विधि में प्रतिष्ठित आचार्य के रूप में हुआ है। महाभारत में तो इनक वंश और जीवन संबंधी कई घटनाओं का वर्णन मिलता है।

साख्य सूत्रों में इनके मत का उल्लेख मिलता है इनको लोग ''द्वितीय कपिल'' कहते है।

तर्पण विधि के ''मनुष्य तर्पण' में पंचशिख का नाम है –

ऊँ संकश्च सनन्दश्च तृतीयश्चय सनातनः

कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पंचशिखस्तथा

सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दन्तेनाम्बुना सदा।।

(सनक, सनन्द, सनातन, कपिल, आसुरि और पंचशिख सभी मेरे द्वारा अर्पित इस जल से सदा तृप्तिमान हो।)

सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त अपने ''अ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी'' में कहते है कि महाभारत में पंचशिख ने साख्य का जो विवरण दिया है उससे चरक संहिता का विवरण मिलात–जुलता है।

बाहरी कडियाँ

- पंचशिख
- पंचशिख के द्वारा मोक्ष तत्व के विवेचन का वर्णन
- साभार विकिपीडिया से लिया –
- पंचशिख पांच शिखाओं (चोटियों) वाले एक ऋषि थे/इनका एक नाम ''कपिलेय'' भी था।
- ये महामुनि आसुरी के शिष्य थे।

- इन्होने ब्राह्मण पत्नी कपिला के स्तन का दुग्ध पान किया था, इसलिये 'कपिलेय' कहलाये।
- पंचशिख ऋषि ने जनक के उपदेश दिया और धर्म का मार्ग बताया, और साथ ही विश्वावसु को भी धर्मो पदेश दिया। (1)

  टीका प्पिणी और संदर्भ –

भारतीय संस्कृति कोश, भाग–2, प्रकाशक, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली – 110002 संपादक प्रोफेसर देवेन्द्र मिश्र (पृष्ठ संख्या 461)

महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय – 218,–219, 320–321

– 000 –

अध्याय – पंचम

<u>महर्षियों का परिचय</u>

1. महर्षि वेदव्यास
2. महर्षि भृगु
3. महर्षि वाल्मीकी
4. महर्षि दधीचि
5. महर्षि अगस्त
6. महर्षि दीर्धतम
7. महर्षि कणाद
8. महर्षि पाणिनि

अध्याय पंचम
महर्षि किसे कहते है?

1. महर्षि किसे कहते है? (ऋषियों की एक डिग्री उपाधि)

भारतीय आर्य संस्कृति में ज्ञान और तप की उच्चतम सीमा पर पहुँच चुके व्यक्ति महर्षि कहलाते है। इससे उपर ऋषियों की एकमात्र कोटि ब्रह्मर्षि की मानी जाती है। इससे निचे वाली कोटि राजर्षि की मानी जाती है।

हम सभी मनुष्यों में तीन प्रकार के चक्षु होते है वह है ज्ञानचक्षु, दिव्य चक्षु और परम चक्षु। जिसका ज्ञान जाग्रत होता है उसे ऋषि कहते है, जिसका दिव्य चक्षु जाग्रत होता है उसे महर्षि कहते है, एवं जिसका परम चक्षु भी जाग्रत हो जाता है उसे ब्रह्मर्षि कहते है। ज्ञान चक्षु आँखों की पलको के उपर दिखता है दिव्य चक्षु दोनों भौहों के मध्य होता है एवं परम चक्षु हमारी ललाट पर स्थित होता है। इसके अतिरिक्त भारत वर्ष में अनेकों ऋषि मुनि, महर्षि जैसे वाल्मीकि एवं ब्रह्मर्षि हुए हैं उन्होनें भगवान राम को ज्ञान एवं रावण से लडने के लिए अस्त्र, शास्त्र और शस्त्र प्रदान किए।

महर्षि की परिभाषा :–

1. आध्यात्मि और रहस्यमय ज्ञान का शिक्षक, धार्मिक ऋषिः अक्सर मानद उपाधि के रूप में उपयोग किया जाता है।
2. वैदिक और उत्तर वैदिक लेखन के सात महान पौराणिक दृष्टाओं में से कोई भी सप्तर्षि के सात पहचाना जाता है।

Maharishi - in American English :-

1. A teacher of Spritual and my stical knowledge; religious sage : often used as an honorary title.
2. Any of the Seven grand Mythological Seers of the vedic and post vedic writings : identified with the seven stars of Vrsa Major.

- महर्षि (संस्कृत : महर्षि, शाब्दिक अर्थ 'महान द्रष्टा' आईएएस्टी : महर्षि) एक संस्कृत शब्द है जिसका उपयोग प्राचनि भारतीय ऋषियों के उच्चतम क्रम कें सदस्यों के

लिये किया जाता है, जिन्हें भारत में लोकप्रिय रूप से ''दृष्टा'' के रूप में जाना जाता है, अर्थात वे, जो प्रकृति, दिव्यता और अस्तित्व के दिव्य संदर्भ और इन अनुभवों को नियंत्रित करने वाले नियमों को समझने ओर अनुभव करने के लिए अनुसंधान में संलग्न होते है।

- शब्द–साधन–महर्षि शब्द संस्कृत के महर्षि शब्द से बना है यह महा, जिसका अर्थ है ''महान'', और ऋषि, जिसका अर्थ है ''संत'' या ''दृष्टा'' से बना है। (1)

(1) संदर्भ – एम.डब्ल्यू कोलोन स्कैन'' www.sanskrit-lexicon-unikoeln.de.2021-06-11 को लिया गया ।

—— 00 ——

महर्षि वेद्व्यास

महर्षि कृष्णदैपायन वेदव्यास महाभारत ग्रंथ के रचयिता है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महर्षि पराशर और सत्यवती के पुत्र थे। महाभारत ग्रंथ का लेखन भगवान गणेश ने महर्षि वेदव्यास से सुन–सुनकर किया था (1) वेद व्यास महाभारत के रचयिता ही नहीं, बल्कि उन घटनाओं के साक्षी भी हैं, जो क्रमानुसार घटित हुई है। अपने आश्रम से हस्तिनापुर की समस्त गतिविधियों की सूचना उन तक पहुचती पहुंचती थी और वे उन घटनाओं पर अपना परामर्श भी देते थे। जब जब अंतर्द्वद्व और संकट की स्थिति आती थी। माता सत्यवती उनसे विचार–विमर्श के लिए कभी आश्रम पहुंचती तो कभी हस्तिनापुर के राजभवन में आमंत्रित करती थी। प्रत्येक द्वापर युग में विष्णु व्यास के रूप में अवतरित होकर वेदों के विभाग प्रस्तुत करते है। पहले द्वापर में स्वयं ब्रह्मा वेदव्यास हुए, दूसरें में प्रजापति, तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य चौथे में बृहस्पति वेदव्यास हुए इसी प्रकार सूर्य, मृत्यु, इन्द्र, धनंजय, कृष्ण, द्वैपायन, अश्वस्थामा आदि अठ्ठाईस वेदव्यास हुए। इस प्रकार अठ्ठाईस बार वेदों का विस्तार या विभाजन किया गया। ऐसा माना जाता है कि ''वेद–व्यास'' नाम वास्तविक नाम के बजाय एक शीर्षक है? क्योंकि कृष्ण द्वैपायन ने चार वेदों को संकलित किया था। आज भी कुरूक्षेत्र के समीप व्यासपुर (बिलासपुर) यमुना नगर में महर्षि वेद व्यास जी की तपस्वी स्थली, महर्षि वेदव्यासजी का मंदिर और पवित्र व्यास सरोवर है जो माँ सरस्वती नदी के तट पर स्थित है जिसका वर्णन धार्मिक ग्रंथ महाभारत और स्कंद पुराण में वर्णित है।

हिन्दु पौराणिक कथाओं के पात्र

नाम	–	कृष्णद्वैपायन वदेव्यास
अन्य नाम	–	कृष्णद्वैपायन, पाराशर्य
संदर्भ ग्रंथ	–	महाभारत पुराण आदि
जन्म स्थल	–	धब्दीबराह के समीप नदि नेपाल
व्यवसाय	–	वैदिक ऋषि
मुख्य शास्त्रः	–	महाभारत, 18 पुराण
माता–पिता	–	सत्यवती और ऋषि पाराशर

भाई–बहन	–	भीष्म, चित्रांगदा, और विचित्र वीर्य सौतेले भाई
जीवन साथी	–	उर्वशी
संतान	–	शुक्रदेव

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार महर्षि वेदव्यास स्वयं भगवान विष्णु के अवतार थे। निमोक्त श्लोको से इसकी पुस्टि होती है। जिनका जन्म नेपाल के छाब्दीबराह के निकट ही हुवा था।

नमोऽस्तुते व्यास विशालबुद्धे

फुल्लारविन्दा पयतपत्रनेत्रः।

येन त्वया भारततैलपूर्णः

प्रज्जवलितो ज्ञानमय प्रदीपः।। (2)

अर्थात् – जिन्होने महाभारत रूपी ज्ञान के दीप को प्रज्जवलित किया ऐसे विशाल बुद्धि वाले महर्षि वेदव्यास को मेरा नमस्कार है।

नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः।। (3)

महान वसिष्ठ मुनि को मैं नमन करता हूँ। (वसिष्ठ के पुत्र थे 'शक्ति' शक्ति के पुत्र पाराशर, और पाराशर के पुत्र व्यास।

वेदव्यास के विद्वान शिष्य :–

- पैल, जैमिनी, वैशम्यायन सुमन्तुमुनि रोमहर्षण। **वेदव्यास का योगदान –** हिन्दु धर्म शास्त्रों के अनुसार महर्षि व्यास त्रिकाल्ज्ञ थे तथा उन्होंने दिव्य दृष्टि देखकर जान लिया कि कलियुग में धर्म क्षीण हो जाऐगा। धर्म के क्षीण होने के कारण मनुष्य नास्तिक, कर्त्तव्यहीन और अल्पायु हो जायेगा। एक विशाल वेद का सांगोपांग अध्ययन उनके सामर्थ्य से बाहर हो जायेगा। इसीलिये महर्षि व्यास ने वेद का चार भागों में विभाजन किया जिससे कि कम बुद्धि एवं कम स्मरण शक्ति रखने वाले भी वेदों का अध्ययन कर सकें। व्यासजी ने उनका नाम रखा – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद वेदों का विभाजन करने के कारण ही व्यास जी वेद व्यास के नाम से विख्यात हुए। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को क्रमशः अपने शिष्य पैल, जैमिन, दैशम्पायन और सुमन्तुमुनि को पढ़ाया। वेद में निहित ज्ञान के

अत्यन्त गुढ़ तथा शुष्क होने के कारण वेदव्यास ने पाँच वेद के रूप में पुराणों की रचना की जिनमें वेद के ज्ञान को रोचक कथाओं के रूप में बताया गया है। पुराणों को उन्होने अपने शिष्य रोम हर्षण को पढ़ाया। व्यास जी के शिष्यों ने अपने बुद्धि के अनुसार उन वेदौं की अनेक शाखाएँ और उप–शाखाएँ बना दी। व्यास जी ने महाभारत की रचना की पौराणिक महाकाव्य युग की महान विभूति, महाभारत, अठारह पुराण श्रीमदभागवत, ब्रह्मसुत्र मीमांसा जैस अद्वितीय साहित्य दर्शन के प्रणेता वेदव्यास का जन्म आषाढ़ पूर्णिमा के लगभग 3000 ई. पूर्व में हुआ था। वेदान्त दर्शन, अद्वैतवाद के संस्थापक वेदव्यास ऋषि पराशर के पुत्र थे। पत्नी आरूणी से उत्पन्न इनके पुत्र थे महान बालयोगी शुकदेव। श्रीमद भगवतगीता विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य 'महाभारत' का ही अंश है। रामनगर के किले में प्रत्येक सोमवार मेला लगता है। गुरूपूर्णिमा का प्रसिद्ध पर्व व्यास जी की जयन्ती के उपलक्ष में मनाया जाता है। (4)

पुराणों तथा महाभारत के रचयिता महर्षि का मंदिर व्यासपुरी में विद्यमान है जो काशी से पाँच मील की दूरी पर स्थित है। महाराज काशी नरेश के रामनगर दुर्ग में भी पश्चिम भाग में व्यासेश्वर की मूर्ति, विराजमान है जिसे साधारण जनता छोटा वेदव्यास के नाम से जानती है। वास्तव में यह वेदव्यासजी की सबसे प्राचीन मूर्ति है। व्यासजी द्वारा काशी को शाप देने के कारण विश्वेश्वर ने व्यासजी की काशी से निस्कासित कर दिया था। तब व्यासजी लोलार्क मंदिर के आग्नेय कोण में गंगाजी के पूर्वी तट पर स्थित हुए। (4) इस घटना का उल्लेख काशी खंड में इस प्रकार हैं :–

लोलार्कादं अग्निदिग्भागे, स्वर्धुनी पूर्वरोधसिं। स्थितों हयाद्यापि
पश्चेत्रतः काशीप्रासाद् राजिकाम्।। स्कंदपुराण, काशीखंड 96/201 (4)

व्यास जी ने पुराणों तथा महाभारत की रचना करने के पश्चात् ब्रह्मसूत्रों की रचना भी यहाँ की थी। वाल्मीकी की ही तरह व्यास भी संस्कृत कवियों के लिये उपजीव्य है। महाभारत में उपाख्यानों का अनुसरण कर अनेक संस्कृत कवियों ने काव्य, नाटक आदि की सृष्टि की है। महाभारत के संबंध में स्वयं व्यासजी की ही उक्ति सटीक है – इस ग्रंथ में जो कुछ है, वह अन्यत्र हैं, परन्तु जो इसमें नही है, वह अन्यत्र कही भी नहीं हैं (4)

काल्पीक में युमना के किसी द्वीप में इनका जन्म हुआ था। व्यासजी कृष्ण द्वैपायन कहलायें क्योंकि उनका रंग श्याम था। वे पैदा होते ही माँ की आज्ञा से तपस्या करने चले गये थे, और कह गये थे कि जब भी तुम स्मरण करोगी, मैं आ जाऊंगा। वे धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर के जन्मदाता ही नही अपितु विपत्ति के समय वे छाया की तरह पाण्डवों का साथ भी देते थे। उन्होनें तीन वर्षो के अथक परिश्रम से महाभारत ग्रंथ की रचना की थी :–

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनोमुनिः। महाभारत आख्यानं

कृतवादि मुदतमम्।। आदिपर्व – (56, 52) (4)

जब इन्होने धर्म का ह्रास होते देखा तो इन्होने वेद का व्यास अर्थात विभाग कर दिया और वेदव्यास कहलाये। वेदों का विभाग कर इन्होने अपने शिष्य सुमन्तु, जैमिनी, पैल और वैशम्पायन तथा पुत्र शुक्रदेव को उनका अध्ययन कराये तथा महाभारत का उपदेश दिया आपकी इस अलौकिक प्रतिभा के कारण आपको भगवान का अवतार माना जाता है।

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि के बाद व्यास ही सर्वश्रेष्ठ कवि हुए है। इनके लिखे काव्य ''आर्ष काव्य'' के नाम से विख्यात है। व्यास जी का उद्देश्य महाभारत लिख कर युद्ध का वर्णन करना नही, बल्कि इस भौतिक जीवन की निःसारता को दिखाना है। उनका कथन है कि भले ही कोई पुरूष वेदांत तथा उपनिषदों को जानले लेकिन वह कभी विचक्षण नही हो सकता क्योंकि यह महाभारत एक साथ अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र है। (4)

यो विध्याच्चतुरी वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः । न

चाख्यतमिदं विध्यानैव सस्यादिचक्षणः।। 2 अर्थशास्त्रमिदं

प्रोक्त धर्मशास्त्रमिदं महत्। कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेना मितु बुद्धिना,।।

महा आदि अ. 2 : 28–83 (4)

सन्दर्भ :–

1. कैसे बनीये दुनियाः होमर के इलियड में देवताओं और युद्ध की दास्तान। अभिमान तिथि 23 जून 2018

2. Mathur & Nirmale Gupta & Aruna, Sanskar Book 3 S Chand Publishing आई.एस.बी.एन. 978–81–219–2972–1

3. **Shloke-Vishnu 6" Sanskrit - Today** (अंग्रेजी`में) 2017–03–03 मूल से 4 मई 2017 को पूरालेखित अभिगमन तिथि 2020–01–08

4. अ आ इ ई ऊ ए **Varanasi-Kashi Ki Vibhutiya Maharshi Vadvyas" lgnca.nic.in** मूल 14 दिसम्बर 2017 को पूरालेखित – अभिगमन तिथि 2020–01–08. साभार विकिपिडीया से लिया।

महर्षि भृगु

वेद पुराणादि के प्रामाणिक पात्र महर्षि भृगु का जन्म लाखों वर्ष पूर्व ब्रह्मलोक – सुषा नगर) में हुआ था। ये आज सनातनी धर्मग्रंथों में वर्णित ब्रह्मा के पुत्र थे ये अपनी माता–पिता से सहोदए दो भाई थे। इनके बड़े भाई का नाम अंगिरा ऋषि था जिनके पुत्र बृहस्पति जी हुए जो देवगणों के पुरोहित–देवगुरू के रूप में जाने जाते है। महर्षि भृगु द्वारा रचित ज्योतिष ग्रंथ 'भृगुसंहिता' के लोकार्पण एवं गंगा सरयू नदियों के संगम के अवसर पर जीवनदायिनी गंगा नदी के संरक्षण और याज्ञिक परम्परा से महर्षि भृगु ने अपने शिष्य दर्दर के सम्मान में ददरी मेला प्रारम्भ किया।

केवट भृगु की दो पत्नियों का उल्लेख आर्षग्रन्थों में मिलता है। इनकी पहली पत्नि दैत्यों के अधिपति हिरण्यकश्प की पुत्री दिव्या थी। जिनसे आपके दो पुत्रों क्रमशः काव्य शुक्र और त्वष्टा विश्वकर्मा का जन्म हुआ। सुषानगर ब्रह्मलोक में पैदा हुए महर्षि भृगु के दोनों पुत्र विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। बड़े पुत्र काव्य–शुक्र खगोल ज्योतिष यज्ञ कर्मकांडो के निष्णाम विज्ञान हुए मातृकुल में आपको आचार्य की उपाधि मिली। ये जगत में शुक्राचार्य के नाम से विख्यात हुए। दूसरे पुत्र त्वष्टा–विश्वकर्मा वास्तु के निपुण शिल्पकार हुए। मातृकुल दैत्यवंश में आपको 'मय' के नाम से जाना गया। अपनी पारंगत शिल्प दक्षता से ये भी जगद्ख्यात हुए।

महर्षि भृगू की दूसरी पत्नी दानवों के अधिपति पुलोम ऋषि की पुत्री पौलमी थी इनसे भी दो पुत्रों च्यवन और ऋचीक पैछा हुए। बड़े पुत्र च्यवन का विवाह मुनिवर ने गुजरात भड़ौच (खम्भात की खाड़ी) के राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या से किया। भार्गव च्यवन और सुकन्या के विवाह के साथ ही भार्गवों का हिमालय के दक्षिण पर्दापण हुआ। च्यवन ऋषि खम्भात की खाड़ी के राजा बने और इस क्षेत्र को भृगु कच्छ भृगु क्षेत्र के नाम से जाना जाने लगा। आज भी भड़ौच में नर्मदा के तट पर भृगु मन्दिर बना है।

महर्षि भृगु ने अपने दूसरे पुत्र ऋचिक का विवाह कन्याकुब्ज पति कौशिक राजा गाधि की पुत्री सत्यवती के साथ एक हजार श्यामकर्ण घोड़े उपहार देकर किया। अब भार्गव ऋचिक भी हिमालय के दक्षिण गाधिपुरी का एक क्षेत्र (वर्तमान बागी बलिया जिला उ.प्र.) आ गये।

महर्षि भृगु के इस विमुक्त क्षेत्र में आने के कई कथानक आर्ष ग्रंथों में मिलते है। पौराणिक, ऐतिहासिक आख्यानों के अनुसार ब्रह्मा – प्रचेता पुत्र भृगु द्वारा हिमालय के

दक्षिण दैत्य, दानव, और मानव जातियों के राजाओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर मेल जोल बढ़ाने से हिमालय के उत्तर की देव, गन्धर्व यक्ष जातियों के नृवंशों में आक्रोश पनप रहा था। जिससे सभी लोग देवों के संरक्षक भगवान विष्णु को दोष दे रहे थे। दूसरे बारहो आदित्यों में भार्गवों का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था। इसी बीच महर्षि भृगु के श्वसुर–दैत्यराज हिरण्यकश्चप ने हिमालय के उत्तर के राज्यों पर चढ़ाई कर दिया। जिससे महर्षि भृगु के परिवार में विवाद होने लगा। महर्षि भृगु यह कह कर की राज्य सीाम का विस्तार करना राजा का धर्म है, अपने श्वसुर का पक्ष ले रहे थे।

इस विवाद का निपटारा महर्षि भृगु के परदादा मरीचिमुनि ने इस निर्णय के साथ किया कि भृगु हिमालय के दक्षिण जाकर रहे। उनके दिव्यादेवी से उत्पन्न पुत्रों को सम्मान सहित पालन–पोषण की जिम्मेदारी देवगण उठायेंगे। इस प्रकार महर्षि भृगु सुषनगर से अपनी दूसरी पत्नी पौलकी को साथ लेकर अपने छोटे पुत्र ऋचाक के पास गाधिपुरी (वर्तमान बलिया) आ गये महर्षि भृगु इस क्षेत्र में आने दूसरा आख्यान कुछ धार्मिक ग्रंथों पुराणों में मिलता है। देवी भागवत के चतुर्थ स्कंध विष्णु पुराण, अग्नि पुराण, श्रीमद भागवत में खण्डों में विखरे वर्णनों के अनुसार महर्षि भृगु प्रचेता ब्रह्मा के पुत्र है, इनका विवाह दक्ष प्रजापति की पुत्री ख्याति से हुआ था। जिससे इनके दो पुत्र काव्य शुक्र और त्वष्टा तथा एक पुत्री 'श्री' लक्ष्मी का जन्म हुआ। इनकी पुत्री 'श्री' का विवाह श्री हरि विष्णु से हुआ। दैत्यों के साथ हो रहे देवासुर संग्राम में महर्षि भृगु की पत्नी ख्याति जो योगशक्ति सम्पन्न तेजस्वी महिला थी। दैत्यों की सेना के मृतक सैनिकों वह अपने योगबल से जीवित कर देती थी। जिससे नाराज होकर श्रीहरि विष्णु ने शुक्राचार्य की माता भृगुजी की पत्नि ख्याति का सिर अपने सुदर्शन चक्र से काट दिया। अपनी पत्नी की हत्या होने की जानकारी होने पर महर्षि भृगु भगवान विष्ण को शॉप देते है कि तुम्हें स्त्री के पेट से बार–बार जन्म लेना पड़ेगा। उसके बाद महर्षि अपनी पत्नी ख्याति को अपने योगबल से जीवित कर गंगा तट पर आ जाते है, तमसा नदी की सृस्टि करते है।

पद्य पुराण के उपसंहार खण्ड की कथा के अनुसार मन्दराचल पर्वत है यज्ञ में ऋषि मुनियों में इस बात पर विवाद छिड़ गया कि त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, शंकर) में श्रेष्ठ देव कौन है? देवों की परीक्षा के लिये ऋषि मुनियों ने महर्षि भृगु को परीक्षक नियुक्त किया।

त्रिदेवों की परीक्षा लेने के क्रम में महर्षि सबसे पहले भगवान शंकर के कैलाश पहुँचे उस समय भगवान शंकर अपनी पत्नी सती के साथ विहार कर रहे थे। नन्दी आदि

रूद्रगणों ने महर्षि को प्रवेश द्वार पर ही रोक दिया। इनके द्वारा भगवान शंकर से मिलने की हट करने पर रूद्रगणों ने महर्षि को अपमानित भी कर दिया कृपिल महर्षि भृगु ने भगवान शंकर को तमोगुणी घोषित करते हुए लिंग रूप में पुजित होने का शॉप दिया।

यहाँ से महर्षि भृगु ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी अपने दरबार में विराज रहे थे सभी देवगण उनके समक्ष बैठे हुए थे। भृगु जी को ब्रह्माजी ने बैठने तक को नही कहा। तब महर्षि भृगु ने ब्रह्माजी को रजोगुणी घोषित करते हुए अपुज्य जिसकी पूजा ही नही होगी। होने का शॉप दिया। कैलाश और ब्रह्मलोक में मिले अपमान तिरस्कार से क्षुभित महर्षि विष्णुलोक चल दिये।

भगवान श्रीहरि विष्णु क्षीर सागर में सर्पाकार सुन्दर नौका (शेषनाग) पर अपनी पत्नी लक्ष्मी श्री के साथ विहार कर रहे थे। उस समय श्री विष्णुजी शयन कर रहे थे। महर्षि भृगु जी को लगा कि हमें आता देख विष्णु सोने का नाटक कर रहे है। उन्होने अपने दाहिने पैर का आघात श्री विष्णु जी की छाती पर कर दिया। महर्षि के इस अशिष्ट आचरण पर विष्णुप्रिया लक्ष्मी जो श्री हरि के चरण दबा रही थी कुपित हो उठी। लेकिन श्री विष्णुजी ने महर्षि का पैर पकड़ लिया और कहा भगवन मेरे कठोर वक्ष से आपके कोमल चरण`मं चोट तो नहीं लगी। महर्षि भृगु लज्जित भी हुए और प्रसन्न भी उन्होने श्री हरि विष्णु को त्रिदेवों में श्रेष्ठ सतोगुणी घोषित कर दिया।

त्रिदेव की इस परीक्षा में जहाँ एक बहुत बड़ी सीख छिपी है। वही एक बहुत बड़ी कूटनीति भी छिपी थी। इस घटना से एक लोकोक्ति बनी।

क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात

का हरि को घटयो गयो, ज्यों भृगु मारि लात।

हिमालय के दक्षिण में देवकुल नायक श्रीविष्णु को प्रतिष्ठापित करने के लिए महर्षि भृगु ही सबसे उपर्युक्त माध्यम थे। उनकी एक पत्नी दैत्यकुल से थी। तो दुसरी दानव कुल से थी और उनके पुत्रों शुक्राचार्यो, त्वस्टामय विश्व–कर्मा तथा भृगुकच्छ (गुजरात) मे च्यवन तथा गाधिपुर (उ.प्र.) में ऋचीक का बहुत मान सम्मान था। इस त्रिदेव परीक्षा के बाद हिमालय के दक्षिण में श्री विष्णु की प्रतिष्ठा स्थापित होने लगी। विशेष रूप से राजाओं के अभिषेक में श्री विष्णु का नाम लेना हिमालय पारस्य देवों की कृपा प्राप्ति ओर मान्यता मिलना माना जाने लगा।

पुराणों में वर्णित आख्यान के अनुसार त्रिदेवों की परीक्षा में विष्णु वक्ष पर पद प्रहार करने वाले महर्षि भृगु को दण्डाचार्य मदीचि ऋषि ने पश्चाताप का निर्देश दिया। जिसके लिये भृगु जी को एक सूखे बांस की छड़ी में कोंपले फूल और आपके कमर से मृगछाल पृथ्वी पर गिर पड़े। वही धरा सबसे पवित्र वही आप विष्णु सहस्त्र नाम का जप करेगे तब आपके इस पाप का मोचन होगा मन्दराचल से चलते हुए जब महर्षि भृगु विमुक्त क्षेत्र वर्तमान बलिया जिला उ.प्र. के गंगातट पर पहुँचे तो उनकी मृगछाल गिर पड़ी और छड़ी में कोंपले फूट पड़ी। जहां उन्होने तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। कालान्तर में यह भू भाग महर्षि के नाम से भृगु क्षेत्र कहा जाने लगा और वर्तमान में बागी बलिया (उ.प्र.) जो कि स्वतंत्रता संग्राम मैं प्रथम आजाद जिला है। नाम से जाना जाता है।

महर्षि भृगु ने इस भू–भाग पर (वर्तमान बलिया जिला उ.प्र.) आने के बाद यहाँ के जंगले की साफ कराया यहां मात्र पशुओं के आखेट पर जीवन यापन कर रहे जनसामान्य को खेती करना सिखाया यहाँ गुरूकुल की स्थापना करके लोगों को पढ़ना–लिखना सिखाया। उस कालखण्ड में इस भू–भाग को नरभक्षी मानवों का निवास माना जाता था। उन्हें सभ्य, सुसंस्कृत मानव बनाने का कार्य महर्षि द्वारा किया गया।

भृगु संहिता :– महर्षि भृगु के पारिवारक जीवन से अपरिचित जन भी महर्षि द्वारा प्राणीत, ज्योतिष खगोल के महान ग्रंथ भृगु संहिता के बारे में जानते है। इस नाम से अनेक पुस्तके आज भी साहित्य विक्रेताओं के यहाँ बिकती हुई दिखाई देती है।

महर्षि ने भृगु संहिता ग्रंथ की रचना अपनी दीर्घ कालीन निवास की कर्मभूमि विमूक्त भूमि बलिया में ही किया था। इस संदर्भ में दो बाते ध्यान देने की है। पहली बात यह है कि, अपनी जन्मभूमि ब्रह्मलोक (सुषानगर) में निवास काल में उनका जीवन झंझावातों से भरा हुआ था अपनी पत्नी दिव्या देवी की मृत्यु से व्यथित और त्रिदेवों की परीक्षा के उपरान्त जन्म भूमि से निष्कासित महर्षि को उसी समय शान्ति से जीवन व्यतीत करने का अवसर मिला जब वह विमुक्त भूमि में आये। भृगुकच्छ गुजरात में पहुंचने के समय तक उनकी ख्याति चतुर्दिक फैल चुकी थी। क्योंकि उस समय तक उनके भृगु संहिता को भी प्रसिद्धि मिल चुकी थी और उनके शिष्य दर्दर द्वारा भृगु क्षेत्र में गंगा–सरयू के संगम कराने की बात भी पूरा आर्यवर्त जान चुका था। आख्यानों के अनुसार खम्भात की खाड़ी में महर्षि के पहुँचने पर उनका राजसी अभिनन्दन किया गया था, तथा वैदिक विद्वान ब्राह्मणों ने स्वतिवाचन करते हुए उन्हें आत्मज्ञानी ज्योतिष के प्रकाण्ड पंडित के रूप में उनकी

अभ्यर्थना की थी। जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि महर्षि द्वारा भृगु संहिता की रचना सुषानगर से निष्कासन के बाद और गुजरात के भृगुकच्छ जाने से पूर्व की गई थी।
महर्षि की इस संहिता द्वारा किसी भी जातक के तीन जन्मों का फल निकाला जा सकता है। इस ब्रह्मांड को नियंत्रित करने वाले सूर्य, चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि ग्रहों और नक्षत्रों पर आधारित वैदिक गणित के इस वैज्ञानिक ग्रंथ के माध्यम से जीवन और कृषि के लिए वर्षा आदि की भी भविष्यवाणियाँ की जाती थी।

महर्षि के कालखण्ड में कागज और छपाई की सुविधा उपलब्ध नही थी। ऋचाओं को कंठस्थ कराया जाता था और इसकी व्यावहारिक जानकारी शलाकाओं के माध्यम से शिष्यों को दी जाती थी। कालान्तर में जब लिखने की विधा विकसित हुई और उसके संसाधन मसि भोजपत्र ताड़पत्र आदि का विकास हुआ तब कुछ विद्वानों ने इन ऋचाओं को लिपिबद्ध करने का काम किया। **नोट :– विकिपिडिया से आभार लिया।**

महर्षि वाल्मीकी

रामायण व योग विशिष्ट के रचयिता

अन्य नाम	आदि कवि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, योगर्षि, आदिनाथ, मुनिनाथ, त्रिकालदर्शी, ज्ञानसागर, आदि अनंत, मोक्षवान, सृष्टिकर्ता, सर्वव्यापी, योगविशिष्ट रचयिता।
संबंध	हिन्दु सनातन धर्म
शास्त्र	रामायण, पावन योग विशिष्ट
	अक्षर–लक्ष के रचनाकार
त्यौहार	वाल्मीकी प्रकट दिवस

महर्षि वाल्मीकी, संस्कृत रामायण के प्रथम रचयिता है जो आदि कवि के रूप में प्रसिद्ध है।

(1) उन्होनें रामायण की रचना की।

(2) महर्षि वाल्मीकि के द्वारा रची रामायण वाल्मीकि रामायण कहलाई जाती है, रामायण एक महाकाव्य है जो कि राजा राम के सत्य व कर्तव्य से परिचित करवाता है।

(3) आदि कवि शब्द 'आदि' और 'कवि' के मेल से बना है 'आदि' का अर्थ होता है प्रथम और कवि का अर्थ होता है 'काव्य' का रचयिता'। महर्षि वाल्मीकि ने संस्कृत के प्रथम महाकव्य के साथ संसार का पहला श्लोक भी कहे हैं जिसके पश्चात् ही रामायण की रचना हुई है। प्रथम संस्कृत महाकाव्य की रचना करने के कारण वालमिकि आदि कवि कहलाये। वाल्मीकि जी आदि कवि थे।

आदि कवि वाल्मीकिका जीवन परिचय :–

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने 24000 श्लोकों में श्रीराम उपाख्यान 'रामायण' लिखी। ऐसा वर्णन है कि एक बार वाल्मकि क्रौच पक्षी के एक जोड़े को निहार रहे थे। वह जोड़ा प्रेमालाप में लीन था, तभी उन्होने देखा की बहेलिये ने प्रेममग्न क्रौंच (सारस) पक्षी के जोड़े में से नर पक्षी का वध कर दिया इस पर मादा पक्षी विलाप करने लगी। उसके विलाप को सुनकर वाल्मीकि की करूणा जाग उठी और द्रवित अवस्था में उनके मुख से स्वतः ही यह श्लोक फूट पड़ा।

''माँ निषाद प्रतिष्ठां त्वगंमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौचमिथुनादेकं वधाः काममोहितम्।।''

अर्थ :– हे दुष्ट, तुमने प्रेम में मग्न क्रौंच पक्षी को मारा है। जा तुझे कभी भी प्रतिष्ठा प्राप्ति नही हो पायेगी और तुझे भी वियोग झेलना पड़ेगा। उसके बाद उन्होने प्रसिद्ध महाकाव्य ''रामायण'' (जिसे वाल्मीकि रामायण''के नाम से भी जाना जाता है)। की रचना की और ''आदि कवि वाल्मीकि के नाम से अमर हो गये। अपने महाकाव्य ''रामायण'' में उन्होने अनेक घटनाओं के समय सूर्य, चंद्र तथा अन्य नक्षत्रों की स्थितियों का वर्णन किया है। इससे ज्ञात होता है कि वे ज्योतिष विद्या एवं खगोल विद्या के भी प्रकाण्ड ज्ञानी थे। महर्षी वाल्मिकी जी ने पवित्र ग्रंथ रामायण की रचना की परन्तु वे आदिराम से अनभिज्ञ रहे। (4)

राम राम सब जग बखाने । आदि

राम कोई बिरला जाने।

अपने वनवास काल के दौरान भगवान ''श्रीराम'' वाल्मीकि के आश्रम में भी गये थे। वाल्मीकि को ''श्रीराम'' के जीवन में घटित प्रत्येक घटना का पूर्ण ज्ञान था। सतयुग, त्रेता और द्वापर तीनों काल में वाल्मीकि का उल्लेख मिलता है रामचरित मानस के अनुसार जब श्रीराम वाल्मीकि आश्रम आए तो आदि कवि वाल्मीकि के चरणों में दण्डवत प्रणाम करने के लिए वे जमीन पर डंडे की भांति लेट गए थे और उनके मुख से निकल था ''तुम त्रिकालदर्शी मुनिनाथा, विस्व बदर जिभि तुअरे हाथा।'' अर्थात् आप तीनों लोकों को जानने वाले स्वयं प्रभु है। ये संसार आपके हाथ में एक बैर के समान प्रतीत होता है। (5)

महाभारत काल में भी वाल्मीकि का वर्णन मिलता है। (6) जब पांडव कौरवों से युद्ध जीत जाते हैं तो द्रौपदी यज्ञ रखती है, जिसके सफल होने के लिये शंख का बजना जरूरी था परन्तु कृष्ण सहित सभी द्वारा प्रयास करने पर भी यज्ञ सफल नही होता तो कृष्ण के कहने पर सभी वाल्मीकि से प्रार्थना करते हैं। जब वाल्मीकि वहां प्रकट होते है ''सुपच रूप धार सतगुरू आए। पाण्डवों के यज्ञ में शंख बजाए'' (उद्धरण चाहिए)

संदर्भ :–

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी (2007), हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावाली – राजकमल प्रकाशन पृ.91 आई.एस.बी.एन. 9788126713639

2. Pattanaik, Devdutt (8 August 2020) was Ram Born in Ayodhya - Mumbaimirror

3. ''संग्रहीत प्रति'' – मूल से 17 नवंबर 2017 को पुरालेखित –अभिगमन तिथि 23 नवंबर 2016

4. "Valmiki Jayanti 2021 : महर्षि वाल्मीकि जयंती पर जाने आदिराम और राम में अंतर'' – (SA News Channel (अंग्रेजी में) 2021–10–18 अभिगमन तिथि 2021–10–18

5. Cite book title सहरिया date 2009/ Publisher = वन्या (For) आदिम जाति कल्याण विभाग

6. जोशी अनिरूध Ramayan in Mahabharata महाभारत में रामायण रामकथा'' hindi.webdunia.com. अभिगमन तिथि 2021. 10.18

वाल्मीकि जी के आरम्भ काल की कथा बड़ी रोचक है। महर्षि वाल्मीकि का पहला नाम रत्नाकर था। मान्यता है कि उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। किन्तु डाकुओं के संग में रहने के कारण वे लूटपाट और हत्याए करने लगे ओर यही इनकी आजीविका का साधन हो गया। इन्हें जो भी मार्ग में मिलता वह उनकी, संपत्ति लूट लिया करते थे। एक दिन इनकी मूलाकात देवर्षि नारद से हुई इन्होने नारद से कहा कि तुम्हारे पास जो कुछ है उसे निकाल कर रख दो नही तो तुम्हे जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। देवर्षि नारद ने कहा, ''मेरे पास इस वीणा और वस्त्र के अलावा कुछ और नही है? तुम लेना चाहो तो इसे ले सकते हो, लेकिन तुम यह क्रूर कर्म करके भयंकर पाप क्यो करते हो? देवर्षि की कोमल वाणि सुनकर वाल्मीकि का कठोर हृदय कुछ द्रवित हुआ। इन्होने कहा भगवन मेरी आजीविका का यही साधन है और इससे ही मैं अपने परिवार का भरण पोषण करता हूँ। देवर्षि तब बोले तुम अपने परिवार वालों से कि वह तुम्हारे द्वारा केवल भरण पोषण के अधिकारी है या फिर तुम्हारे पाप कर्मो में भी यदि हिस्सा बंटायेगें। तुम विश्वास करो कि तुम्हारे लैटने तक हम यहां से कही नही जायेंगे। वाल्मीकि ने जाते समय नारदजी को वृक्ष से बांध दिया, घर जाकर परिजनों से उक्त प्रश्न पूछा तो सभी ने कहा कि यह तुम्हारा कर्तव्य है कि हमारे भरण पोषण करो परन्तु हम तुम्हारे पाप कर्मो में क्यों भागीदार बनें।

परिजनों की बात सुनकर वाल्मीकि को आघात लगा। उनके ज्ञान नेत्र खुल गये। वह जंगल पहुंचे और वहां जाकर देवर्षि नारद को बंधनों से मुक्त किया तथा विलाप करते हुए उनके चरणों में गिर पड़े और अपने पापो का प्रायश्चित करने का उपाय पूछा। नारदजी ने उन्हें धैर्य बंधाते हुए राम नाम के जप की सलाह दी। लेकिन चूंकी वाल्मीकि ने भयंकर अपराध किये थे इसलिए वह राम राम का उच्चारण करने में असमर्थ रहे तब नारद जी ने उन्हें मरा मरा उच्चारण करने को कहा बार–बार मरा मरा कहने से राम राम का उच्चारण स्वतः ही हो जाता है।

नारदजी का आदेश पाकर वाल्मीकि नाम जप में लीन हो गये। हजारों वर्षो तक नाम जप की प्रबल निष्ठा ने उनके संपूर्ण पापों को धो दिया। उनके शरीर पर दीमकों ने बांबी बना दी। दीमकों के घर को वाल्मीकि कहते है। उसमें रहने के कारण ही उनका नाम वाल्मीकि पड़ा। ये संसार में लौकिक छंदों के आदि कवि हुए। इन्होने ही रामायण रूपी आदिकाव्य की रचना की। वनवास के समय भगवान श्रीराम ने इन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। सीता जी ने अपने वनवास का अंतिम समय इनके आश्रम में बिताया। वही पर लव और कुश का जन्म हुआ वाल्मीकि जी ने उन्हें रामायण का गान सिखाया। इस प्रकार नाम जप और सत्संग से वाल्मीकि डाकू से ब्रह्मर्षि बन गये।

इनके जन्म की विभिन्न कथाऐं भी अलग–अलग प्रकार से मिलती है।

संदर्भ– साभार नेट से लिया।

महर्षि दधीचि

दधीची प्राचीन काल के परम तपस्वी और ख्याति प्राप्त महर्षि थे। कहने को तो 'भारतीय इतिहास' में कई दानी हुए हैं, किन्तु मानव कल्याण के लिए अपनी अस्थियों को दान करने वाले मात्र महर्षि दधीचि ही थे। महर्षि दधीचि ने उनका अहित चाहने वाले इंद्र को ही अपनी अस्थियाँ दान कर दी।

महर्षि दधीचि का परिचय :– महर्षि दधीचि की माता का नाम चित्ति और पिता का नाम अथर्वा था अपना संपूर्ण जीवन भगवान शिव की भक्ति में व्यतित किया। महर्षि दधीचि वेदशास्त्रों आदि के पूर्ण ज्ञाता थे। उनके स्वभाव की बात करे तो वह बहुत ही दयालु थे। उन्होने लोकहित के लिये कठोर तपस्या की। महर्षि दधीचि के तप के तेज के कारण देवराज इंद्र के मन में अनावश्यक डर पैदा हो गया था।

महर्षि की तपस्या भंग करना चाहते थे इंद्र – अपने तप और ध्यान के कारण महर्षि दधीचि के तेज से तीनों लोक आलोकित हो उठे उधर इन्द्र का तेज दिन–ब–दिन कम होता जा रहा था जिससे इंद्रदेव को महर्षि दाधीचि से ईर्ष्या का भाव उत्पन्न होने लगा। इन्द्र को लगा कि महर्षि उससे इन्द्रसन छीनना चाहते है। तब इन्द्र ने महर्षि दधीचि की तपस्या भंग करने के लिये कामदेव और एक अप्सरा को भेजा, लेकिन वे महर्षि की तपस्या भंग करने में असमर्थ रहे। तब इन्द्र उनकी हत्या के इरादे से सेना सहित वहां पहुंचा। लेकिन उसके अस्त्र–शस्त्र महर्षि के तप के अभेद्य कवच को भेद न सके और वे शांत भाव से समाधिस्त बैठे रहे। अपने असफल प्रयास से हार कर इन्द्र स्वर्ग लौट गए। इस घटना के कुछ समय बाद वृत्रासुर नामक राक्षस ने देवलोक पर कब्जा कर लिया और इन्द्र सहित सभी देवताओं को देवलोक से बाहर निकाल दिया।

महर्षि के परोपकार की कथा :– वृत्रासूर के देवलोक पर कब्जा करने के बाद सभी देवता अपनी व्यथा लेकर ब्रह्माजी के पास गये । तब प्रजापति ब्रह्माजी ने उन्हें एक उपाय बताया कि पृथ्वी लोक में 'दधीचि' नाम के महर्षि रहते है। यदि वे अपनी अस्थियों का दान कर दे तो उन अस्थियों से एक वज्र बनाकर वृत्रासूर राक्षस को मारा जा सकता है। इसलिये उनके पास जाकर उनकी अस्थियां मांगों।

परन्तु देवराज इन्द्र महर्षि दधीचि के पास जाने से कतरा रहे थे। वह सोचने जगे कि मैने जिनकी हत्या का प्रयास किया वह मेरी सहायता क्यों करेगे। लेकिन इसके अलावा कोई और अन्य उपाय नही था। इसलिए इंद्र महर्षि दधीचि के पास पहुंचा और झिझकते

हुए बोला महात्मन, तीनों लोकों के मंगल हेतु हमें आपकी अस्थियां चाहिए। इस पर महर्षि बड़ी ही विनम्रता के साथ बोले – हे

इन्द्रदेव यदि मेरी अस्थियों से मानव और दवजाति का कुछ हित होता है में सहर्ष अपनी अस्थियों का दान देने के लिए तयार हूँ। इन्द्र यह सुनकर हैरत में पड़ गए।

अस्थियों से बनाया तेजवान वज्र :– महर्षि ने योग विद्या से अपना शरीर त्याग दिया महर्षि शरीर की त्वाचा, मांस और मज्जा उनके शरीर से अलग हो गए। मानव देह के स्थान पर सिर्फ उनकी अस्थियां ही शेष रह गई। इन्द्र ने उन अस्थियों को श्रद्धापूर्वक नमन किया और उन्हें ले जाकर –'तेजवान' नामक वज्र बनाया। इसी व्रज के बल पर उन्होनें वृत्रासूर का वध कर डाला और तीनों लोक उसके भय से मुक्त हो गये साथ ही देवताओं को भी अपना देवलोक पुनः प्राप्त हो गया।

साभार :– https://www.jagran.com जागरण से लिया।

- किसी पुराण के अनुसार यह कर्दम ऋषि की कन्या 'शांति के गर्भ से उत्पन्न अथर्वा के पुत्र थे। अन्य पुराणानुसार यह शुक्राचार्य के पुत्र थे।
- दधीचि के मास से भगवान विष्णु का सुदर्शन चक्र भी बना है।
- माना जाता है कि ब्रह्म विद्या का ज्ञान पूरे विश्व में केवल महर्षि दधीचि को ही था। लेकिन महर्षि मात्र विशिष्ट व्यक्ति को ही इस विद्या का ज्ञान देना चाहते थे, लेकिन इंद्र ब्रह्मविद्या प्राप्त करने के इच्छुक थे। दधीचि की दृष्टि में इन्द्र इस विद्या के पात्र नही थे। इसलिए उन्होने इस विद्या को इन्द्र को देने के लिये मना कर दिया, तब इन्द्र ने ब्रह्मविद्या किसी अन्य की देने के लिय भी मना कर दिया और कहा कि ''यदि आपने ऐसा किया तो में आप का सिर धड़ से अलग कर दूंगा। ''महर्षि ने कहा कि, ''यदि उन्हें कोई योग्य व्यक्ति मिलेगा तो वे अवश्य ही ब्रह्मविद्या उसे प्रदान करेगें।'' जब इन्द्रलोक से ही अश्विनी कुमार महर्षि दधीचि के पास ब्रह्मविद्या लेने पहुँचे। दधीचि को अश्विनी कुमार ब्रह्मविद्या पाने के योग्य लगे। उन्होने अश्विनीकुमारो को इन्द्र द्वारा कही गई बाते बताईं तब अश्विनी कुमारो ने महर्षि दधीचि के अश्व का सिर लगाकर ब्रह्म विद्या प्राप्त कर ली। इन्द्र को जब यह पता चला तो पृथ्वी लोक में आकर उन्होने दधीचि का सिर धड़ से अलग कर दिया।

अश्विनी कुमारो ने महर्षि के असली सिर को धड़ से फिर लगा दिया। यही कारण था कि इन्द्र महर्षि दधीचि के पास उनकी अस्थियों का दान मागने के लिये जाने में संकोच कर रहे थे।

- महर्षि दधीचि की पत्नी का नाम गमस्तिनी था – महर्षि दधीचि ने तो अपनी देह देवताओं की भलाई के लिए त्याग दी, लेकिन जब उनकी पत्नी गमस्तिनी' वापस आश्रम में आई तो अपने पती की देह को देखकर विलाप करने लगी तथा सती होने की जिद करने लगी। तब देवताओं ने उन्हें बहुत मना किया, क्योंकि वह गर्भवती थी। देवताओं ने उन्हें अपने वंश के लिए सती न होने की सलाह दी। लेकिन गर्भस्तिनी नही मानी तब सभी ने उन्हें अपने गर्भ को देवताओं को सौंपने का निवेदन किया। इस पर गभस्तिनी राजी हो गई और अपना गर्भ देवताओं को सौंपकर स्वयं सती हो गई देवताओं ने गर्भस्तिनी के गर्भ को बचाने के लिये पिपल को उसका लालन–पालन करने का दायित्व सौंपा कुछ समय बाद वह गर्भ पल कर शिशु हुआ तो पीपल द्वारा पालन–पोषण करने के कारण उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा गया। इसी कारण दधीचि के वंशज 'दाधीच' कहलाते है।

साभार – नेट से

अध्याय पंचम

महर्षि अगस्त

अगस्त (तमिलः अगतियार) एक वैदिक ऋषि थे। ये वशिष्ठ मुनि के बड़े भाई थे। इनका जन्म श्रावण शुक्ल पंचमी (तद्नुसार 3000 ई.पू. को काशी में हुआ था) वर्तमान में वह स्थान अगस्तकुंड के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी पत्नी लोपामुद्रा विदर्भदेश की राजकुमारी थी। इन्हें सप्तर्षियों में से एक माना जाता है। देवताओं के अनुरोध पर इन्होने काशी छोड़कर दक्षिण की यात्रा की और बाद में वही बस गये थे। वैज्ञानिक ऋषियों के क्रम में महर्षि अगस्त भी एक वैदिक ऋषि थे। इनकी गणना सप्त ऋषियों`मं की जाती है। महर्षि अगस्त को मंत्रदृष्टा ऋषि कहा जाता है, क्यों कि उन्होनें अपने तपस्या काल में उन मंत्रों की शक्ति को देखा था। ऋग्वेद के अनेक मंत्र इनके द्वारा दृष्ट है। महर्षि अगस्त ने ही ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 165 सुक्त से 191 तक के सूक्तों को बताया था। साथ ही इनके पुत्र दृढ़च्युत तथा दृढ़च्युत के बेटा इध्मवाह भी नवम मंडल के 25 वें तथा 26 के सुत्र के दृष्टा ऋषि है।

महर्षि अगस्त को पुलस्य ऋषि का बेटा माना जाता है। उनके भाई का नाम विश्ववा था जो रावण के पिता थे। पुत्रस्य ऋषि ब्रम्हा के पुत्र थे। महर्षि अगस्त ने विदर्भ के नरेश की पुत्री के लोपामुद्रा से विवाह किया जो विद्वान और वैदज्ञ थी। दक्षिण भारत में इन्हें मलय ध्वज नाम के पांडय राजा की पुत्री बताया जाता है। वहां इनका नाम कृष्णेक्षणा है। इनका इश्मवाहन नाम का पुत्र था।

अगस्त के बारे में कहा जाता है कि एक बार इन्होंने अपनी मंत्र शक्ति से समुद्र का जल पी लिया था, विंध्याचल पर्वत को झुका दिया था और मणिमति नगरी के इल्वल तथा वातापी नामक दृष्ट दैत्यों की शक्ति को नष्ट कर दिया था। अगस्त ऋषि के काल में राजा श्रुतर्वा, बृहदस्थ और ऋसदस्यु थे। इन्होंने अगस्त के साथ मिलकर दैत्यराज इल्वल को झुकाकर उससे अपने राज्य के लिए धन संपत्ति मांग की थी?

'सत्रेह जाताविषिता नमोभिः कुंभे रेतः सिषिचतुः समानम्।

ततो ह मान उदियाय मध्यात ततो ज्ञात मृषिमाहुर्वसिष्ठम्।।

इस ऋचा के भास्य में आचार्य सायण के लिखा है –

'ततो वासतीवरात् कुंभात् मध्यात् अगस्तो शमी प्रमाण उदियाय प्रादुर्बभुव।

तत एवं कुंभाद्वसिष्ठमप्यूषिं जातमाहुः।।

दक्षिण भारत में अगस्त ऋषि तमिल भाषा के आद्य व्याकरण है। यह कवि शुद्र जाति में उत्पन्न हुए थे। इसलिए यह ''शुद्र व्याकरण'' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ऋषि अगस्त के ही अवतार माने जाते है। ग्रंथकार के नाम परूनका यह व्याकरण 'अगस्त व्याकरण' के नाम से प्रख्यात है। तमिल विद्वानों का कहना है कि यह ग्रंथ पाणिनि की अस्टाध्यायी के समान ही मान्य, प्राचीन तथा स्वतंत्र कृति है जिससे ग्रंथकार की शास्त्रीय विद्वत्ता का पूर्ण परिचय उपलब्ध होता है।

भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार में उनके विशिष्ठ योगदान के लिए जावा, सुमात्रा आदि में इनकी पूजा की जाती है। महर्षि अगस्त वेदों में वर्णित मंत्रदृष्टा मुनि है। इन्होने आवश्यकता पड़ने पर कभी ऋषियों को उदरस्थ कर लिया था तो कभी समुद्र भी पी गए थे। (1)

महर्षि अगस्त के आश्रम :– महर्षि अगस्त केरल के मार्शल आर्ट कलरीपायटट् की दक्षिण शैली वर्मक्कलै के संस्थापक आचार्य एवं आदि गुरू है। (2) वर्मकलै निःशस्त्र युद्ध कला शैली है। मान्यता के अनुसार भगवान शिव ने अपने पुत्र मुरूगन (कार्तिकेय) को यह कला सिखायी तथा मुरूगन ने यह कला अगस्त को सिखायी। महर्षि अगस्त ने यह कला अन्य सिद्धरों को सिखायी तथा तमिल में इस पर पुस्तकें भी लिखी। महर्षि अगस्त दक्षिण चिकित्सा पद्धति ''सिद्ध वैद्यम्'' के भी जनक है।

सन्दर्भ :–

1. काशी की विभूतियाँ Archieved 2010-17-25 at the वे बैंक मशीन महर्षि अगस्त

2. Zarrilli, Phillip B. (1998) Whose the Body Becomes All Eyes : Paradigms, Discourses and practices of power in kalarippayatth, a South Indian Martial Art. Oxford : Oxford University Press.

महर्षि दीर्घतम ऋषि

दीर्घतमस

ब्रह्माण्ड में जानकारी

परिवार	—	उतथ्य (पिता), ममता (माँ) बृहस्पति (चाचा), अंगिरस (दादा)
जीवन साथी	—	प्रद्वेषी
बच्चे	—	गौतम और अन्य (प्रद्वेषी)
		कक्षीवान और ग्यारह पुत्र (शुद्र दासी स्त्री) और
		अंग, वंगा, कलिंग, पुंड, कुम्भा (सुदेष्णा) ओडा

पृष्ठभूमि :— दीर्घतमस अंगिरस ऋषियों में से एक थे, जो ऋषि परिवारों में सबसे पुराने थे और ऋषि भारद्वाज के भाई माने जाते थे, जो ऋग्वेद के छठे मंडल के दृष्टा है। दीर्घ—तमस गौतम ऋषियों के परिवार के मुख्य पूर्ववर्ती भी है। जिसमें कक्षीवान, गौतम महर्षि, बोधा और वामदेव (ऋग्वेद के चौथे मण्डल के दृष्टा) शामिल हैं, जिन्होने दीर्घतमस के साथ मिलकर ऋग्वेद के 1000 भजनों में से लगभग 150 का वर्णन किया है। अंग, वंगा, कलिंग, पुंड्रा और सुहमा, औद्र भी बालि की पत्नी सुधेसना के माध्यम से दीर्घतमस के पुत्र थे। उनके अपने छंद कई वैदिक ग्रंथों में अक्सर आते है, कुछ उपनिषदों में भी है।

वे राजा भरत (एतरेय ब्राह्मण VIII 23) के प्रतिष्ठित पुरोहित या मुख्य पुजारी थे, जो इस देश के सबसे प्रारंभिक राजाओं में से एक थे, जिनके नाम पर भारत का नाम भारत (देश का पारंपरिक नाम) रखा गया।

दंत कथा :— दीर्घतमा राष्ट्रका पुत्र था। भीष्म महाभारत (पुस्तक 1 आदि पर्व, सीआईवी) में दीर्घतमा के जन्म की कथा बताते है। (2)

'प्राचीन' काल में उतथ्य नाम के एक बुद्धिमान ऋषि थे उनकी पत्नी का नाम ममता था जिससे वे बहुत प्रेम करते थे। एक दिन उतथ्य के छोटे भाई ब्रहस्पति जो देवताओं के पुजारी थे और महान तेज से संपन्न थे, ममता के पास पहुंचे। लेकिन ममता ने अपने पति के छोटे भाई से जो वाकपटु पुरूषों में श्रेष्ठ था — कहा कि वह उसके बड़े भाई के साथ

संबंध से गर्भवती हुई है और इसलिए उसे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये प्रयास नहीं करना चाहिए। उसने कहा, है महान बृहस्पति, मैने जो बच्चा गर्भ में रखा है, उसने अपनी माँ के गर्भ में छह अंगों सहित वेदो का अध्ययन किया है, बीज व्यर्थ नही गया है। फिर मेरा यह गर्भ एक साथ दो बच्चों के लिये कैसे जगह दे सकता है? इसलिये आपको ऐसे समय अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयास नही करना चाहिए। उसके द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर, बृहस्पति महान ज्ञान से युक्त होने के बावजूद, अपनी इच्छा को दबा नही सके। गर्भ में बच्चे ने विरोध किया, 'यहां दो लोगों के लिए जगह नही है। है राजन कमरा छोटा है मैने पहले ही इसे ले लिया है। तुम्हें मुझे कस्ट नही देना चाहिए। लेकिन बृहस्पति ने गर्भ में उस बच्चे की बात सुने बिना, सबसे सुंदर आँखों वाली ममता के आलिंगन की मांग की। और महाप्रभु बृहस्पति, यह देखकर क्रोधित हो गए, और उतथ्य के .... की फटकार लगाई और उसे शाप दिया, क्यों कि तुमने मुझसे उसतरह से बात की जैसे तुमने सभी प्राणियों के आनंद के समय में कहा है, सदा अंधकार तुम्हारे उपर छा जाएगा।'' और महाप्रभु बृहस्पति के इस शाप से, उतथ्य का बच्चा, जो शक्ति में बृहस्पति के बराबर था, अंधा पैदा हुआ और उसे दीर्घतमास (निरंतर अंधेरे से ढ़का हुआ) कहा जाने लगा।

वेदों के ज्ञाता बुद्धिमान दीर्घतमा ने जन्म से अन्धे होने पर भी अपनी विद्या के बल पर प्रद्वेषी नामक एक युवा और सुंदर ब्राह्मणी को पत्नी के रूप में प्राप्त किया। और उससे विवाह करके महाप्रतापी दीर्घतमा ने उतथ्य वंश के विस्तार के लिए उससे अनेक संताने उत्पन्न की, जिनमें सबसे बड़ा गौतम दीर्घतमा था।

विवाह और बच्चे :– दीर्घतमास खराब विवाह, अनैतिक पुत्रों और अंततः अन्य ऋषियों और समुदाय द्वारा त्याग दिए जाने से परेशान थे।

उसके बच्चे लालची हो गए और उन्होने खुद और अपने पिता का नाम खराब कर दिया। अंततः दीर्घतमास के ऋषियों और शिष्यों ने उसे बुरे लोगों को पालने के कारण त्याग दिया।

दीर्घतमास उदार और बिलकुल अकेले अपनी पत्नी प्रद्वेषी से सात्वंना मांगी उसने उससे पूछा की क्या वह भी उससे परेशान है? उसने कहा कि वह भी उससे असली पति नहीं था न ही रक्षक (पति) और नही समर्थक (भरतरी) और उसे अकेले ही बच्चों का पालन पोषण करना पड़ा आहत ऋषि ने क्रोधित होकर उत्तर दिया कि एक स्त्री को जीवन में केवल एक बार ही विवाह करना चाहिए, चाहे उसका पति जीवित हो या मृत।

क्रोधित होकर प्रद्वेषी ने अपने बेटों से कहा कि वे अपने पिता को गंगा नदी में फेंक दें। इसलिए गौतम और उसके भाई ने दीर्घतमस को एक बेड़ा से बांधकर पानी में फेंक दिया।

उस मसय राजा बलि पवित्र नदी में स्नान कर रहे थे। तभी उनकी नजर ऋषि पर पड़ी और उन्होंने ऋषि को बचा लिया।

अब जब उनकी जान बच गयी तो ऋषि ने राजा बलि से पूछा कि बदले में क्या कर सकते है।

राजा ने दीर्घतमास को नियोग करने को कहा ताकि रानी सुदेष्णा को संतान प्राप्ति हो सके। दीर्घतमास ने सहमति दे दी।

रानी ने अंधे ऋषि के स्थान पर एक निम्न कुल की स्त्री को भेजा, तथा उस स्त्री से दीर्घतमास ने कक्षीवान तथा दस अन्य पुत्रों को जन्म दिया बाद में दीर्घतमास को पता चला कि उसके साथ धोखा हुआ है लेकिन अंततः बलि ने रानी सुदेष्णा को राजी कर लिया और ऋषि से छह पुत्रों को जन्म दिया, तथा उन्हें अंग, वग, कलिंग, पुड्र, कुंभ और ओड्रा के नाम वाले राज्य दे दिए।

महत्व –

अस्य वामस्य भजन – दीर्घतमास अपने विरोधाभासी उपवाक्यों के लिए प्रसिद्ध है। (3) उनके मंत्र रहस्यपूर्ण है : ''वह जो उपर की बातों से नीचे के पिता को जानता है ओर वह जो नीचे की बातों से उपर के पिता को जानता है, उसे कवि कहा जाता है।'' अस्य वामस्य (ऋग्वेद 1.164) ऋषि की सबसे प्रसिद्ध कविताओं में से एक है। शुखाती विद्वानों (जैसे कि डयूसेन ने अपने उपनिषदों के दर्शन में) ने यह कहने की कोशिश की की दीर्घतमस की कविताऐं उनकी सामग्री के कारण वाद की प्रकृति की थी, लेकिन इसका कोई भाषाई समर्थन नहीं है। जैसा कि आधुनिक संस्कृत विद्वानों (जैसे कि डॉ. सी कुन्हन राजा ने अस्य वामस्य भजन के अपने अनुवाद में) द्वारा तर्क दिया है। पहले के पश्चिमी विद्वानों ने उन्हें वाद की उत्पत्ति का माना, इसका कारण वहाँ पाए जाने वाले अद्वैतवादी विचार है। उनका मानना था कि प्रारंभिक वैदिक धर्म सर्वेश्वरवादी था और ईश्वर का एक अद्वैतवादी दृष्टिकोण बाद में उपनिषदों में विकसित हुआ लेकिन दीर्घतमस (1.164.46) की कविताऐं जो कहती है कि ''एक सत्ता (एकमसत) है जिसे कई नामों से पुकारा जाता है'' इस विचार को गलत साबित करती है।

राशि चक्र का सबसे प्रारंभिक उल्लेख :–

कुछ विद्वानों ने दावा किया है कि बेबीलोन के लोगों ने 360 डिग्री की राशि का आविस्कार लगभग 700 ई.पूर्व में किया था, शायद उससे भी पहले, ऋग्वेद जितना पुराना, सबसे पुराना वैदिक ग्रंथ, आकाश में रखे गए 360 तीलियों वाले चक्र या पहिये का स्पष्ट उल्लेख है। संख्या 360 और इससे संबंधित संख्याऐं जैसे 12, 24, 36, 48, 60, 72, 108, 432 और 720 वैदिक प्रतिकवाद में आमतौर पर पाई जाती है। ऋषि दीर्घतमस्त (आर.वी. 1. 140–164) के भजनों में हमें इस तरह के सबसे स्पष्ट संदर्भ मिलाते है।

संदर्भ :–

1. दामोदर धर्मानंद कोसंबी (1994) ऐतिहासिक रूपरेखा में प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता (1 एस. चंद पृ. 77 आई.एस.बी.एन. 978–07069–86–13–6
2. अनबेकैंट (2016–.8–18) कृष्ण द्वैपायन व्यास प्रथम का महाभारत qnboco. पी. 336 आई.एस.बी.एन. 978–3–7364–1054
3. गुप्ता, नीलिनी कांता 1 ''द्रस्टाकवि'' पृष्ठ 8

- गुप्ता, नोलिनी कांता द्रष्टा कवि श्री अरविंदो आश्रम पांडिचेरी, 1970
- जॉनसन, विलाई (1976) ''अंजीर के पेड़`मं दो पक्षियों की ऋग्वेदिक पहेली पर (आर.वी.–1.164.20–22) और वैदिक सट्टा संगोष्ठी की खोज'' जर्नल ऑफ द अमेरिकन ओरिएंटन सोसायटी 96 (2) : 248–258 do I : 10.2307/599827 stop 599827
- महाभारत, पुस्तक 1 आदिपर्व, सी.आई.वी.
- ऋग्वेद सूक्त 140 से 164 तक
- राजा डॉ.सी.कुन्हान 1 अस्यवामस्य भजन (मुद्रित 1956)
- सिंह, प्रो. सत्यप्रकाश वैदिक दृष्टाओं का जीवन और दर्शन 2 : दीर्घतमस स्टैंडर्ड पब्लिशर्स नई दिल्ली, 20
- फोरिज, लास्जलो, । दीर्घतमास इन केरेकन्योमोक ⁄व्हीलट्रैक्स 209⁄13: 148–1811

- अपान नापत, दीर्घतमस और ईट वेदी का निर्माण वैदिक अन्वेषणों में आर.बी. 1. 143का विश्लेषण, अरूको परपोला, मसातो फुजी ओर स्टेनली इसलर द्वारा संपादित, खंड 1 विश्व संस्कृत सम्मेलन के शोधपत्र, मोतीलाल बनारसीदास, 2016 पृष्ठ 97–126, लास्जला फोरिज के मुखपृष्ठ पर ।

महर्षि कणाद ऋषि (जन्म अस्पष्ट 6, 4 बी.सी.ई.)

कणाद एक ऋषि थे वायुपुराण में उनका जन्म स्थान प्रभास पारण बताया है। स्वतंत्र भौतिक विज्ञानवादी दर्शन प्रकार के आत्मदर्शन के विचारों का सबसे पहले महर्षि कणाद ने सूत्र रूप में लिखा। ये ''उच्छवृत्ति'' थे और धान्य के कणों का संग्रह कर उसी को खाकर तपस्या करते थे। इसीलिये उन्हें ''कणाद'' या ''कणभुक्'' कहते थे। किसी का कहना है कि कण अर्थात 'परमाणु तत्व का सूक्ष्म विचार इन्होने किया है, इसलिए इन्हें ''कणाद'' कहते है। किसी का मत है कि दिन भर ये समाधि में रहते थे और रात्रि को कणों का संग्रह करते थे। यह वृत्ति ''उल्लू'' पक्षी की है। किसी का कहना है कि इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ईश्वर ने उलूक पक्षी के रूप में इन्हें शास्त्र का उपदेश दिया।

आधुनिक दौर में अणु विज्ञानी जॉन डाल्टन के भी हजारों साल पहले महर्षि कणाद ने यह रहस्य उजागर किया कि द्रव्य के परमाणु होते है। उनके अनासक्त जीवन के बारे में यह रोचक मान्यता भी है कि किसी काम से बाहर जाते तो लौटते वक्त रास्तें में पड़ी चीजों का अन्न के कणों को बटोरकर अपना जीवनयापन करते थे। इसलिये उनका नाम कणाद भी प्रसिद्ध हुआ। (1)

कण सिद्धान्त :—

भौतिक जगत की उत्पत्ति सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण परमाणुओं के संघनन से होती है। इस सिद्धान्त के जनक महर्षि कणाद थे।

वैशेषिक सूत्र कणाद मुनि द्वारा रचित वैशेषिक दर्शन का मुख्य ग्रंथ है। इस पर अनेक टीकाए लिखी गयी जिसमें प्रशस्तपाद द्वारा रचित पदार्थ धर्मसङ्ग्रह प्रसिद्ध है। कणाद ने वैशेषिक सूत्र में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय नामक छः पदार्थो का निर्देश किया है।

वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन से बहुत साम्य रखता है किन्तु वास्तव में यह एक स्वतंत्र भौतिक विज्ञानवादी दर्शन है। इस प्रकार आत्मदर्शन के विचारों का सबसे पहले महर्षि कणाद ने सूत्र रूप में (वैशेषिक सूत्र) में लिखा। यह दर्शन ''औलूक्य'' ''कणाद'' या ''पाशुपन्त'' दर्शन के नामों से प्रसिद्ध है। इसके सूत्रों का आरम्भ ''अथातो धर्मजिज्ञासा'' से होता है। इसके बाद दूसरा सूत्र है **''यतो भ्युदयनिः श्रेयसिद्धिः स धर्म''** अर्थात जिससे अभ्युदय ओर निःश्रेयस् की सिद्धि होती है, वह धर्म है। इसके लिये समस्त अर्थतत्व को छः पदार्थो (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय) में विभाजित कर उन्ही का मुख्य

रूप से उत्पादन करता है। वैशेषिक दर्शन और पाणिनीय व्याकरण को सभी शास्त्रों का उपकारक माना गया है।

वैशेषिक सिद्धान्तों का अतिप्राचीनतत्व प्रायः सर्वस्वीकृत है। महर्षि कणाद द्वारा रचित वैशेषिक सूत्र में बौधों के सिद्धान्तों की समीक्षा न होन के कारण यह भी स्विकार किया जा सकता है कि कणाद बुद्ध के पूर्व वर्ती है। जो विद्वान कणाद को बुद्ध के पूर्ववर्ती नही मानते। उनमें से अधिकतर इतना तो मानते ही है कि कणाद दूसरी शती ईस्वी पूर्व से पहले हुए हो संक्षेपतः सांख्यसूत्रकार कपिल ओर ब्रह्मसूत्रकार व्यास के अतिरिक्त अन्य सभी आस्तिक दर्शनों के प्रवर्तकों में से कणाद सर्वाधिक पूर्ववर्ती है। अतः वैशेषिक दर्शन को साख्य और वेदान्त के अतिरिक्त अन्य सभी भारतीय दर्शनों का पूर्ववर्ती मानते हुए यह कहा जा सकता है कि केवल दार्शनिक चिन्तन की दृष्टि से ही नही, अपितु अतिप्राचीन होने के कारण भी इस दर्शन का अपना विशिष्ठ महत्व है।

सन्दर्भ :–

1. बिग स्टोरी : हजारों साल पहले ऋषियों के आविष्कार पढ़कर रह जायेंगे हैरान। धर्म डेस्क उज्जैन दैनिक भास्कर 12 अप्रैल 2013 मूल से 16 अप्रैल 2013 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 13 अप्रैल 2013

इन्हे भी देखे :–

वैशेषिकसूत्र , वैशेषिक दर्शन

बाहरी कडियाँ

कणाद : वैशेषिक दर्शन के प्रणेता (मृत कडियाँ)।

महर्षि पाणिनि

पाणिनि (700 ई.पू.) संस्कृत भाषा के सबसे बड़े वैख्याकरण हुए है। इनका जन्म तत्कालीन उत्तर पश्चिम भारत के गान्धार में हुआ था। इनके व्याकरण का नाम अष्टाध्यायी है जिसमें आठ अध्याय और लगभग चार सहस्त्र सूत्र है। (1) संस्कृत भाष को व्याकरण सम्मत रूप देने में पाणिनि का योगदान अतुलनीय माना जाता है। अष्टाध्यायी मात्र व्याकरण ग्रंथ नहीं है। इसमें प्रकारान्तर से तत्कालीन भारतीय समाज का पूरा चित्र मिलता है। उस समय के भूगोल, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा और राजनीतिक जीवन, दार्शनिक चिन्तन, खान–पान, रहन–सहन आदि के प्रसंग स्थान–स्थान पर अंकित है।

व्यक्तिगत जानकारी

वृत्तिक जानकारी

मुख्य कृतियाँ	अष्टाध्यायी
युग	चौथी शताब्दि ई.पूं. (1) (2) (3) 6th, 5th (Centur BC E5) (6) [Web1] [Note 1]
क्षेत्र	भारतीय उपमहाद्विप के उत्तर–पश्चिमी भाग में (note2)
मुख्य विचार	व्याकरण, भाषा विज्ञान (8)

जीवन एवं कार्य :– पाणिनि का जन्म सलातुर नामक ग्राम में हुआ था। जहाँ काबुल नदी सिंधु में मिली है। उस संगम में छः मील दूर यह गाँव था। उसे अब लहुर कहते है। अपने जन्म स्थान के अनुसार पाणिनि शालातुरीय भी कहे गए है। और अष्टाध्यायी में उन्होने स्वयं इस नाम का उल्लेख किया है। चीनी यात्री युवा युवान्व्वा (7वीं शती) उत्तर पश्चिम से आते समय शालातुर गांव में गए थे। पाणिनि के गुरू का नाम उपवर्ष पिता का नाम पणिन और माता का नाम दाक्षी था। पाणिनि जब बड़े हुए तो उन्होने व्याकरण शास्त्र का गहरा अध्ययन कि। पाणिनी से पहले शब्दविद्या के अनेक आचार्य हो चुके थे। उनके ग्रंथों को पढ़कर और उनके परस्पर भेदों को देखकर पाणिनि के मन में यह विचार आया कि उन्हें व्याकरण शास्त्र को व्यवस्थित करना चाहिए। पहले तो पाणिनि से पूर्व वैदिक

संहिताओं, शाखाओं, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद आदि को जो विस्तार हो चुका था, उस वाडमय से उन्होने अपने लिए शब्द सामग्री ली जिसका उन्होने अष्टाध्यायी में उपयोग किया है। दूसरे निरूक्त और व्याकरण की जो सामग्री पहले से थी उसका उन्होने संग्रह और सूक्ष्म अध्ययन किया। इसका प्रमाण भी अष्टाध्यायी में है, जैसा शाकटायन, शाकल्य, भारद्वाज, गार्ग्य, सेनक, आपिशलि, गालब और स्फोटायन आदि आचार्यो के मतों के उल्लेखों से ज्ञात होता है। शाकटायन निश्चित रूपसे पाणिनि से पूर्व के वैय्याकरण थे, जैसा निरूक्तकार यास्क ने लिखा है। शाकटायन का मत था कि सब संज्ञा शब्द धातुओं से बनते हैं। पाणिनि ने इस मत को स्वीकार किया किन्तु इस विषय में कोई आग्रह नही रखा और यह भी कहा कि बहुत से शब्द ऐसे भी है जो लोक की बोलचाल में आ गए है। और उनसे धातु प्रत्यय की पकड़ नही की जा सकती। तीसरी सबसे महत्वपूर्ण बात पाणिनि ने यह कि उन्होने स्वयं लोक को अपनी आँखों से देखा और घुमकर लोगों के बहुमुखी जीवन का परिचय प्राप्त करके शब्दों को छाना। इस प्रकार से कितने ही सहस्र शब्दों को उन्होने इकट्ठा किया।

शब्दों का संकलन करके उन्होने उनको वर्गीकृत किया और उनकी कई सूचियाँ बनाई। एक सूची ''धातू पाठ'' की थी जिसे पाणिनि ने अष्टाध्यायी से अलग रखा है। उसमें 1943 धातुऐं है, धातुपाठ में दो प्रकार की धातुऐं है। पाणिनि से पहले साहित्य में प्रयुक्त हो चुकी थी और दुसरी वे जो लोगों की बोलचाल में उन्हें मिली उनकी दूसरी सूची में वेदों के अनेक आचार्य थे। किस आचार्य के नाम से कौन सा चरण प्रसिद्ध हुआ और उसमें पढ़ने वाले छात्र किस नाम से प्रसिद्ध थे और उन छन्द या शाखाओं के क्या नाम ये उन सबकी निस्पत्ति भिन्न–भिन्न प्रत्यय लगाकर पाणिनि ने दी है। जैसे एक आचार्य तित्तिर थे। उनका चरण तैतरीय कहा जाना था और उस विद्यालय के छात्र एवं वहां की शाखा या संहिता भी तैत्तिरीय कहलाती थी। पाणिनि की तिसरी सूची ''गोत्रों'' के संबंध में थी। मूल सात गोत्र वैदिक युग से ही चले आते थे। पाणिनि के काल तक आते–आते उनका बहुत विस्तार हो गया था। गोत्रों की कई सूचियाँ श्रौत सूत्रों में है। जैसे बोधायन श्रौत सूत्र में जिसे महाप्रवर काण्ड कहते है। किन्तु पाणिनि ने वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं के परिवार या कुटुंब के नामों की एक बहुत बड़ी सूची बनाई जिसमें आर्ष गोत्र और लौकिक गोत्र दोनों थे। छोटे मोटे पारिवारिक नाम या अल्लो को उन्होने गोत्रावयव कहा है। एक

गौत्र या परिवार में होन वाले दादा, बूढ़े एवं चाचा (सपिंड स्र्थावेर पिता पुत्र पौत्र) आदि व्यक्तियों के नाम कैसे रखे जाते थे, इसका ब्योरे वार उल्लेख पाणिनि ने किया है। बीसीयों सूत्रों के साथ लगे हुए गणों में गोत्रों के अनेक नाम पाणिनि के ''गणपाठ'' नामक परिशिष्ठ ग्रंथ में है। पाणिनि की चौथी सूची भौगोलिक थी। पाणिनि का जन्मस्थान उत्तर पश्चिम में था, जिस प्रदेश को हम गांधार कहते है। यूनानी भूगोल लेखकों ने लिखा है कि उत्तर पश्चिम अर्थात गांधार और पंजाब में लगभग 500 ऐसे ग्राम थे जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या दस सहस्र के लगभग थी। पाणिनि ने उन 500 ग्रामों के वास्तविक नाम भी दे दिए है। जिनसे उनके भूगोल संबंधी गणों की सूचीयाँ बनी है। ग्रामों और नगरों के उन नामों की पहचान टेढ़ा प्रश्न है, किन्तु यदि बहुत परिश्रम किया जाए तो यह संभव है। जैसे सुनेत और रिससा पंजाब के दो छोटे गांव है जिने पाणिनि ने सुनेत्र और शैरीषक। पंजाब की अनेक जातियों के नाम उन गांवों के अनुसार थे जहाँ वह जाति निवास करती थी या जहां से उसके पूर्वज आए थे। इस प्रकार निवास और अभिजन (पूर्वजों का स्थान) इन दोनों से जो उपनाम बने थे वे पुरूष नाम में जुड़ जाते थे क्यों कि ऐसे नाम भी भाषा के अंग थे।

पाणिनि ने पंजाब के मध्यभाग में खड़े होकर अपनी दृष्टि पूर्व पश्चिम की ओर दौड़ाई । उन्हें दो पहाड़ी इलाके दिखाई पड़े। पूर्व की ओर कुल्लू कांगड़ा जिसे उस समय त्रिगर्त कहते थे पश्चिमी ओर का पहाड़ी प्रदेश वह था जो गांधार की पूर्वी राजधानी तक्षशिला से पश्चिमी राजधानी पुष्कलावती तक फैला था इसी में वह प्रदेश था जिसे अब कबायली इलाका कहते है और जो सिंधु नदी के उत्तर से दक्षिण तक व्याप्त थे और जिसके उत्तरी छोर पर दरद (वर्तमान गिलगित) और दक्षिणी छोर पर सौबीर (वर्तमान सिंध) था पाणिनि ने इस प्रदेश में रहने वाले कबीलों की विस्तृत सूची बनाई और संविधानों का अध्ययन किया। इस प्रदेश के उस समय ग्रामणीय इलाका कहते थे क्योंकि इन कबीलों में, जेसा आज भी है और उस समय भी था, ग्रामीण शासन की प्रथा थी और ग्रामीण शब्द उनके नेता या शासक की पदवी थी। इन जातियों की शाासन सभा को इस समय जिर्गा कहते हैं और पाणिनि के युग में उसे ''व्रातपूग'' 'संघ' या 'गण' कहते थे वस्तुतः सब कबीलों के शासन का एक प्रकार न था किन्तु वे संघ शासन के विकास की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में थे। पाणिनि ने वात और पुग नह संज्ञाओं से बताया है कि इनमें से बहुत से कबीले उत्सेधजीवी या लूटपाट करके जीवन यापन करते थे जो आज भी वहाँ के जीवन

की सच्चाई है। उस समय ये सब कबीले या जातियाँ हिन्दू थी और उनके अधिपतियों के नाम संस्कृत भाषा के थे जैसे देवदत्तक कबीले का पूर्व पूरूष या संस्थापक कोई देवदत्त था। अब नाम बदल गए हैं, किन्तु बात वहीं है जैसे ईसाखेल कबीले का पूर्वज ईसा नामक कोई व्यक्ति था। इन कबीलों के बहुत से नाम पाणिनि के 'गणपाठ' में मिलते है, जैसे अफरीदी और मोहम्मद जिन्हें पाणिनि ने आप्रीत और मधुमंत कहा है। पाणिनि की भौगोलिंक सूचियों में एक सूची जनपदों की है। प्राचीन काल में अपना देश जनपद भूमियों में बैठा हुआ था मध्य एशिया की वंशु नदी के उपरी भाग में स्थित कंबोज जनपद, पश्चिम और सौराष्ट्र का कच्छ जनपद, पूरब में असम प्रदेश का सूरमस जनपद (वर्तमान सूरमा घाटी) और दक्षिण में गोदावरी के किनारे अश्मक जनपद (वर्तमान पेठण) इन चार खूंटों के बीच में सारा भू–भाग जनपदों में बंटा हुआ था और लोगों के राजनीतिक और सामाजिक जीवन एवं भाषाओं का जनपदीय विकास सहस्रों वर्षो से चला आता था।

पाणिनि ने सहस्रों शब्दों की व्युपत्ति बताई जो अष्टाध्यायी के चौथे पाँचवे अध्यायों में है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, सैनिक, व्यापारी, किसान, रंगरेज, बढ़ई, रसोइए, मोची, ग्वाले, चरवाहे, गड़रिये, बुनकर, कुम्हार आदि सेकड़ों पेशेवर लोगों से मिलजुलकर पाणिनि ने उनके विशेष पेशे के शब्दों का संग्रह किया।

पाणिनि यह बताया कि किस शब्द में कौनसा प्रत्यय लगता है। वर्णमाला के स्वर और व्यंजन रूप जो अक्षर है उन्ही से प्रत्यय बनाए गए। जैसे वर्षा से वार्षिक, यहाँ मूल शब्द वर्षा है उससे इक् प्रत्य जुड़ गया और वार्षिक अर्थात् वर्षा संबंधी एक शब्द बन गया।

अष्टाध्यायी में तद्वितों का प्रकरण रोचक है। कहीं तो पाणिनि की सूक्ष्म छानबीन पर आश्चर्य होता है। जैसे व्यास नदी के उत्तरी किनारे की बागर भूमि में जो पक्के बारामासी कुंएँ बनाये जाते थे उनके नामों का उच्चारण किसी दूसरे स्वर में किया जाता था और उसी के दक्खिनी किनारे पर खादर भूमि में हर साल कच्चे कुंए खोद लिए जाते थे उनके नामों का स्वर कुछ भिन्न था। यह बात पाणिनि ने ''उदक् च बिपाशा'' सूत्र में कही है। गायों और बैलों की तो जीवन कथा ही पाणिनि ने सूत्रों में भर दी है।

आर्थिक जीवन का अध्ययन करते हुए पाणिनि ने उन सिक्को को भी जाँचा जो बाजारों में चलते थे। जैसे ''शतमान'' ''कार्षापणः'' ''सुवर्ण'', ''अंध'' ''पाद'' ''माशक'' त्रिंशत्क'' (तीस मासे या साठ रत्ती तौले का सिक्का) कुछ अदला–बदली से भी माल बेचते थे। उसे ''निमान'' कहा जाता था।

पाणिनि के काल में शिक्षा और बाड़मय का बहुत विस्तार था। संस्कृत भाषा का उन्होने बहुत ही गहरा अध्ययन किया था। वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं से वे पूर्णतया परिचित थे। उन्हीं की सामग्री से पाणिनि ने अपने व्याकरण की रचना की पर उसमें प्रधानता लौकिक संस्कृत की ही रखी। बोलचाल की लौकिक संस्कृत को उन्होने भाषा कहा है। उन्होने न केवल ग्रंथ रचना की किन्तु अध्यापन कार्य भी किया। (व्याकरण के उदाहरणों में विषय का नाम कोत्स कहा है) पाणिनि का शिक्षा विषयक संबंध, संभव है, तक्षशिला के विश्वविद्यालय से रहा हो कहा जाता है, जब वे अपनी सामग्री का संग्रह कर चुके तो उन्होने कुछ समय तक एकांत वास किया और अष्टाध्यायी की रचना की।

पाणिनि का समय क्या था, इस विषय में कई मत हैं। कोई उन्हें 7वीं शती ई.पू. कोर्ठ 5वीं शती या चौथी शती ई.पू. का कहते है। पंतजलि ने लिखा है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी का संबंध किसी एक वेद से नही बल्कि सभी वेदों की परिषदों से था (सर्व वेद परिषद) पाणिनि के ग्रंथों की सर्वसम्मत प्रतिष्ठा का यह भी कारण हुआ।

पाणिनि को किसी मत विशेष में पक्षपात न था। शब्द का अर्थ एक व्यक्ति है या जाति इस विषय में उन्होने दोनों पक्षों को माना है। गऊ शब्द एक गाय का भी वाचक है और गऊ जाति का भी है। वाजप्यायन और व्याडि नामक दो आचार्यो में भिन्न मतों का आग्रह था पर पाणिनि ने सरलता से दोनों को स्वीकार कर लिया।

पाणिनि से पूर्व एक प्रसिद्ध व्याकरण इंद्र का था। उसमें शब्दों का प्रातिकंठित या प्रातिपादिक विचार किया गया था। उसी की परंपरा पाणिनि से पूर्व भारद्वाज आचार्य के व्याकरण में ली गई थी। पाणिनि ने उस पर विचार किया। बहुत सी पारिभाषिक संज्ञाऐं उन्होने उससे ले ली, जैसे सर्वनाम, अव्यय आदि और बहुत सी नई बनाई, जैसे टि.घु.भ. आदि।

पाणिनि को मांगलिक आचार्य कहा गया है। उनके हृदय की उदार वृत्ति मगलात्मक कर्म और फल की इच्छुक थी। इसकी साक्षी यह है कि उन्होने अपने शब्दानुसार का आरंभ ''वृद्ध'' शब्द से किया। कुछ विद्वान कहते है कि पाणिनि के ग्रंथ में न केवल आदिमंगल बल्कि मध्यमंगल और अंतमंगल भी हैं। उनका अंतिम सूत्र अ आ है ह्रस्वकार वर्णसमन्वय का मूल है। पाणिनि को सुहृभ्यदूत आचार्य अर्थात् सबके मित्र एवं प्रमाणभूत आचार्य भी कहा है।

पतंजलि का कहना है कि पाणिनि ने जो सूत्र एक बार लिखा उसे काटा नही व्याकरण में उनके प्रत्येक अक्षर का प्रमाण माना जाता है। शिष्य, गुरू, लोक और वेद धातु कि शब्द और देशी शब्द जिस ओर आचार्य ने दृष्टि डाली उसे ही रस से सींच दिया। आज भी पाणिनि ''शब्दः लोके प्रकाशते'', अर्थात् उनका नाम सर्वत्र प्रकाशित है।

समयकाल :– इनका समय काल अनिश्चित तथा विवादित है। इतना तय है कि छठी सदी ईसापूर्व के बाद और चौथी सदी ईसापूर्व से पहले की अवधि में इनका अस्तित्व रहा होगा। ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म पंजाब (पाकिस्तान) के शाला तुला में हुआ था जो आधुनिक पेशावर (पाकिस्तान) के करिब है। इनका जीवन काल 520–460 ईसा पूर्व माना जाता है।

पाणिनि के जीवनकाल को मापने के लिये यवनानी शब्द के उद्धरण का सहारा लिया जाता है। इसका अर्थ युनान की स्त्री या युनान की लिपि से लगाया जाता है। गांधार में यवनों (ग्रीस) के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी सिकंदर के आक्रमण के पहले नही थी। सिकंदर भारत में ई.पूर्व 330 के आसपास आया था। पर ऐसा हो सकता है कि पाणिनि को फारसी योन के जरिये यवनों की जानकारी होगी और पाणिनि द्वारा प्रथम (शासन काल – 511 –485 ईसा पूर्व) के काल में भी हो सकते है। प्लूटार्क के अनुसार सिकंदर जब भारत आया था तो यहाँ पहले से कुछ यूनानी बस्तियाँ थी।

कृतियाँ :–

1. अष्टाध्यायी (सूत्रपाठ) – इसमें आठ अध्याय एवं कुल 3997 लगभग 4000 सूत्र है।
2. धातुपाठ – यह 10 दस गणों में विभक्त एवं लगभग 2000 धातुवें है।
3. गणपाठ – सूत्र पठित गणों का पाठ
4. उणादिसूत्र – इनके पाणिनिकृत होने में बहुत सन्देश है।
5. लिगानुशासन – लिंग निर्धारण विषय

कात्यायन – ने पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक लिखे पतंज्जलि ने पाणिनि के अष्टाध्यायी पर अपनी टिप्पणी के सूत्रों पर वार्तिक लिखे पतंज्जलि ने पाणिनि के अष्टाध्याय पर अपनी टिप्णी लिखी जिसे महाभाष्य का नाम दिया (महा + भाष्य / समीक्षा , टिप्णी, विवेचना, आलोचना)

अन्य रचनाऐं – पाणिनि को दो साहित्यिक रचनाओं के लिए भी जाना जाता है, यद्यपि व अब प्राप्य नही है।

जाम्बती विजय :– आज एक अप्राप्य रचना है, जिसका उल्लेख राजशेखर नामक व्यक्ति ने जहलण की सूक्ति मुक्तावली में किया है। इसका एक भाग रामयुक्त की नामलिंगानुशासन की टीका में भी मिलता है। राजशेखर ने जहलण की सूक्ति मुक्तावली में लिखा है :–

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविदभूदिह।

आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बबतीजयम्।।

पातलविजय, जो आज अप्राप्य रचना है, जिसका उल्लेख नामिसाधु ने रूद्रटकृत काव्यालंकार की टीका में किया है।

पाणिनि का महत्व :– एक शताब्दी से भी पहले प्रसिद्ध जर्मन भारतविद् **मैक्स मूलर** (1823–1900) ने अपने सांइस ऑफ यौर में कहा – '' मैं निर्भीकतापूर्व कह सकता हूँ कि अंग्रेजी या लैटिन या ग्रीक में ऐसी संकल्पनाऐं नगण्य हैं जिन्हें संस्कृत धातुओं से उत्पन्न शब्दों से अभिव्यक्त न किया जा सके। इसके विपरीत मेरा विश्वास है कि 2,50,000 शब्द सम्मिलित माने जाने अंग्रेजी शब्दकोष की संपूर्ण संपदा के स्पष्टीकरण हेतु वांछित धातुओं की संख्या, उचित सीमाअें में ऐसा कोई वाक्य नहीं जिसके प्रत्येक शब्द का (आठ) 800 धातुओं से एवं प्रत्येक विचार का पाणिनि द्वारा प्रदत्त सामग्री के सावधानी पूर्वक विश्लेषण के बाद अविशष्ट 121 मौलिक संकल्पनाओं से सम्बन्ध निकाला न जा सके।''

पाणिनि की सूत्र शैली – पाणिनि के सूत्रों की शैली अत्यन्त संक्षिप्त है। वे सूत्रयुग में ही हुए थे। श्रौत सूत्र, धर्मसूत्र, गृहस्थ सूत्र, प्रातिशाखा सूत्र भी इसी शैली में है किंतु पाणिनि के सूत्रों में जो निखार है वह अन्यत्र नहीं है। इसीलिये पाणिनी के सूत्रों को प्रतिष्णात सूत्र कहा गया है। पाणिनि ने वर्ण या वर्णमाला को 14 प्रत्याहार सूत्रों में बाँटा और उन्हें विशेष क्रम देकर 43 प्रत्याहार सूत्र बनाए। पाणिनि की सबसे बड़ी विशेषता यही है जिससे वे थोड़े स्थान में अधिक सामग्री भर सके। यदि अष्टाध्यायी के अक्षरों को गिना जाय तो उनकी 3995 सूत्र एक सहस्र श्लोक के बराबर होते है। पाणिनि ने संक्षिप्त ग्रंथ रचना की और भी कई युक्तियाँ निकाली जैसे अधिकार और अनुवृत्ति अर्थात सूत्र के एक या कई शब्दों को आगे के सूत्रों में ले जाना जिससे उन्हें दोहराना ना पड़े। अर्थ करने की कुछ परिभाषाऐं भी उन्होनें बनाई। एक बड़ी विचित्र युक्ति उन्होने असिद्ध सूत्रों की निकाली। अर्थात बाद का सूत्र अपने से पहले के सूत्र के कार्य को ओझल कर दे। पाणिनि का यह असिद्ध नियम उनकी ऐसी तंत्र युक्ति थी जो संसार के अन्य किसी ग्रंथ में नही पाई जाती।

पाणिनि और आधुनिक भाषाशास्त्र :– पाणिनि का कार्य 19वीं सदी में यूरोप में जाना जाने लगा, जिससे इसका आधुनिक भाषाशास्त्र पर खूब प्रभाव पड़ा। आरंभ में फ्रेन्ज़ बोप् ने पाणिनि का अध्ययन किया। बाद में बहुत सी रचनाओं से योरपीय संस्कृत के विद्वान जैसे फर्नाडीस डॉ. सॉसर, लियोनार्ड ब्लूमफील्ड और रोमन जैकब्सन आदि प्रभावित हुए। फ्रिट्स् स्टाल ने योरज में भाषा पर भारतीय विचारों के प्रभाव की विवेचना की।

डी सॉसर – पाणिनि औरबाद के भारतीय भाषा शास्त्री भर्तृहरी का फर्डीनाड डि सासर के कई बुनियादी विचारों पर काफी प्रभाव पड़ां फर्डीनांड वि सॉसर, संस्कृत के प्राध्यापक थे, जो कि, आधुनिक संरचनात्मक भाषा शास्त्र के जनक कहे जाते है। सॉसर ने स्वयं अपने कुछ विचारों पर भारतीय व्याकरण के प्रभाव का जिक्र किया है। अपने 1881 में प्रकाशित ''डी लेम्पलोइ डु जेनिटिफ् एसॉल्यु एन् सैन्स्फ्रिट्'' (संस्कृत में जेनेटिव निरपेक्ष का प्रयोग) में उन्होने पाणिनि को विशेष रूप से जिक्र करके अपनी रचना को प्रभावित करने वाला बताया है।

लियोनार्ड ब्लूम्फील्ड् – अमेरिकी संरचनावाद के संस्थापक लियोनार्ड ब्लूम्फीण्ड् ने 1927 में एक शोधपत्र लिखा जिसका शीर्षक था ''ऑनसम् रूल्स ऑफ पाणिनि (याने पाणिनि के कुछ नियमों पर)

आज के औपचारिक तन्त्रों के साथ तुलना –

पाणिनि का व्याकरण संसार का पहले औपचारिक तन्त्र (फ्रार्मल सिस्टम्) है। इसका विकास 19वीं सदी के गोटलॉब फ्रेज के अन्वेषणों और उसके बाद के गणित के विकासों से बहुत पहले ही हो गया था। अपने व्याकरण का स्वरूप बनाने में पाणिनि ने सहायक प्रतीकों का प्रयोग किया, जिसमें नये शब्दांशों को सिन्टैक्टिक श्रेणियों का विभाजन रखने के लिए प्रयोग किया ताकि व्याकरण की व्युत्पत्तियों को यथेस्ट नियन्त्रित किया जा सके ठीक यही तकनीक जब एमिल पोस्ट् ने दोबारा ''खोजी'' तो यह कम्प्युटर प्रोग्रामिंग भाषाओं की अभिकल्पना के लिए मानदण्ड बना। (10) आज संस्कृत वेद स्वीकार करते है कि पाणिनि का भाषीय औज़ार अनुप्रयुक्त पोस्ट–सिस्टम के रूप में भली भांति वर्णित है। पर्याप्त मात्रा में प्रमाण मौजूद है कि इन प्राचीन लोगों को सहपाठ–संवेदी व्याकरण (कन्टेक्स्ट–सेन्सिटिव ग्रामर) में महारथ थी और कई जटिल समस्याओं को सुलझाने में व्यापक क्षमता थी।

इन्हें भी देखें :–

- अष्टा ध्यायी , 'महाजनपद', सुश्रुत भारतीय गणितज्ञों की सूची
- संस्कृत व्याकरण का इतिहास

  बाहरी कडियाँ –

  - पाणिनी की अष्टाध्यायी ITRANSLITERATION में तथा देवनागरी लिपि में
  - The Paniniash system of Sanskrit grammar
  - Who is the father of computer Science (Saroja Bhate and Subhash Kak)
  - गणकाष्टाध्यायी पाणिनी के सूत्रो पर आधारित संस्कृत व्याकरण का सॉफ्टवेयर (Win98/2000/xp)
  - पाणिनी की अष्टाध्यायी का मेण्डलीव की आवर्त सारणी पर प्रभाव यह पेपर eh : arxiv.org eprint archive में है।
  - मेण्डलीव की आवर्त सारणी में संस्कृत (हिन्दी ब्लॉग, चर्चा)
  - पाणिनी का फाउण्डेशन
  - काशी की विभूतियाँ–पाणिनि
  - पाणिनी–सर्वश्रेष्ठ व्याकरण के रचनाकार (हिन्दी ब्लॉग, चर्चा)
  - पाणिनी व्याकरण शास्त्र के श्रेष्ठ रचनाकार (मृत कडियाँ)
  - Indian Resarcher solver a 2,500 Years old sankrit problem for NLP 15 दिसम्बर 2022

संदर्भ :–

- Vergiani 2017, **पृ. 243, 4.4**
- Brokhorst **2016, पृ. 171**
- Houben 2009, **पृ. 6**
- अ आ Cardona 1997, **पृ. 268**
- Staal 1996, **पृ. 39**
- Scharfe 1997, **पृ. 88**
- Staal 1995

- संदर्भ त्रुटि ret का गलत प्रयोग Weisler 44 नाम के संदर्भ में जानकारी नहीं है
- " A reminder : Panini didn't doste linual divorsities with his Sanskrit grammar, he unified them" मूल से 27 मई 2019 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 27 मई 2019
- कैडबेनी, जॉन (2007) पो.जी. श्रल् वेल्यू एंड लिंग्विस्टिक रिकर्शन्'', जर्नल, ऑफ इंडियन फिलॉसफी 35 : 587–520
- संदर्भ त्रुटि (eef) का गलत प्रयोग EB-Ashtadhyani नाम के संदर्भ में जानकारी नहीं है।
- संदर्भ त्रुटि "Note" नामक संदर्भ समूह के लिए Ref टैग मौजूद है, परंतु समूह के लिए कोई reterences group-"note" टैग नही मिला। यह भी संभव है कि कोई समाप्ति (eef) टैग गाय है।

षष्टम अध्याय

(ऋषि, मुनि, साधु संतों की क्या होती है जीवन शैली? उनकी परंपरा।)

1. ऋषि
2. मुनि
3. साधु
4. संत

ऋषि, मुनि, साधु और संतो की क्या होती है जीवन शैली?

हिंदू धर्म में ऋषि, मुनि साधु और संतो जैसे शब्द अक्सर एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किए जाते हैं, लेकिन सभी शब्द एक ही शब्द के पर्यायवाची नहीं होते बल्कि इनमें कुछ अंतर भी होते हैं।

भारत देश में हिंदू धर्म में ऋषि, मुनि, साधु और संतों का प्राचीन समय से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है, ये सभी भारतीय दर्शन और आध्यात्म में विशिष्ट स्थान रखते हैं। ऋषि, मुनि, साधु और संत जीवन में त्याग तपस्या और आत्म साक्षात्कार के प्रतीक माने जाते हैं; जो मानवता के कल्याण के लिए समर्पित रहते हैं। ये सभी आत्मज्ञान और मोक्ष की खोज में लीन रहते हैं।

इन महापुरुषों का जीवन अनुशासन संयम और साधना का प्रतीक होता है, जिसमें समाज को प्रेरणा मिलती है।

इस तरह चारों में कई समानताऐ भी है, जैसे कि सभी का उद्देश्य आत्म साक्षात्कार मोक्ष और ईश्वर की प्राप्ति है, लेकिन उनके मार्ग और भूमिका अलग–अलग होती है।

ऋषि : ऋषि का शाब्दिक अर्थ होता है ''ज्ञानी व्यक्ति'' ऋषि वे ज्ञानी होते हैं जिन्होंने गहरे ध्यान तपस्या और साधना के माध्यम से ब्रह्मांड के गूढ़ज्ञान और सत्य को प्राप्त किया है, ऋषी वेदों के रचयिता और ज्ञान के प्रचारक होते हैं, ऋषि वेदों के मंत्रों के ''द्रष्टा'' माने जाते हैं, वे ध्यान में स्थित होकर दिव्य ज्ञान का अनुभव करते हैं, जिसे वे वेदों में संकलित करते हैं ।

इस प्रकार हमारे ऋषियों ने भारतीय शास्त्रों का निर्माण किया। ऋषि समाज को मार्गदर्शन देते हैं और धर्म के नियमों को स्थापित करते हैं ये वैज्ञानिक दार्शनिक और आध्यात्मिक गुरु भी होते हैं– उदाहरण : महर्षि वशिष्ठ ,अत्री, वाल्मीकि,

विश्वामित्र और व्यास जैसे महान ऋषि वेदों और उपनिषदों और पुराणों के ज्ञान के स्रोत माने जाते हैं।

मुनि : मुनि वे होते हैं जो ध्यान और ''मौन'' का पालन करते हैं और आत्मा के के सत्य को खोजते हैं। मुनि शब्द मौन से आया है जिसका अर्थ चुप रहना या शांत होना, मुनि बाहरी दुनिया से दूर रहकर ध्यान और तपस्या में लीन रहते हैं, वे आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास करते रहते हैं ।

वे ज्ञान को अपने भीतर समाहित करते हैं और दूसरों को शिक्षा देते हैं। मुनि अपना जीवन आत्म परीक्षण स्वाध्याय और ध्यान में बिताते हैं। वे मौन में अपने मन को नियंत्रित करते हैं और परमात्मा के साथ एकात्मकता का अनुभव करते हैं। मुनि का जीवन अन्य ऋषियों या संतों की अपेक्षा अधिक मौन और ध्यानमय होता है, उनके लिए आत्मानुभव और आत्म संयम ही सर्वोपरि होता है।

उदाहरण – नारद मुनि का उल्लेख महाभारत और पुराण में मिलता है। वे संगीत, ध्यान और मौन साधना के लिए प्रसिद्ध थे।

साधु : साधु का अर्थ होता है सदाचारी व्यक्ति या संत साधु वे होते हैं जो संसार के मोह माया से दूर रहकर धार्मिक जीवन जीते हैं और भक्ति तपस्या और धर्म का मार्ग अपनाते है

ये सेवाभावी होते हैं और दूसरों की मदद करते हैं, साधु का जीवन भगवान की भक्ति और तपस्या, सेवा में बीतता है।

ये समाज को धार्मिक शिक्षा देते हैं और लोगों को धर्म के प्रति प्रेरित करते हैं ।

जैसे नागा साधु, अघोरी साधु और सन्यासी, साधू उनका मार्ग भले ही अलग हो लेकिन सभी का उद्देश्य आत्म साक्षात्कार और भगवान की प्राप्ति होता है। साधु ज्यादातर अपने विशेष परिधान, धार्मिक आचरण और भक्ति भावना के लिए पहचाने जाते हैं।

वे आमतौर पर तीर्थ स्थलों या आश्रमों में रहते हैं।

साधु समाज में धार्मिक मूल्यों को फैलाते हैं, और लोगों को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं।

संत : संत का अर्थ होता है ''सत्य का ज्ञाता'' या ''परमात्मा का भक्त'' संत वे लोग होते हैं जिन्होंने जीवन में अहिंसा, सत्य करूणा, और प्रेम के उच्च आदर्शो को प्राप्त किया होता है।

संतों का जीवन समाज सेवा, शिक्षा और भक्ति के माध्यम से मानवता की सेवा करने में समर्पित होता है ।

संत केवल आत्म साक्षात्कार तक सीमित नहीं रहते हैं बल्कि अपने ज्ञान और अनुभव को समाज में बाटंते हैं ,वे लोगों को जीवन में सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं।

संतों के पास आध्यात्मिक ज्ञान होता है और वह समाज में अपने उपदेशों के माध्यम से सुधार लाने की कोशिश करते हैं ,संतों का जीवन प्रेम करूणा और मानवता की सेवा के लिए होता है ।

उदाहरण – संत कबीर, संत तुलसीदास ,गुरु नानक, संत तुकाराम, संत एकनाथ, संत नामदेव व संत रविदास जिन्होंने भक्ति के माध्यम से समाज में शिक्षा और जागरूकता फैलाने का कार्य किया।

संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि परंपरा और मानवता

संत, महात्मा परंपरा संतों ने अपने आचरण और विचारों द्वारा समाज में निष्काम कर्म भगवान से प्रेम अजात शत्रुत्व असक्तियों से दूर रहना आदि विविध गुण को पल्लवित किया है।

महापुरुषों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। संतों की परंपरा की शुरुआत जयदेव और नामदेव से हुई है लेकिन उस परंपरा का वास्तविक विकास कबीर से होता है संत परंपरा क्या है ?

लगभग 13 वीं सदी के बाद से भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में संत मत तत्कालीन गुरुओं व संतों का एक सहयोगी व अनुयाइयों का समूह था जिसे बहुत प्रसिद्धि मिली। धर्म ब्रह्म विज्ञान के तौर पर उनकी शिक्षाओं की विशेषता यह है कि वे अंतर्मुखी और प्रेम भक्ति के एक दैवीय सिद्धांत से जुड़े हैं और सामाजिक रूप से वे एक समतावादी गुणों वाले सिद्धांत से जुड़े हैं जो हिंदु धर्म की जाति प्रथा के विरुद्ध है और हिंदू – मुस्लिम के अंतर के भी विरुद्ध है।(1) संत परंपरा को मुख्यत: दो समूहों में बांटा जा सकता है: पंजाब, (राजस्थान और उत्तर प्रदेश) क्षेत्र के संतों का उत्तरी समूह जिसने अपनी अभिव्यक्ति मुख्यत: बोलचाल वाली हिंदी में की और दक्षिणी समूह जिसकी भाषा पुरातन मराठी है और जिसका प्रतिनिधित्व नामदेव और महाराष्ट्र के अन्य संत करते हैं।(1)

व्युत्पत्ति – 'संत मत' का अर्थ है – 'संतों का मार्ग', 'सत्य का मार्ग', 'सही और आशावादी पथ' या 'संतों की राय'. 'संत' शब्द संस्कृत की धातु 'सद्' से बना है और कई प्रकार से प्रयोग हआ है (सत्य, वास्तविक, ईमानदार, सही). इसका मूल अर्थ है 'सत्य जानने वाला' या 'जिसने अंतिम सत्य अनुभव कर लिया हो। 'संत' शब्द से अर्थ आम तौर पर एक अच्छे व्यक्ति से लिया जाता है लेकिन इसका विशेष अर्थ मध्यकालीन भारत के संत कवियों से ही लिया जाता है।

संत – संत मत आंदोलन एकरूप नहीं था और इसमें संतों का अपना सामाजिक–धार्मिक व्यवहार शामिल था जो कि हजारों वर्ष पहले भगवद्गीता में वर्णित भक्ति पर आधारित माना जाता था। अपनी साझी कुछ रूढ़ियाँ आपस में और उन परंपराओं के अनुयायिओं में भी साझी थीं जिन्हें उन्होंने चुनौती दी थी। इस प्रकार संत मत विशिष्ट धार्मिक परंपरा के बजाय आध्यात्मिक व्यक्तित्वों का ऐसा विविधतापूर्ण समूह प्रतीत होता है जो एक सामान्य आध्यात्मिक मूल को स्वीकार करता है।(2)

इस आंदोलन की सीमाएँ संभवत: संप्रदायवादी नहीं थीं और इसमें जाति और पूजा–पद्धति की ब्राह्मण अवधारणाएँ भी नहीं थीं। संत कवियों ने अपनी वाणी बोलचाल की भाषा में लिखे काव्य में कही जो उन्होंने हिंदी और मराठी जैसी स्थानीय भाषाओं में सामान्य जन को संबोधित की। उन्होंने ईश्वर नाम को सच्चा रक्षक कहा और धार्मिक आडंबरों को मूल्यहीन कह कर खारिज कर दिया। उन्होंने इस विचार को स्थापित किया कि धर्म, ईश्वर के प्रति समर्पण का विषय है जो कि हृदय में बसता है।(3)

उत्तर भारतीय संतों की पहली पीढ़ी जिसमें कबीर और रविदास शामिल हैं 15वीं शताब्दी के मध्य में बनारस में पैदा हुए. उनसे पूर्व 13वीं और 14वीं शताब्दी में दो मुख्य व्यक्तित्व नामदेव और रामानंद हुए. संत मत परंपरा के अनुसार रामानंद वैष्णव साधु थे जिन्होंने कबीर, रविदास और अन्य संतों को नाम दान दिया। रामानंदी भिक्षुओं की परंपरा, उसके बाद के अन्य संत और बाद के सिखों द्वारा रामानंद की कथा को अलग–अलग तरह से बताता है। इतनी जानकारी मिलती है कि रामानंद ने सभी जातियों से शिष्य स्वीकार किए, यह एक ऐसा तथ्य है जिसका रूढ़िवादी हिंदुओं ने उस समय विरोध किया था। संत मत के अनुयायी मानते हैं कि रामानंद के शिष्यों ने संतों की पहली पीढ़ी तैयार की। (4)

इन संतों ने एक संकृति का विकास किया जो समाज में हाशिए पर पड़े मनुष्यों के निकट थी जिसमें महिलाएँ, दलित, अछूत और अतिशूद्र शामिल थे। कुछ

अधिक प्रसिद्ध संतों में रविदास (जन्म : सन् 1398), नामदेव (जन्म :सन् 1269), कबीर (जन्म :सन् 1398), नानक (जन्म :सन् 1469), सूरदास (जन्म :सन् 1478), मीरा बाई ((जन्म :सन् 1504), तुलसीदास ((जन्म :सन् 1532) और तुकाराम (जन्म :सन् 1606) शामिल हैं।

संतों की पंरपरा गैर–संप्रदायवादी रही यद्यपि माना जाता है कि कई संत कवियों ने अपने संप्रदाय स्थापित किए। इनमें से कइयों के नाम के साथ संत जुड़ा है लेकिन उनके शिष्यों ने आगे चल कर कबीर पंथ, दादू पंथ, दरिया पंथ, अद्वैत मत, आध्यात्मिकता का विज्ञान (www.sos.org) और राधास्वामी जैसे पंथ चलाए।(5)

धार्मिक हिंदुओं के एक अल्प समुदाय ने ही औपचारिक रूप से संत मत का अनुगमन किया है। परंतु इस परंपरा का सभी संप्रदायों और जातियों पर बहुत प्रभाव पडा.है। मीरा बाई जैसे बीते संतों के भजन (भक्ति गीतों) को भारत और विश्व भर में हिंदु जातियों में काफी सुना जाता है। मध्यकालीन और आधुनिक भरत में केवल संत परंपरा ही है जिसने सफलतापूर्वक हिंदू और मुस्लिम सीमाओं को तोड़ा है। जूलियस जे. लिप्नर ने जोर दे कर कहा है कि संतों की धार्मिक शिक्षाओं ने कई हिंदुओं के जीवन का उत्थान किया है और उसने उसे स्वतंत्रतादायिनी कहा है।(3)

संत मत परंपरा में जिंदा गुरु को महत्व दिया जाता है जिसे सत्गुरु या 'पूर्ण गुरु' जैसे सम्मान सूचक शब्दों के साथ संबोधित किया जाता है।(6)

अन्य संबंधित आंदोलन –

माना जाता है कि मध्यकालीन सूफी कवियों यथा जलाल अल–दीन मोहम्मद रूमी और सिंधी कवियों और संत मत कवियों के बीच बहुत समानता है।(7)

उत्तर भारत का राधास्वामी आंदोलन अपने आप को संतमत पंरपरा और धार्मिक प्रयास का मुख्य निधान मानता है और स्वयं को संत परंपरा के जीवित

अवतार की भांति प्रस्तुत करता है। सबसे अधिक उल्लेखनीय राधास्वामी सत्संग ब्यास है, जो ब्यास नदी के किनारे पर स्थित है और जिसके वर्तमान जीवित गुरु बाबा गुरिंदर सिंह ढिल्लों हैं। मार्क ज्यर्गंसमेयेर के अनुसार ऐसा दावा कबीर पंथी, सिख और अन्य आंदोलनों द्वारा भी किया जाता है जो आज की वैध संत मत परंपरा से अंतर्दृष्टि प्राप्त कर रही हैं।(8) डेविड सी. लेन ने बाबा फकीर चंद के दैवी रूप प्रकट होने से संबंधित फकीर के 'न जानने' के कथन को 'चंदियन प्रभाव' के रूप में निरूपित किया है। फकीर ने इसे अनुयायियों के मन का ही खेल कहा और रूप प्रकट होने को माया बताया। यह संतमत की कई धारणाओं को तोड़ता है।

गुरु महाराज जी (प्रेम रावत) और डिवाइन लाइट मिशन (एलेन विटाल) को जे. गोर्डन मेल्टन, लूसी डू पर्टीज़ और विशाल मंगलवाड़ी संत मत परंपरा का मानते हैं परंतु रॉन ग्रीव्ज़ इस लक्षण-वर्णन के विरोधी हैं। (9)(10)(11)(12) 20वीं सदी के एकंकार Eckankar धार्मिक आंदोलन को भी डेविड सी. लेन ने संत मत परंपरा की ही शाखा माना है।(13) जेम्स आर. ल्यूइस ने इन आंदोलनों को नए संदर्भ में पुराने विश्वास की अभिव्यक्ति कहा है।(14)

वर्तमान में सन्तमत परम्परा अपने शुद्ध स्वरुप में सन्तमत अनुयायी आश्रम वारानसी में प्रवाहित है। (15)

इन्हें भी देखें – संत साहित्य, भक्ति, हिंदुत्व, सुरत शब्द योग,

संदर्भ –

1. अ आ वुडहेड, लिंडा और फ्लेचर, पॉल. रिलीजियन इन द मॉडर्न वर्ल्ड: ट्रेडीशंस एंड ट्रांसफॉर्मेशंस (2001) पृ.71-2. राऊटलेज (यू.के) ISBN 0-415-21784-9"
2. गोल्ड, डेनियल, क्लैन एंड लाइनेज अमंग द संत्स: सीड, सब्स्टांस, सर्विस, in संत मत:स्टडीज़ इन डिवोशनल ट्रेडीशन आफ़ इंडिया in शोमर के. और मैक्ल्योड

डब्ल्यू.एच. (Eds.). पृ.305, ISBN 0-9612208-0-5

3. सन्दर्भ त्रुटि: <ref> का गलत प्रयोग; लिप्नर नाम के संदर्भ में जानकारी नहीं है।
4. हीज़, पीटर, इंडियन रिलीजियंस: अ हिस्टॉरिकल रीडर ऑफ स्पिरीचुअल एक्सप्रेशन एंड एक्सपीरिएंस, (2002) पृ.359. NYU Press, ISBN 0-8147-3650-5
5. वाउडेविले, चार्लट. संत मत: संतिज़्म इज़ द यूनिवर्सल पाथ टू सैंक्टिटी in संत मत:स्टडीज़ इन डिवोशनल ट्रेडीशन ऑफ इंडिया in शोमर K.R. मैक्ल्योड डब्ल्यू.एच. (Eds.) ISBN 0-9612208-0-5
6. ल्यूइस, जेम्स पी. (1998). सीकिंग द लाइट: अनकवरविंग द ट्रूथ अबाउट द मूवमेंट ऑफ स्पिरीचुअल इन्नर अवेयरनेस एंड इट्स फाउँडर जॉन-रोजर. हिचइन: मंडेविले प्रेस. p. 62. ISBN 0-914829-42-4.
7. अलसानी, अली, सिंधी लिटरेरी कल्चर, in पोल्लोक, शेल्डन I (Ed.) लिटरेरी कल्चर इन हिस्टरी (2003), p.637-8, यूनीवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस, ISBN 0-520-22821-9
8. ज्यर्गंसमेयेर, मार्क. द राधास्वामी रिवाइवल पृ.329-55 in संत मत स्टडीज़ इन अ डिवोशनल ट्रेडीशन ऑफ इंडिया in शोमर के. और मैक्ल्योड डब्ल्यू.एच. (Eds.) W.H. ISBN 0-9612208-0-5
9. जे. गोर्डन मेल्टन., एनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरीकन रिलीजियंस
10. लूसी डू पर्टीज़. "हाओ पीपल रिकॉगनाइज़ करिश्मा: राधास्वामी और डिवाइन लाइट मिशन" के मामले में दर्शन in सोशिऑलाजिकल एनालाइसिस: अ जर्नल इन द सोशियोलोजी ऑफ रिलीजियन Vol. 47 No. 2 by एसोसिएशन फॉर द सोशियोलॉजी ऑफ रिलीजियन. शिकागो, समर 1986, ISSN 0038-0210, pp. 111-124.

11. मंगलवाडी, विशाल (1977), वर्ल्ड ऑफ गुरुज़, नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि., p. 218, ISBN 0-7069-0523-7

12. रोन ग्रीव्ज़. "फ्राम डिवाइन लाइट मिशन टू एलन विटाल एंड बियोंड:एन एक्सप्लोरेशन ऑफ चेंज एंड एडेप्टेशन" in नोवा रिलीजियो:द जरनल ऑफ आल्टरनेटिव एंड इमेर्जेंट रिलीजियंस वाल्यूम. 7 No. 3. मार्च 2004, पृ. 45–62. मूल रूप से अल्प मत धर्म, सामाजिक परिवर्तन और आत्मा की स्वतंत्रता पर (यूनीवर्सिटी ऑफ ऊटाह एट साल्ट लेक सिटी) में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया। At Caliber (जरनल्स ऑफ द यूनीवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रैस)[मृत कड़ियाँ]

13. लेन, डेविड सी., "एक आध्यात्मिक आंदोलन की रचना", एल मार प्रैस; संशोधित संस्करण (दिसंबर 1, 1993), ISBN 0-9611124-6-8

14. ल्यूइस, जेम्स आर. द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ न्यू रिलीजियस मूवमेंट्स पृ.23, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस (2003), ISBN 0-19-514986-6

15. A BRIEF INTRODUCTION At "सन्तमत अनुयायी आश्रम" Archived 2013-07-16 at the वेबैक मशीन

or www.skrm.org - For information regarding Sant Mat browse these websites.

ऋषि परंपरा

ऋषियों के ऋषि तथा महर्षियों के महर्षि थे महर्षि वशिष्ठ, भगवान राम के इष्टगुरु भी थे वशिष्ठ।

- महर्षि वशिष्ठ ऋषियों के ऋषि हैं और महर्षियों के महर्षि। – वे ऋषि परम्परा के सर्वोच्च पद ब्रह्मर्षि के रूप में प्रतिष्ठित हैं महर्षि वशिष्ठ की दिव्य उपस्थिति से वेदों से लेकर रामायण व महाभारत तथा परवर्ती पौराणिक वांग्मय जगमगा रहा है।
- वे सप्तऋषियों में प्रमुख हैं तो ऋग्वेद के समूचे सातवें मण्डल के अधिष्ठाता ऋषि हैं।
- ऋषि परंपरा की इस कड़ी में इन्हीं महान महर्षि वशिष्ठ और उनकी नाम–परंपरा का एक परिचय...

लोक वशिष्ठ को प्रायः श्रीराम कथा के माध्यम से सूर्यवंश के कुलगुरु के रूप में जानता है, लेकिन वे वैदिक काल के सबसे बड़े ऋषि–पुरोहित भी हैं।

वे उन सप्तऋषियों में एक हैं, जिन्हें ईश्वर द्वारा एक साथ सत्य का ज्ञान प्राप्त हुआ और फिर उन सभी ऋषियों ने मिलकर वेदों का दर्शन–सृजन किया।

उनके तप, त्याग, सिद्धि और क्षमा की महिमा इतनी प्रभावी है कि आकाश में चमकते सात तारों के समूह में दाहिने से दूसरे वशिष्ठ का यश पत्नी अरुंधती सहित अनादिकाल से आज भी दमक रहा है।

महर्षि वशिष्ठ की उत्पत्ति का वर्णन पुराणों की नाना कथाओं में अनेक रूपों में उपलब्ध है। ये कहीं ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं तो कहीं आग्नेय पुत्र और कहीं मित्रावरुण के पुत्र कहे गए हैं, जिन्हें विद्वानों ने कल्पभेद से ठीक भी माना है। जो भी हो, मगर सारे धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण एक बात की साक्षी देते हैं कि

वशिष्ठ त्रिकालदर्शी थे और अपने पिता ब्रह्मा की आज्ञा से सूर्यवंशी राजाओं के पुरोहित बनकर कालांतर में भगवान राम के करकमलों से पूजे गए थे। सूर्यवंशी राजा इन्हीं की आज्ञा से राज्य संचालन करते थे।

एक नहीं अनेक महर्षि वशिष्ठ की सुदीर्घकालीन उपस्थिति के संदर्भ में पौराणिक साहित्य के अध्येताओं का एक मत यह भी है कि ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ के नाम पर आगे चलकर उनके वंशज भी वशिष्ठ कहलाए। इस तरह 'वशिष्ठ' केवल एक व्यक्ति नहीं बल्कि पद बन गया और विभिन्न युगों में अनेक प्रसिद्ध वशिष्ठ हुए। सर्वप्रथम हुए वशिष्ठ की दो पत्नियां थीं। एक ऋषि कर्दम की कन्या अरुंधती और दूसरी प्रजापति दक्ष की कन्या ऊर्जा। इस नाते आदि वशिष्ठ, दक्ष की एक अन्य पुत्री देवी सती से ब्याह करने वाले भगवान शिव के साढ़ू थे। इन आद्य वशिष्ठ के बाद दूसरे इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रिशुंक के काल में हुए, जिन्हें वशिष्ठ देवराज कहते थे। तीसरे कार्तवीर्य सहस्रबाहु के समय में हुए, जिन्हें वशिष्ठ अपव कहते थे। चौथे अयोध्या के राजा बाहु के समय में हुए, जिन्हें वशिष्ठ अथर्वनिधि (प्रथम) कहा जाता था। पांचवें राजा सौदास या सुदास (कल्माषपाद) के समय में हुए थे, जिनका नाम वशिष्ठ श्रेष्ठभाज था। छठे वशिष्ठ राजा दिलीप के समय हुए, जिन्हें वशिष्ठ अथर्वनिधि (द्वितीय) कहा जाता था। इसके बाद सातवें भगवान राम के समय में हुए, जिन्हें महर्षि वशिष्ठ कहते थे और आठवें महाभारत के काल में हुए जिनके पुत्र का नाम शक्ति था। इनके अलावा वशिष्ठ मैत्रावरुण, वशिष्ठ शक्ति, वशिष्ठ सुवर्चस सहित कुल 12 वशिष्ठों का पुराणों में उल्लेख है। वशिष्ठ की संपूर्ण जानकारी वायु, ब्रह्मांड एवं लिंग पुराण में मिलती है, जबकि वशिष्ठ कुल ऋषियों एवं गोत्रकारों की नामावली मत्स्य पुराण में दर्ज है।

विश्वामित्र से प्रतिद्वंद्विता वशिष्ठ से एक निश्चित व्यक्ति का बोध हो, ऐसा सम्भव प्रतीत नहीं होता, लेकिन इतना तय है कि एक ऐतिहासिक वशिष्ठ थे, जिनका ऋग्वेद के सातवें मण्डल की उस ऋचा से स्पष्ट बोध होता है, जिसमें उनके द्वारा दस राजाओं के विरुद्ध सुदास की सहायता की गई। इन्हीं आद्य वशिष्ठ के जीवन

की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना में एक है उनकी महर्षि विश्वामित्र से प्रतिद्वंद्विता। ऋग्वेद में इन दोनों ऋषियों के संघर्ष का विवरण नहीं मिलता, मगर वशिष्ठ के पुत्र शक्ति तथा विश्वामित्र की शत्रुता का प्रमाण यहां प्राप्त है। विश्वामित्र ने भाषण में विशेष पटुता प्राप्त की तथा सुदास के सेवकों से शक्ति की हत्या करवाई। इस घटना का संक्षिप्त उल्लेख तैत्तरीय संहिता में पाया जाता है। पञ्चविंश ब्राह्मण में भी वशिष्ठ के पुत्र के मारे जाने तथा सौदासों पर विश्वामित्र की विजय का उल्लेख है। वैदिक साहित्य के ऋषि के रूप में वशिष्ठ के अनेक उद्धरण सूत्रों, रामायण और महाभारत में प्राप्त हैं, जिनमें वशिष्ठ और विश्वामित्र का संघर्ष वर्णित है। कथाओं के अनुसार, जब विश्वामित्र राजा थे, तब एक बार वशिष्ठ के आश्रम पहुंचे थे और कामधेनु गाय पर रीझ गए थे। इसी गाय के लोभ में वशिष्ठ से उनका युद्ध हुआ और बाहुबल के मुक़ाबले ब्रह्मबल को अधिक समर्थ मान विश्वामित्र तपस्वी बने। वैदिक काल का यह संघर्ष रामायणकाल में मैत्री में परिवर्तित हो गया। रामकथा में विश्वामित्र यज्ञ–रक्षा के लिए राम–लक्ष्मण को मांगने दशरथ के पास आए तो वशिष्ठ के ही कहने पर दशरथ ने अपने पुत्रों को साथ भेजा था।

सूर्यवंश के कुलगुरु पौराणिक संदर्भों के अनुसार, ब्रह्मा की आज्ञा से वशिष्ठ ने सूर्यवंशी राजाओं का पौरोहित्य स्वीकार किया था। वे पहले इस पर राजी न थे और तप के इतर राजाओं की पुरोहिती को निंदित कर्म मानते थे। लेकिन ब्रह्मा के यह कहने पर कि इसी वंश में आगे चलकर श्रीराम अवतार लेंगे, वशिष्ठ ने पुरोहित बनना स्वीकार किया। कहते हैं कि इक्ष्वाकु ने 100 रात्रियों का कठोर तप करके सूर्य देवता की सिद्धि प्राप्त थी की और वशिष्ठ को गुरु बनाकर उनके उपदेश से अपना पृथक राज्य और राजधानी अयोध्यापुरी बनाई। तब से वशिष्ठ प्राय: वहीं रहने लगे। प्रथम वशिष्ठ ही पुष्कर में प्रजापिता ब्रह्मा के यज्ञ के आचार्य रहे थे। वशिष्ठ ने इक्ष्वाकु व निमि से अनेक यज्ञ कराए थे और इन्हीं की प्रेरणा से भगीरथ गंगा को धरती पर ला पाए थे। संतानहीन राजा दिलीप ने वशिष्ठ से प्राप्त गोसेवा विधि से ही रघु जैसे प्रतापी पुत्र को पाया था, जिनके नाम पर सूर्यवंश

कालांतर में रघुवंश के नाम से प्रख्यात हुआ। आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण में महर्षि वशिष्ठ की कीर्ति कथा प्रत्येक काण्ड में उपलब्ध है। तदनुसार ये राजा दशरथ के माननीय ऋत्विज थे। इन्हीं की प्रेरणा से दशरथ ने पुत्रयेष्टि यज्ञ कराया था। सभी पुत्रों के नामकरण भी वशिष्ठ ने ही किए थे। इनके गुरुकुल में ही राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की प्रारंभिक शिक्षा हुई थी। राम द्वारा शिव–धनुषभंग के बाद दशरथ ने इनकी आज्ञा पाकर ही सकुटुम्ब मिथिला के लिए प्रस्थान किया था। रामकथा के अंत में इन्हीं के परामर्श पर राम ने अश्वमेध यज्ञ किया था।

हितकारी महान संदेश महातपस्वी और ज्ञानी–ध्यानी महर्षि वशिष्ठ का एक भावुकता से परिपूर्ण सुंदरतम चित्र गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में प्रस्तुत किया है। कथा है कि जब राम वन चले गए और दशरथ का देहांत हो गया तब वशिष्ठ की आज्ञा से मामा के घर गए भरत व शत्रुघ्न को अयोध्या बुलाया गया। भरत ने पहले तो पिता की अंत्येष्टि की और फिर दुःखी हृदय राजसभा में आकर सबके बीच बैठे। उस समय 'भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे, नीति धरममय बचन उचारे' के अनुसार वशिष्ठ ने भरत को अपने पास बैठाकर नीति और कर्तव्य का बोध कराया। मगर गृहक्लेश के लिए स्वयं को दोषी मानकर भरत कुछ भी सुन–समझने की स्थिति में नहीं थे। वे महर्षि से लिपटकर रोने लगे। तब वशिष्ठ भी भावुक होकर बिलख पड़े। 'सुनहु भरत भावी प्रबल कहेउ बिलखि मुनिनाथ, लाभ हानि जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।' अर्थात, भरत को सांत्वना देते हुए महर्षि वशिष्ठ स्वयं बिलख पड़े और बोले, 'हे भरत! होनहार बड़ी प्रबल होती है। मत भूलो कि जीवन में लाभ–हानि, जीना–मरना और यश–अपयश ये छह बातें केवल विधाता के हाथ हैं। मनुष्य का इन पर कोई वश नहीं। मानो भरत के बहाने वशिष्ठ ने मानव मात्र को जीवन का शाश्वत सूत्र दिया हो!

अद्वितीय है योगवासिष्ठ महर्षि वशिष्ठ संहिता, वशिष्ठ कल्प, वशिष्ठ शिक्षा, वशिष्ठ

तंत्र, वशिष्ठ पुराण, वशिष्ठ स्मृति, वशिष्ठ श्राद्ध कल्प आदि वशिष्ठ व उनकी संतति कृत महत्वपूर्ण धर्मग्रंथ हैं, मगर इन सभी में अद्वैत वेदांत का ग्रंथ योगवासिष्ठ अद्वितीय है। लोक में यह आर्ष–रामायण, ज्ञानवासिष्ठ, महारामायण, वशिष्ठ–गीता और वशिष्ठ रामायण आदि नामों से भी जाना–माना जाता है। इसमें किशोरावस्था में श्रीराम को दिए गुरु वशिष्ठ के उपदेशों का संकलन है। एक स्थान पर गुरु ने कहा है, 'मन की शांति ही सच्चा 'मोक्ष' है और इस मोक्ष के चार ही द्वार हैं। 'मोक्षद्वारे द्वारपालश्चत्वारः परिकीर्तिताः। शमो विचारः संतोषश्चतुर्थः साधुसंगमः।।'

अर्थात हे राम! मुक्ति के चार ही द्वार/ द्वारपाल हैं : शम, विचार, संतोष और साधु पुरुषों की संगत। मनुष्य को इन चारों का प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिए। अनावश्यक कामनाओं को नियंत्रित करें, सकारात्मक चिंतन कर जगत की असारता को समझें, जो प्राप्य है उसे ईश्वर की कृपा मान उसमें संतोष साधें और सदा भले, गुणी, बुद्धिमान तथा वीतरागी लोगों का सत्संग करें।

महाभारत में महर्षि वशिष्ठ महाभारत में महर्षि वशिष्ठ के सूत्र कुछ इस तरह जुड़े हैं मानो वे ही धृतराष्ट्र व पाण्डु के आदि–पूर्वज हैं। इस तरह कि इस महाकाव्य में वे शक्ति के पिता हैं और शक्ति के पुत्र पाराशर हैं। पाराशर के ही पुत्र महर्षि वेदव्यास हैं, जो न केवल महाभारत के रचयिता हैं बल्कि धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के जन्मदाता पिता भी हैं। महाकाव्य में यत्र–तत्र–सर्वत्र वशिष्ठ की कथाएं छाई हुई हैं। इन्हें 21 प्रजापतियों में एक बताया गया है और इनका आश्रम बादरीपाचन में है। ये ब्रह्मा से संवाद करते हैं और कुरुवंश के प्रवर्तक राजा कुरु के लिए कुरुक्षेत्र में यज्ञ करते हैं। भीष्म ने वेदों का ज्ञान इन्हीं से पाया था और शरशय्याधारी होने पर भीष्म को घेरकर खड़े ऋषियों में ये भी सम्मिलित थे। अर्जुन के जन्म के समय उपस्थित सात महर्षियों में भी ये एक थे।

संदर्भ – दैनिक भास्कर से साभार (डॉ. विवेक चौरसिया) का लेख

संतों ने दिया मानवता का संदेश

(1) समर्थ रामदास स्वामी को गुरु हरगोबिंद जी महाराज ने उन्हें धर्म रक्षा हेतु शास्त्र सज्ञा रहने का मार्गदर्शन किया। अपने भारत भ्रमण के समय समर्थ रामदास स्वामी जी ने जनता की दु:खो दुर्दशा देखी उससे उनका हृदय संतृप्त हो उठा। उन्होंने मोक्ष साधना के साथ ही अपने जीवन का लक्ष्य स्वराज की स्थापना कर आताताायी शासको के अत्याचारों से जनता को मुक्ति दिलाना बनया था। शासन के विरुद्ध जनता को संगठित होने का उपदेश देते हुए घूमने लगे इसी प्रयत्न में उन्हें छत्रपति श्री शिवाजी महाराज जैसे योग्य शिष्य का लाभ हुआ और स्वराज्य स्थापना के सपनों को साकार होते हुए देखने का सौभाग्य उन्हें अपने जीवन काल में ही प्राप्त हो सका ।

(2) नरसी मेहता नरसी मेहता जी को पुष्टि मार्ग में वेधेयो माना जाता है, नरसी किसी संप्रदाय से संबंध प्रतीत नहीं होते। उनकी भक्ति *भागदताश्रित थी वैष्णव जन ते तैणे कहिए ,जे पीड़ पराई जाणे रे।* नरसी मेहता को गृहस्थ जीवन में चमत्कारिक रूप से अपने आराध्य की ओर से सहायता प्राप्त होने के अनेक वर्णन उनकी आत्मचरित्रपरक कई रचनाओं में उपलब्ध होते हैं । इसी तरह भगवान ने कई बार नरसी मेहता की मदद की इनमें हुंडी : मामेरू और हार का प्रसंग सर्वप्रमुख है। ''ढेढ'' प्रसंग भी नरसी जी की जीवनी में यथेष्ट महत्व रखता है, क्योंकि उनके फलस्वरूप उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया। वे स्त्री और शुद्र को भक्ति का अधिकारी समझते थे, जिसके कारण समस्त नागर जाति उनसे क्षुब्ध हो गई थी ।नरसी ने अपनी अंतवृत्ति को बाहय प्रभाव से कुंठित नहीं होने दिया यह उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है ।

(3) तुलसीदास भक्ति काल की राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। तुलसीदास ने रामचरितमानस के जरिए भगवान राम की भक्ति को घर तक घर–

घर पहुंचाया है। जहां तुलसीदास साहित्य भक्ति साधना जागृत करता है वही सामाजिक चेतना का भी प्रसार करता है। तुलसीदास की सामाजिक और लोक वादी दृष्टि मध्यकाल के अन्य कवियों से अधिक व्यापक और गहरी है ।

वे अपने कल की सामाजिक, आर्थिक ,राजनीतिक स्थिति को अनदेखा नहीं करते हैं वह उस पर भी अपनी कलम चलाते हैं ।

तुलसी भक्ति के स्तर पर वर्ण व्यवस्था को बिल्कुल स्वीकार नहीं करते इसलिए उन्होंने रामचरितमानस से शंबूक वध प्रसंग को निकाल दिया है, और शबरी को ’भामिनी, कहकर संबोधित करते हैं, वह कहते हैं

नव महु एकौ जिन्ह के होई। नारी पुरुष सचराचर कोई।
सोई अतिसय प्रिय भामिनी मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ तोरे।।

जहां तुलसी भक्ति मार्ग में वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हैं वही कर्मपथ से हट जाने वाले ब्राह्मण को काफी बुरा भला कहते हैं ।

जाके नख अरू जटा विसाला। सोई तापस प्रसिद्ध कलिकाला।
विप्र निरछर लोलूप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी ।

भक्ति काल के अधिकतर कवि राजनीति से दूर रहते थे ,लेकिन तुलसीदास एकमात्र ऐसे रचनाकार है जो अपने समय की राजनीतिक विसंगतियों की कटु आलोचना करते है और राजा के लिए दंड की व्यवस्था भी करते हैं ।

गोठ गॅवार नृपाल महि, जनम महा महिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नर्क अधिकारी।।

तुलसीदास सिर्फ राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करके ही नहीं रूक गए, उन्होंने तत्कालीन समाज की आर्थिक समस्याओं की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने गरीबी, अकाल, बेरोजगारी की समस्याओं पर वर्णन अपनी रचनाओं में किया है।

'नही दरिद्र समदुख जग माहीं ।संत मिलन समसुख जग नाहीं।
कलि बारहि बार दुकाल पड़ै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरें।।
'खेती ना किसान को, भिखारी को ना भीख बलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चकरी ।।
जीविका विहिन लोग सिधमान सोच बस।
कहे एक एकन सो, 'कहां जाई का करी?''

गोस्वामी जी कहते हैं कि मंत्री, वैध और गुरु यह तीन यदि भय या लाभ की आशा से हित की बात न कहकर प्रिय बोलते है।

तो (क्रमशः)राज्य, शरीर एवं धर्म इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

सचिव, वैध, गुरु तीनि जै प्रिय बोलहि भय आस।
राज, धर्म, तन तीनि का होई वेगही नास।।

(4) संत कबीर दास मानवीय समता के विधायक संत कबीर संसार में मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठापना हेतु जिन–जिन महापुरुषों ने अपने काल में मानव हित के लिए संघर्ष करते रहे उनकी प्रासंगिकता प्रत्येक युग में ज्यों कि त्यों बनी रहती है और तब तक बनी रहेगी जब तक मनुष्य का अस्तित्व कायम रहेगा। विभिन्न दुःखों से संसार को उभारने के लिए समय–समय पर संत महात्माओं का आर्भिभाव होता ही रहता है । ऐसे ही एक संत का नाम है कबीर दास उदाहरण स्वरूप इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है ।

'हिंदू तुरक के बीच मेरा नाम कबीर। जीव मुकतावन कारनै, अवगति धरा शरीर ।

कबीर विलक्षण व्यक्तित्व में स्वतंत्र विचारक, उदार, धर्मगुरु, परम संत महान समाज सुधारक तथा मानवीय समता के विधायक होने के समस्त गुण विद्यमान रहे।

कबीर दास जी का व्यक्तित्व भले ही अत्यंत क्रांतिकारी रहा हो किंतु वे स्वतंत्रतयेता, सत्यवादी परम संतोषी, से निर्भीक समाज सुधारक स्वभाव से

मस्त मौला रहे।

कबीर दास जी समस्त मानव जाति का उपकार तथा समाज में समता की भावना बनाए रखना चाहते थे। संत कबीर के साहित्य अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनकी वाणी में मानव जगत समाज में व्याप्त विषमता के स्थान पर समता की स्थापना करना चाहते थे ।

प्रत्येक मानव को उसका उचित मानवीय सम्मान देने सम्मान की उत्कर्ष (प्रबल) अभिलाषा कबीर के मन मस्तिष्क में समाहित थी।

कबीर गरीब व्यक्ति को अमीर से श्रेष्ठ मानते हैं वह गरीब को स्वाभिमान से जीवन यापन करने हेतु हमेशा प्रेरित करते रहे। उनकी सोच में गरीब होना कोई अभिशाप नहीं बल्कि वरदान के समान है क्योंकी वही ईश्वर निवास करता है ।

कबीर हिंदू और मुसलमान दोनों को ही एक समान मानते हैं कबीर मतानुसार तो मानव धर्म ही सबसे बड़ा धर्म है, उनके चिंतन के केंद्र में केवल मानव कल्याण ही रहा है ।वो धर्म ही किस काम का जो मानव मानव के बीच भेदभाव का बीज बोता हो ।

आखिर प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा एवं शारीरिक संरचना में किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं है सभी मनुष्यों का शरीर पंचतत्वों से मिलकर ही बनता है और सभी के भीतर एक ही आत्मा निवास करती है, तो फिर यह भेदभाव जातिपाति किस लिए ब्रह्मण शुद्र, उच्च– नीच किस लिए है।

इन्हीं बातों को कबीर ने अपने दोहे के माध्यम से समाज के समक्ष रखा।

एक बूंद एक मल मूतर। एक चाम एक गुदा एक ज्योति में,
सब उतपनौ, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।

जाति पाति का विरोध करने के साथ–साथ कहते हैं, की भक्ति के क्षेत्र में जाति का कोई स्थान नहीं होता है।

इसलिए इन विकृतियों को जड़ से खत्म करने पर बल देते हैं।

जाति पाति पूछे नई कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।

कबीर के समय धर्म, समाज और संस्कृति तीनों का स्वरूप बिगड़ गया था ,और सभी रूढियो, अंधविश्वासों वा जडता में घिरे थे ।रोती बिलखती मानवता को उन्होंने केवल सांत्वना ही प्रदान नहीं की जो मार्ग वह भूल चुके थे उसे पुन मार्ग दिखाया तथा निश्चित सोई हुई जनता को मानव धर्म का ज्ञान कराया।

समाज के सभी लोग मिलजुल कर रहे धर्म के नाम पर कोई किसी का शोषण न करें हमेशा मानवता को बनाए रखना ही मानवता का सच्चा पहला धर्म होता है ।

कबीर का भी यही धर्म था और वो मानवता के धर्म को ही सर्वोपरि मानते थे वो नहीं चाहते थे कि लोग कहे कुछ और करें कुछ यानी सामने कुछ करें और मन में पाप रखें।

ऐसे लोगों को अपने दोहे के माध्यम से सचेत करने का प्रयास करते हैं।

कबीर काजी स्वादि दासी बहाहतै तबरोह।
चढ़ी मसीति एकै कहै हरि क्यों सांचा होई ।

कबीर ने उन सभी आचारों विचारों की भी निंदा की है।जिनमें मानवीय धर्म का कोई महत्व नहीं तथा मानव धर्म का कोई मूल तत्व मौजूद नहीं और जहां केवल प्रदर्शन पर ही धर्म मान लेते उनको अपने व्यंग्यात्मक भाषा से खूब फटकार लगाते हैं।

करता दीजे कीरतन ,ऊँचा करि करि तूंड।
जाणे बूझे कुछ नहीं, यो ही आधा सूंड।।

समाज चार वर्णों में विभाजित था, ब्राह्मण को सबसे ऊंचा और निम्न वर्ग के साथ पशुओं की भांति व्यवहार किया जाने लगा था।

इस अनर्थ को देख कबीर द्रवित हो उठते थे और छुआछूत वर्ण व्यवस्था दोनों

के प्रति आक्रोश प्रदर्शित करते हैं ।

काहे की कीजै पांडे छोति विचारा। छीनिही तै अपना सब संसारा।।
हमारे कैसे लोहू। तुम्हारे कैसे दूध तुम कैसे ब्राह्मण पांडे। हम कैसे सूद्र।।

जनता का दु:ख उसकी वेदना में फूट–फूट कर के उनके काव्य की अजस्त्र धारा बन कर बही।

मिथ्या आडंबरों के प्रति प्रतिक्रिया करना कबीर जी का जन्मजात गुण था ।

वे प्रत्येक तथ्य को आत्मा व विवेक की कसौटी परखते थे ,कबीर दास जी की वाणी पावन वाणी आज के समाज और उनकी विषमताओं के परिपेक्ष में उतनी ही खरी तेजोमय तथा उपयोगी सिद्ध होती है, जितनी के तब भी ।

समाज की अप्रियरीति को देखकर उसपर उन्होंने इतने तीखे प्रहार कीये है कि ढोंगी बाबाऔ ,ब्राह्मणौ मौलवियो के दिखावे की धज्ञियाँ उड़ गई ।

उनकी वाणी में तीखा एवं अनोखा व्यंग देखने को मिलता है ,जो की बौद्धिकता की कसौटी पर खरा उतरता है।

कबीर जी ने मानव के लिए सार्वाधिक मूल्यवान जीवन मूल्यों को माना है ,जो केवल शिक्षा से ही नहीं अपने अनुभव से आते हैं।

वे कहते हैं अनुभव की सच्ची शिक्षा है वही सच्चा शिक्षक है उन्होंने किसी विशेष व्यक्ति जाति वर्ग के लिए नहीं लिखा बल्कि संपूर्ण मानव जाति हेतु अपनी लेखनी चलाई, वे सच्चे मानवता मानवतावादी कवि संत थे।

(5) संत रैदास मानवतावादी मूल्यो की पुनर्स्थापना करने वाले रैदास जी ने लिखा है। रैदास जन्म के कारणे होत न कोई नीच, नर को नीच करै डारी है, ओछे करम की नीच, 'अर्थात व्यक्ति जन्म से नहीं बल्कि अपने कर्म से .नीच. होता है ।

महान संत, देशभक्त, समाज सुधारक, आध्यात्मिक गुरु भक्ति आंदोलन के

महत्वपूर्ण कवि रविदास जी आजीवन जातिय, लैगिक, धार्मिक, सामाजिक व सांप्रदायिक विदुपताओं के विरुद्ध अपने दोहो और पदों के माध्यम से लोगों में जागृति लाने का प्रयास करते रहे, ताकि समाज में मौजूद विभाजनकारी शक्तियों को अशक्त कर देश को एकजूट रखके एकसूत्र में पिरोया जा सके ।

उन्होंने अपनी कविताएं मूलत: ब्रजभाषा में लिखी किंतु उनमें अवधी,राजस्थानी खड़ी बोली एवं रेख़्ता यानी उर्दू फारसी के शब्दों का भी उपयोग किया गया है उनके लगभग 40 पद पवित्र धर्मग्रंथ गुरुग्रंथ साहिब में संकलित किए गए हैं ।

सांप्रदायिक सद्भाव एवं सामाजिक समरसता के आध्यात्मिक उपासक रविदास जी का संपूर्ण जीवन ही संघर्षो और चुनौतियों की महागाथा रहा है। उन्होंने जीवन और समाज के तमाम अंतर विरोधों के समानांतर समाधानों की एक फुलवारी लगाई जिसकी महक समाज में आज भी व्याप्त है। और सांप्रदायिक सद्भाव तथा सामाजिक समरसत्ता के उपासाकों को रोमांचित करती है ।

रविदास जी मधुर एवं भक्ति पूर्ण रचना करने के साथ–साथ भाव विभोर होकर गाते भी थे । स्वयं कबीर दास जी ने उन्हें संतन में रविदास कहकर मान्यता भी दी है। वे धार्मिक विवादों को सारहिन एवं निरर्थक मानते थे ।उन्होंने अभिमान को भक्ति मार्ग में बाधक बताया था।

कह रैदास तेरी भगति दूरि है ,भाग बड़ेसो पावै,
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।

(6) संत मीराबाई संत कवियित्री मीराबाई ने अपने भजनों के माध्यम से यह संदेश दिया है कि मनुष्य को जाति भेद हिंदू मुस्लिम के बीच भेदभाव नहीं करना चाहिए क्योंकि ईश्वर सर्वोच्च सर्व व्यापक है ।

वह कहती है कि है मनुष्य तुम धार्मिक भेदभाव को त्याग कर उसे पहचान लो। ईश्वर को जानने से पहले तुम स्वयं को पहचानो अर्थात आत्मज्ञान प्राप्त करो। मीराबाई की शिक्षा मुख्य रूप से भक्ति की शिक्षाओं पर केंद्रित थी, एक भक्ति

आंदोलन जिसने भगवान के साथ व्यक्तिगत और भावनात्मक संबंध पर जोर दिया। उनकी भक्ति और कविता जो कृष्ण के प्रति उनके प्रेम को व्यक्त करती है। भारत और दुनिया भर में कई लोगों को प्रेरित और प्रभावित करती है। मीराबाई जगत को देखकर रोती है, क्योंकि उन्हें संसार की असारता और माया का बोध होता है।

वह देखती है कि लोग सांसारिक मोह माया में फंसे हुए हैं और ईश्वर की भक्ति से दूर है । यह उन्हें दु:खी करता है और वह रो पड़ती है। मीराबाई तो कृष्ण प्रेम की दीवानी थी । वे अपने अंतर्मन की पीड़ा को लिखती है ।

हे री में तो प्रेम –दीवानी मेरो दरद न जानो कोय।
घायल की गति घायल जानो जो कोई घायल होय।
जौहरि की गति जौहरी जाणे, की जिन जौहर होय।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवन किस विध होय।
गगन मंडल पर सेज पिया की किस विध मिलणा होय।
दरद की मारी बन–बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोय।
मीरा के प्रभु पीर मिटेगी, जद बैद सांवरिया होय।

इस प्रकार मीरा की अध्यात्मिक भक्ति ने मानव जगत को ज्ञान प्रदान किया।

(7) संत जनाबाई : जिस समय पुरुष संतों का बोलबाला था उस समय जनाबाई अपने स्त्रीत्व पर गर्व करती है। और ''स्त्री जन्म म्हणुनिया न व्हावे उदास, की सीख देती है। इसी स्त्रीत्व के माध्यम से वात्सल्य से लेकर श्रृंगार तक के कई अनुभूतियों को जीवंतता प्रदान करती है। आत्मानुभवों की विशुद्ध अनुभूति जनाबाई की कविता की विशेषता रही है ।

सुंदर माझे जाते गं फिरते बहुत। ओव्यागाऊ कौतुकाने ये रे बा विठ्ठला।
तू येरे बा विठला ।
जीव शिव दोन्ही खुंटे गं प्रंपचाचे नेटे गे

लावूणी पांची वोटेंगे तू येरे बा विठ्ठला ।।1।।

(8) संत मुक्ताबाई संत ज्ञानेश्वर, सोपान देव ,निवृतिनाथ की बहन थी उन्होंने ताटीचे, अभंग और चांगदेव पापष्टी की रचना की। अपने ज्ञान योगी भाई ज्ञानेश्वर को कहती है

संत जेणे व्हावे ।
जग बोलणे सहावे।।1।।
तरीच अंगी थोरपण।
जया ना ही अभियान ।।2।।
थोरपण जेथे वसें।
तेथे भूतदया असे ।।3।।
रागे भरावे कवगाशी।
आपग ब्रह्म सर्वदेशी ।।4।।
ऐशी समदुष्टि करा।
ताटी उघडा ज्ञानेश्वरा।।5।।

संत मुक्ताबाई ने अपने भाई ज्ञानेश्वर जी को क्रोध संत महात्मा को शोभा नहीं देता। जिसमे ज्ञान बड़प्पण होता है, उसे अभिमान नहीं करना चाहिए। ज्ञानी विद्वान में भूतदया, करुणा का भाव होता है। हमें किसी से गुस्सा नहीं करना चाहिए ।

संत तो समदृष्टि वाले होते हैं। शांत होते हैं, ऐसा जब ज्ञानेश्वर एक बार गुस्सा करके दरवाजा बंद करके बैठ जाते है तब समझती है। उनकी यही सीख आज प्रासंगिक है।

(9) महात्मा गौतम बुद्ध : गौतम बुद्ध के अनुसार प्राणी अपने कर्मों का स्वयं स्वामी है। हमारे कर्म हमारे द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। यदि कोई शुभ कार्य करता है, तो परिणाम भी शुभ होते हैं। अतः मनुष्य के कर्म करने से पहले सोचना चाहिए।

महात्मा गौतम बुद्ध के आठ नियम अष्टांगिक मार्ग में आठ अभ्यास शामिल है – (1) सही दृष्टि (2) सही संकल्प (3) सही भाषण (4) सही आचरण (5) सही आजीवीका (6) सही प्रयास (7) सही स्मृति और (8) सही समाधि (ध्यान अवशोषण या मिलन, वैकल्पिक रूप से, समभावपूर्ण ध्यान जागरूकता) गौतम बुद्ध का कहना है कि इंसान को यह समझना चाहिए कि कोई भी दुख हमेशा नहीं रहता है उसको खत्म किया जा सकता है दुख निवारण का उपाय है उनका कहना है कि हर दुख को दूर करने का उपाय मौजूद होता है दुखों को दूर करने के लिए इंसान को भगवान बुद्ध के बताए गए सद् मार्ग यानी अष्टांगिक मार्ग को जानना चाहिए।

बुद्ध का उपदेश: दु:ख को कभी खुद पर हावी न होने दे, हर दुख से छुटकारा पाने का कोई ना कोई उपाय जरूर होता है। बुद्ध कहते हैं दु:खी होने से परेशानियां खत्म नहीं होती, हर इंसान को दु:ख से छुटकारा पाने के लिए उससे जुड़ी बातों पर विचार करना चाहिए ।

भगवान बुद्ध द्वारा दी गई सीख आज भी प्रासंगिक है। बुद्ध ने कहा है दु:ख के बारे में अच्छे से जान लेने के बाद ही सुख मिलता है। उन्होंने बताया है कि हर इंसान कभी ना कभी दु:खी होता ही है। हर इंसान को जान लेना चाहिए कि दु:ख का कारण क्या है? क्यों दुख आता है! हर तरह के दु:ख से छुटकारा पाया जा सकता है, और दु:ख को खत्म करने के क्या उपाय हैं इन बातों को जो इंसान समझ लेता है वो किसी भी हालत में परेशान नहीं होता। इसके लिए बुद्ध भगवान की सीख से मदद मिलती है ।

बुद्ध की बुद्ध की चार सिख –

(एक) दु:ख है, महात्मा बुद्ध की पहली सीख कहती है कि संसार में दु:ख है वे कहते हैं इस संसार में कोई भी प्राणी ऐसा नही है जिसे दु:ख ना हो ।

उनके मुताबिक दु:ख को एक सामान्य स्थिति समझना चाहिए, इसे खुद पर हावी नहीं होने देना चाहिए।

इसलिए हर इंसान को दु:खी होने पर चिंतित और परेशान नहीं होना चाहिए। इसके उलट खुद को खुश रखने की कोशिश करना चाहिए। (दो) दुख के कारण है:महात्मा बुद्ध ने अपनी दूसरी सीख में दु:ख के कारण का जिक्र किया है। बुद्ध का कहना है कि हर दु:ख की वजह तृष्ण यानी तेज तेज इच्छा है। इसलिए किसी भी चीज के लिए तृष्णा नहीं रखना चाहिए। यानि कहा जा सकता है कि किसी भी चीज या इंसान से उम्मीद नहीं रखनी चाहिए।

(तीन) दु:ख का निवारण है: महात्मा बुद्ध ने तीसरी सीख में बताया है कि किसी भी तरह का दु:ख हो तो उसको दूर किया जा सकता है ,उनका कहना है कि हर इंसान को यह समझना चाहिए कि कोई भी दु:ख हमेशा नहीं रहता, उसको खत्म किया जा सकता है।

(चार) दु:ख निवारण का उपाय : बुद्ध का कहना है कि हर दु:ख को दूर करने का उपाय मौजूद होता है निवारण के उपाय भी मौजूद है। दु:ख को दूर करने के लिए इंसान को भगवान बुद्ध के बताए गए सदमार्ग यानी अष्टांगिक मार्ग को जानना चाहिए। जिससे कभी दु:ख महसूस नहीं होगा।

गौतम बुद्ध के चार आर्य सत्य

(एक) सत्यवाद (Dharma) सत्य के अनुसार काम करना। सत्य की सेवा करना और सत्य को समझना।

(दो) संकल्प (Samadhi) संकल्प के स्वतंत्रता, स्वतंत्रता के समान सम्मान

और सम्मान के समान संकल्प ।

(तीन) संस्कार (sanskara) संस्कार के समान निर्देश, निर्देश के समान अनुशासन ,और अनुशासन के समान संस्कार ।

(चार) संगति (sangati) संगति के समान सम्मान, सम्मान के समान समझ और समझ के समान संगति। हमारे भगवान बुद्ध समदर्शी थे वे मिट्टी और सोने के पात्र को एक सा ही मानते थे ।

यह उनके शिष्य आनंद को उन्होंने एक सेठ से सोने का भिक्षा पात्र लेकर उसके पूछे प्रश्न का उत्तर देकर बता दिया था ।

अगर भगवान बुद्ध ना होते तो हमारी सनातन संपदा अधूरी रह जाती। हम आध्यात्मिकता के उस शिखर तक कभी नहीं पहुंच पाते, जिसकी वजह से हम विश्व गुरु कहलाए ।

बुद्ध के अंतिम उपदेश का एक प्रसिद्ध वाक्य है –

''आप्प दीपो'' भव (अपने दीपक स्वयं बनो)

इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वयं के ज्ञान और अनुभव से प्रकाश पानी की आवश्यकता है। किसी भी बाहरी सत्ता या शक्ति पर निर्भरता से व्यक्ति को मुक्ति नहीं मिल सकती है।

बुद्ध के अंतिम उपदेश का एक प्रेरणादायक संदेश है जो सभी लोगों के लिए प्रासंगिक है ये हमें बताते हैं कि हमें अपने स्वयं के जीवन के लिए जिम्मेदार होना चाहिए और अपने स्वयं के उद्धार के लिए प्रयास करना चाहिए ।

''सत्य और न्याय के मार्ग पर चलें''

दया और करुणा से दूसरों के साथ व्यवहार करें। अहिंसा का पालन करें।

उनकी सीख आज भी प्रासंगिक है।

(10) महावीर स्वामी : मानवीय सिद्धांतों को अपने अंदर समेटे हुए **''जियो और जीने दो''** का नारा जनमानस में प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रहा है ।

यह नारा जैन धर्म के 24 तीर्थंकर महावीर स्वामी की मानवीय सीखों का मूल है।

महावीर स्वामी द्वारा दिए गए इस नारे में छिपी सीख का अनुसरण आज भी सभी धर्म के लोग द्वारा बिना किसी भेदभाव की किया जाता है।

महावीर स्वामी के मुख्य उद्देश्य :

* **अहिंसा :** सभी साध्वियों के प्रति अहिंसा का पालन करना चाहिए।
* **सत्य :** सदैव सत्य बोलना चाहिए।
* **अस्तेय :** चोरी नहीं करना चाहिए।
* **ब्रह्मचर्य:** ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।
* **अपरिग्रह :** गैर–लग।

महावीर जी कहते हैं कि जो धर्मात्मा है, जिसके मन में सदा धर्म रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। भगवान महावीर ने अपने प्रवचनों में धर्म, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, क्षमा पर सबसे अधिक जोर दिया। त्याग और संयम, प्रेम और करूणा, शील और सदाचार उनके प्रवचनों का सार था। ऋषि, मुनि, साधु, संत जीवन में त्याग और तपस्या और आत्म साक्षात्कार के प्रतीक माने जाते हैं, जो मानवता के कल्याण के लिए समर्पित रहते हैं। ये सभी आत्मज्ञान और मोंक्ष खोज में लीन रहते हैं। इन महापुरुषों का जीवन, अनुशासन, संयम और साधना का प्रतीक होता है जिससे समाज को प्रेरणा मिलती है। महावीर स्वामी के सभी संदेश सर्वकालिक, सार्वभौमिक है, और रहेंगे। आज पूरे विश्व में युद्ध के कारण भीषण नरसंहार के दृश्य देखने सुनने को पढ़ने को मिल रहे हैं। यदि विश्व शांति चाहता है, जिसके लिए वह भारत की ओर देख रहा है। यदि विश्व शांति चाहता है, तो अहिंसा का पालन पहला कर्तव्य है,

प्राणी मात्र में प्रेम, दया सहानुभूति, परोपकार की भावना से जनहित संभव है। जनहित में ही विकास संभव है, भारत के वर्तमान इतिहास में महात्मा गांधी जैसे महानायक ने अहिंसा सिद्धांत की महत्ता अलौकिकता, लोकप्रियता को उद्घाटित कर ही दिखाया है। कुछ विद्वानों ने महावीर के सिद्धांतों पर विचार निम्न प्रकार है। बौद्ध भिक्षु प्रोफेसर श्री धर्मानंद जी :कौशांबी भगवान महावीर ने पूरे 12 वर्ष तक तप और त्याग के बाद अहिंसा का संदेश दिया। उस समय हिंसा का जोर था हर घर में यज्ञ होता था। उन्होंने यदि अहिंसा का संदेश ना दिया होता तो आज भारत में अहिंसा का नाम न लिया जाता।

डॉक्टर श्री राधाकृष्णन : यदि मानवता को विनाश से बचाना है और कल्याण के मार्ग पर चलना है तो भगवान महावीर के संदेश को और उनके बताए हुए मार्ग को ग्रहण किए बिना और कोई रास्ता नहीं। भगवान महावीर के मत नया प्रकाश दिखाते हैं, वे आजादी के हक में थे, सत्य को उत्तम मानते थे, त्याग पर जोर देते थे, तमाम जानवरों को दया करना जरूरी समझते थे, धर्म को परम सत्य का साधन बताया। श्री लाल बहादुर शास्त्री: रिश्वत, बेईमानी, अत्याचार नष्ट हो जाए, यदि हम भगवान महावीर की सुंदर और प्रभावशाली शिक्षाओं का पालन करें। हम दूसरों को बुरा कहे, और दूसरों के दोष देखने के बजाय अपने दोषों और कमजोरी को दूर कर ले तो सारा संसार खुद–बखुद सुधर जाए।

भगवान महावीर का संदेश: भविष्य की राह यदि भारत को फिर से भविष्य गुरु बनाना है तो हमें भगवान महावीर के शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारना होगा।

इच्छाओं पर संयम, अहिंसा, समता, आत्मनिर्भरता और मानसिक शांति के वे मूल सिद्धांत है, जो समाज को सशक्त और समृद्ध बना सकते हैं। भगवान महावीर का दर्शन केवल इतिहास का हिस्सा नहीं है, बल्कि यह आज और आने वाले कल के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है।

यदि हम उनके विचारो को गहराई से समझे और उन्हें अपने आचरण में शामिल करें तो एक शांतिपूर्ण समानतामूलक और आत्मनिर्भर समाज की स्थापना संभव

है। भगवान महावीर का संदेश शाश्वत सत्य है ,जो अतीत में भी मार्गदर्शन था ।वर्तमान में भी प्रकाश स्तंभ है, और भविष्य के लिए प्रेरणा स्त्रोत रहेगा।

(11) ऋषि कश्यप : जैसे सृष्टि के निर्माता ऋषि कश्यप हैं, और पौराणिक कथाओं के अनुसार कश्यप ऋषि उनकी पत्नियों से ही मानस पुत्रो का जन्म हुआ ।जिसके बाद में सृष्टि का सृजन हुआ। इसलिए महर्षि कश्यप सृष्टि के सृजक,या सृष्टि के सृजनकर्ता कहलाए। कश्यप ऋषि वैदिक ऋषि थे, उनकी गणना सप्तऋषि गणो में की जाती थी। ब्रह्मा जी ने समुद्र और धरती पर हर प्रकार के जीवों की उत्पत्ति की, इस काल में उन्होने अपने कई मानस पुत्रों को भी जन्म दिया। जिनमें एक मरीचि थे, कश्यप ऋषि मरीचि जी के विद्वान पुत्र थे। उनकी माता कला कर्दम ऋषि की बेटी व भगवान कपिल देव की बहन थी। अपने श्रेष्ठ गुणो प्रताप और तप के बल पर उनकी गिनती श्रेष्ठतम महान विभूतियां में होती थी। जब हम सृष्टि के विकास की बात करते हैं तो इसका अर्थ जीव जंतु या मानव की उत्पत्ति से होता है, पुराणों के अनुसार कश्यप महर्षि के वंशज की सृष्टि के प्रसार में सहायक हुए। कश्यप जी की 17 पत्नियाँ थी जिनके वंश से सृष्टि का विकास हुआ।

(12) ऋषि अत्री : एक वैदिक कृषि है जिन्हें अग्नि इंद्र और हिंदू धर्म के अन्य वैदिक देवताओं के लिए कई श्लोको की रचना करने का श्रेय दिया जाता है। ऋग्वेद के समूचे पांचवें मंडल को (पुस्तक 5 पांच) उनके सम्मान में अत्री का मंडल कहा जाता है। और इसमें 80 श्लोको को उनके और उनके वंशजों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। अत्री का उल्लेख विभिन्न शास्त्रों में मिलता है जिनमें से सबसे उल्लेखनीय ऋग्वेद में है, वह विभिन्न युगों से भी जुड़ा हुआ है उल्लेखनीय है, रामायण के दौरान त्रेता युग में जब उन्होंने और अनुसूया ने राम और उनकी पत्नी सीता को सलाह दी थी। इस जोड़ी को गंगा नदी को धरती पर लाने का भी श्रेय दिया जाता है, जिसका उल्लेख शिव पुराण में मिलता है। अत्री संहिता के बचे हुए हिस्से से पता चलता है कि पाठ में अन्य बातों के अलावा योग

और जीवन की नैतिकता पर भी चर्चा की गई है।

जैसे कि उपदेश :

आत्म संयम : यदि दूसरों के द्वारा भौतिक या आध्यात्मिक पीड़ा उत्पन्न की जाती है, और व्यक्ति नाराज नहीं होता है और बदला नहीं लेता है, तो इसे दम कहा जाता है, संयम कहा जाता है।

दान सीमित आय होने पर भी प्रतिदिन कुछ न कुछ दान कुछ सावधानी और उदारता पूर्वक दान करना चाहिए। इसे दान कहते हैं।

करूणा : मनुष्य को दूसरों के प्रति, अपने संबंधियों और मित्रों के प्रति, अपने से ईर्ष्या करने वालो के प्रति तथा अपने शत्रु के प्रति भी अपने जैसा ही व्यवहार करना चाहिए। इसे दया कहते हैं (अत्री संहिता, एम, एन, दत्त, मन्मथ नाथ दत्त द्वारा अनुवादित 1908)

(13) ऋषि भारद्वाज : ऋषि भारद्वाज ऋग्वेद के छठे मंडल के ऋषि के रूप में विख्यात है। चरक संहिता के अनुसार भारद्वाज ने इंद्र से आयुर्वेद और व्याकरण का ज्ञान पाया था। उन्हें ब्रह्मा, बृहस्पति, और इंद्र के बाद व्याकरण का सर्वोच्च चौथा प्रवक्ता माना गया है। महर्षि भृगु से उन्हें धर्मशास्त्र का उपदेश मिला था। महर्षि भारद्वाज ने दिया था विमान का ज्ञान, भगवान राम भी मानते थे उनका परामर्श, भारद्वाज को प्रयाग का प्रथम वासी माना जाता है। अर्थात इन्होंने ही प्रयाग को बसाया था। प्रयाग में इन्होंने धरती के सबसे बड़े गुरुकुल की स्थापना की और हजारों वर्षों तक विद्यादान करते रहे। भारद्वाज ने भगवान शिव के आशीर्वाद से प्रयाग के अधिष्ठाता भगवान माधव की परिक्रमा भी स्थापित की जो संसार की पहली परिक्रमा मानी जाती है। भारद्वाज ने विधान किया कि जो इस परिक्रमा को करेगा उसे पापों का क्षय वा पुण्य का उदय होगा। आज भी प्रयाग में इस परिक्रमा के बगैर अनुष्ठान व श्राद्ध आदि फलित नहीं माने जाते। उनके लिखे अनेक ग्रंथो में आयुर्वेद संहिता, भारद्वाज स्मृति, भारद्वाज संहिता,

राजशास्त्र, यत्र– सर्वस्व प्रमुख रूप से प्रतिष्ठित है।

(14) ऋषि विश्वामित्र : मर्यादा पुरुषोत्तम राम के कुल गुरु तो वशिष्ठ मुनि थे लेकिन उन्हें मानवता सदाचार और अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा देने वाले महर्षि विश्वामित्र थे। जो तप बल के कारण क्षत्रिय से ब्रह्म ऋषि बने ।

रचनाएं : विश्वामित्र जी को गायत्री मंत्र का दृष्टांत हुआ ।

ऋग्वेद के तीसरे मंडल में उपस्थित गायत्री मंत्र की रचना विश्वामित्र द्वारा की गई थी। विश्वामित्र वैदिक काल के विख्यात ऋषि (योगी) थे। ऋषि विश्वामित्र बड़े ही प्रतापी और तेजस्वी महापुरुष थे। ऋषि धर्म ग्रहण करने के पूर्व में बड़े पराक्रमी और प्रजा वत्सल नरेश कौशिक थे। प्रजापति के पुत्र कुश, कुश के पुत्र कुशनाभ और कुशनाभ, पुत्र के राजागाधि थे। विश्वामित्र जी इन्हीं गाधी के पुत्र थे। विश्वामित्र शब्द विश्व और मित्र से बना जिसका अर्थ है सबके साथ मेत्री अथवा प्रेम।

इन्हीं विश्वामित्र ने त्रिशंकु के लिए नए स्वर्ग की स्थापना की थी। उनकी तपस्या के बाद महर्षि वशिष्ठ ने इन्हें विश्वामित्र जी को ब्रह्मर्षि का मान सम्मान दिया क्योंकि तब तक विश्वामित्र का क्रोध अहंकार तपोबल से नष्ट हो चुका था ।

(15) गौतम ऋषि : गौतम ऋषि से न्याय और दूसरों की मदद करने की सीख मिलती है। उनसे हमें यह सीख मिलती है कि विभिन्न परिस्थितियों में भी हम ज्ञान से काम ले तो वह कार्य सफल होंगे। गौतम ऋषि से तप न्याय के सीख मिलती है। आज के युग में कोई कितनी भी निंदा बुराई करें हमें अपने कर्तव्य पर अडिग रहकर चलना चाहिए। हमारे समाज की कोई बुराई कर तो यह नहीं कि हमारे कर्तव्य को भूल जाएं हमारे तप को बंद कर दें, हमें हमारे काम नियमित न्यायपूर्ण तरीके से करते रहना चाहिए। छल कपट वाले तो उसे जमाने में भी थे और इस जमाने में भी रहेंगे। हमारे लक्ष्य को कार्य को बिगाड़ने वाले हजारों लोग मौजूद हैं लेकिन हम तटस्थ हैं। तो सफलता निश्चित है। न्याय सूत्र भारतीय दर्शन का

प्राचीन ग्रंथ है । इसके रचयिता गौतम ऋषि है। सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए आगे बढ़ना उनके आध्यात्म से हम सीख सकते हैं। गौतम ऋषि से द्वेष करने वाले ऋषियों ने उन पर गौ हत्या का गलत आरोप लगाया था। तब ऋषि द्वारा भगवान शिव की आराधना की गई। शिव प्रकट हुए और कहा जिन लोगों ने छल कपट से आप पर यह आरोप लगाए हैं ,उन्हें मैं दंड देना चाहता हूँ, पर ऋषि का समभाव देखे वह बोले उन्हीं ब्राह्मणों की वजह से आपके दर्शन हुए है। मेरा परम हित समझकर माफ कर दें। इतना विशाल हृदय उनके पास था। क्षमा भाव समभाव की शिक्षा भी हमें उनसे मिलती है। जीवन में अडिग रहने की सीख भी हमें गौतम ऋषि से मिलती है। आज के युग में गौतम ऋषि के विचार उनके न्यायसूत्र की सीख अति प्रासंगिक है। उन्होंने मनुष्य में मानवीय गुणो का बीजारोपण किया।

***

मानवता का उद्धार ही संतों का मकसद

संतों का सृष्टि पर अवतार धारण करने का मकसद मानवता का उद्धार करना है, जो वे अपने परोपकारी करमों से करते रहते हैं। इसके साथ ही स्वस्थ समाज का उत्थान, धर्म की नीति व रीति की स्वस्थ परम्पराओं को प्रोत्साहित करना उनका मकसद रहता है।

घर–घर में प्रेम–प्यार का प्रकाश हो, परमपिता परमात्मा की, राम–नाम की चर्चा हो, भक्ति–इबादत की चर्चा हो। संत–सतगुरु का यह भी एक मकसद रहता है कि सम्पूर्ण मानव समाज, ये पृथ्वी, आकाश–पाताल और दसों दिशाओं में सचखंड–सा स्थाई नजारा बने। संत–महापुरुष हमेशा इस बात पर भी जोर देते हैं कि हर इन्सान हक–हलाल, मेहनत की करके खाए, धर्म के कर्म हों, कहीं भी भ्रष्टाचार, हरामखोरी, रिश्वतखोरी, नशे आदि बुराइयां न हों, 'न कोई वैरी नहीं बेगाना' की भावना हर मानव–मन में पनपे और हमेशा बनी रहे, ताकि सब जगह खुशहाली हो, कभी कोई कमी किसी को भी न आए अर्थात् समाज की भलाई के लिए संत–महापुरुष सृष्टि पर आकर अपना पूरा जीवन लगा देते हैं। डेरा सच्चा सौदा के मौजूदा पूज्य गुरु संत डॉ. गुरमीत राम रहीम सिंह जी इन्सां का समस्त पवित्र जीवन ऐसी प्रतिभाओं की प्रत्यक्ष मिसाल है।

पूज्य गुरु जी 15 अगस्त 1967 को गांव श्री गुरुसर मोडिया जिला श्री गंगानगर (राजस्थान) के एक बहुत बड़े लैंडलॉर्ड पूजनीय बापू नम्बरदार मग्घर सिंह जी के घर अति पूजनीय माता नसीब कौर जी इन्सां की पवित्र कोख से ईलाही जोत के रूप में अवतरित हुए। पूजनीय परमपिता शाह सतनाम सिंह जी महाराज (डेरा सच्चा सौदा की दूसरी पातशाही) ने आप जी को 23 सितम्बर 1990 को डेरा सच्चा सौदा में गुरगद्दी पर बतौर तीसरे गुरु के रूप में विराजमान (गद्दीनशीन) किया।

आप जी ने पूजनीय साईं शाह मस्ताना जी महाराज और पूजनीय परमपिता शाह सतनाम सिंह जी महाराज के पावन वचनानुसार डेरा सच्चा सौदा की पाक–पवित्र शिक्षाओं को देश–विदेश में जन–जन तक पहुंचाया और ज्यों की त्यों पहुंचा भी रहे हैं। बेपरवाही वचनानुसार कि डेरा सच्चा सौदा दिन–दोगुनी, रात चौगुनी तरक्की करेगा व राम–नाम वाले, नेकी–भलाई करने वाले बढ़ेंगे।

बेपरवाही वचनों की सच्चाई आज पूरी दुनिया के सामने हैं। डेरा सच्चा सौदा के नाम–लेवा सत्संगी लगभग सात करोड़ (6 करोड़ 80 लाख) हैं, जो देश–विदेश के कोने–कोने में मौजूद हैं और वो अपने पूज्य गुरु जी की पावन प्रेरणाओं के अनुसार मानवता भलाई के 163 कार्यों को अमलीजामा पहनाए हुए हैं, बढ़–चढ़कर मानवता भलाई के कार्य कर रहे हैं। मानवता भलाई के क्षेत्र में डेरा सच्चा सौदा का नाम आज पूरे विश्व में जाना जाता है। खूनदान की कहीं भी जरूरत होती है, तो डेरा सच्चा सौदा के रक्तदाता एकदम उमड़ पड़ते हैं।

उद्देश्य अपने सतगुरु पूज्य पिता जी की प्रेरणा कि रक्त की कमी से किसी की जान न जाए। बेशक जिंदगी ईश्वर के हाथ है, लेकिन ये सेवादार अपने पूज्य गुरु जी के पावन वचनों पर डटकर फूल चढ़ाने को हर समय तैयार–बर–तैयार रहते हैं। सेवादारों के मानवता हित इस नि:स्वार्थ उत्साह को देखते हुए पूज्य गुरु जी ने अपने पवित्र मुखारबिंद से इन रक्तदाता सेवादारों को 'चलते–फिरते ट्रयू ब्लड पंप' के नाम से नवाजा है और यह भी किसी से छुपी हुई बात नहीं है कि रक्तदान के क्षेत्र में डेरा सच्चा सौदा के नाम तीन विश्व रिकॉर्ड हैं।

पर्यावरण संरक्षण में भी डेरा सच्चा सौदा का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इस क्षेत्र (पौधारोपण) में भी डेरा सच्चा सौदा का नाम तीन बार गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में दर्ज है। पूज्य गुरु जी की प्रेरणा कि 'भला करने वाले भलाई किए जा, बुराई के बदले भलाई किए जा।' चाहे कोई तुम्हें कुछ भी कहे, भलाई की राह पर बिना रोक–टोक के अपने–आपको, अपने कदमों को बढ़ाते जाना है। मानवता के मसीहा पूज्य गुरु संत डॉ. गुरमीत राम रहीम सिंह जी इन्सां जो पूरी

सृष्टि पर मानवता की अलख जगाए हुए हैं, उन्हीं की पावन शिक्षाओं पर चलना डेरा सच्चा सौदा का हर श्रद्धालु अपना धर्म व कर्म समझता है।

डेरा सच्चा सौदा की साध–संगत अपने पूज्य गुरु जी के पावन वचनों व उनकी पावन शिक्षाओं के प्रति तन–मन–धन से समर्पित है। पूज्य गुरु जी का उद्देश्य हमेशा मानवता का भला करना रहा है और इसलिए पूज्य गुरु जी हमेशा पूरी मानवता के भले के लिए परमपिता परमात्मा से दुआ करते रहते हैं। धर्मों का सत्कार, बिना किसी भेदभाव से हर प्राणी से निःस्वार्थ प्यार करना आदि पूज्य गुरु जी की पावन शिक्षाओं के प्रति साध–संगत तन–मन से हर समय समर्पित है।

– सच्ची शिक्षा से साभार

ईश्वर से मनुष्य का संबंध जोड़ते महान संत

वेदांत के ज्ञान और सनातन धर्म की बात आती है तो स्वामी विवेकानंद जी की ओर ध्यान स्वतः ही चला जाता है। भारतीय वेदांत दर्शन को अन्य देशों में पहुंचाने का श्रेय उन्हें ही जाता है

ईश्वर एक है, यह बात हम सदियों से सुनते आए हैं। प्रत्येक संत–महात्मा ने यही बात बताई है। फिर भी समाज में धर्म के नाम पर होने वाले युद्ध असमंजस की स्थिति पैदा करते हैं कि या तो प्रत्येक मनुष्य तक संतों की वाणी पहुंच नहीं पाई है या वे इसका सही अर्थ नहीं समझ पाए हैं। अफगानिस्तान के हालात और देश के भीतर जम्मू–कश्मीर के हालात यही दर्द बयां करते हैं कि मनुष्य के पास जब प्रेम करने के लिए ही पर्याप्त समय नहीं है तो वह नफरत के लिए समय कैसे निकाल लेता है। सदियों पहले संत कबीर ने भी कहा था कि हिंदू और मुसलमान एक–दूसरे से पता नहीं क्यों लड़ते रहते हैं। जबकि दोनों ने ही अनेक आडंबरों को अपनाए हुए हैं। अनपढ़ होते हुए भी कबीर ने धर्मांधता के गढ़ को ध्वस्त करने का प्रयास किया। समता, अहिंसा और प्रेम को उन्होंने लोगों तक फैलाने का भरसक प्रयास किया। भक्ति काल को रोशन करने में संत कबीर की तरह रैदास, सुंदर दास, शिरड़ी के साईं बाबा, धन्ना, गुरु नानक देव जैसे अनेक संतों का नाम आता है। इन सबने मनुष्य को सब जीवों से प्रेम करने की शिक्षा दी है। जहां तुलसीदास और महर्षि वाल्मीकि जी ने राम भक्ति से सबको सराबोर किया, वहीं सूरदास और मीराबाई ने कृष्ण भक्ति के रंग में संसार को रंग दिया। संत तुलसीदास और महर्षि वाल्मीकि जी ने श्री राम भक्ति को जन–जन तक पहुंचाया और मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का जीवन चरित्र प्रस्तुत करते हुए उनकी शिक्षाओं को जीवन में धारण करने की प्रेरणा दी। इसी तर्ज पर श्री कृष्ण भक्ति में सूरदास और मीराबाई प्रसिद्ध हैं।

कुछ विद्वानों का मानना है कि सूरदास जन्मांध होते हुए भी श्री कृष्ण का इतना सजीव चित्रण अपने काव्य में करते थे कि हर कोई श्री कृष्ण के प्रेम में मगन हो जाता था। कृष्ण दीवानी मीरा ने तो प्रेम का इतिहास रचते हुए श्री कृष्ण की याद में भरी सभा में जहर पी लिया था। फिर भी उन्हें कुछ नहीं हुआ था। समय बदलता रहा, लोगों की आवश्यकताएं भी बदलती रहीं, परंतु संतों ने ईश्वर के प्रति लोगों में आस्था बनाए रखी। राजकुमार सिद्धार्थ ने अपना राजपाट और सुख वैभव त्याग कर ईश्वर प्राप्ति के लिए संन्यासी जीवन धारण करना बेहतर समझा, जिसने उन्हें महात्मा बुद्ध बना दिया। इस महात्मा ने न केवल बौद्ध धर्म की स्थापना की, अपितु दुनिया को प्रत्येक जीव के प्रति दया भाव और प्रेम रखने की शिक्षा भी दी। उनकी शिक्षाओं पर जिसने भी अमल किया उसका जीवन सुखमय हो गया। सम्राट अशोक ने तो उनकी शिक्षाओं का अनुसरण करते हुए न केवल बौद्ध धर्म ही अपनाया, बल्कि जीवन भर कभी युद्ध न करने का भी प्रण लिया। इसके पश्चात उन्होंने सदा ही जनहित के कार्य किए और अपनी प्रजा का जीवन भी सुखमय बना दिया। कालांतर में बौद्ध धर्म का विस्तार चीन में भी होता गया। इस प्रकार भारत के संतों ने न केवल भारत, अपितु संपूर्ण विश्व को अपनी शिक्षाओं से धन्य कर दिया। भारत के संतों के नाम लिखे जाएं तो यह एक बहुत लंबी सूची बन जाएगी क्योंकि हमारे देश में महापुरुषों, वीरों, वीरांगनाओं और संतों की कमी नहीं है। इसी कड़ी में जब वेदों के ज्ञान और प्रचार की बात आती है तो स्वामी दयानंद सरस्वती जी का नाम स्मरण होता है। उन्होंने वेदों को ईश्वर द्वारा प्रदान ज्ञान न केवल माना, बल्कि सिद्ध भी किया। उन्होंने वेदों के ज्ञान द्वारा मानव–जाति का ईश्वर के साथ संबंध स्थापित करने में सफलता हासिल की। वह एक सफल विचारक, धार्मिक महापुरुष और देशभक्त व्यक्ति थे। वेदांत के ज्ञान और सनातन धर्म की बात आती है तो स्वामी विवेकानंद जी की ओर ध्यान स्वतः ही चला जाता है।

भारतीय वेदांत दर्शन को अमरीका तथा अन्य देशों में पहुंचाने का श्रेय उन्हें ही

जाता है। उन्होंने संपूर्ण विश्व को सनातन धर्म व विश्व बंधुत्व की भावना से ओतप्रोत किया। विश्व धर्म महासभा में जब उन्होंने भारत की ओर से शिकागो में प्रतिनिधित्व किया तो उनके ओजपूर्ण भाषण पर सर्वाधिक तालियां बजने का संस्मरण आज भी याद किया जाता है। वे अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस से काफी प्रभावित थे। साथ ही उन्होंने युवाओं को धर्म के मार्ग पर चलने के लिए सदा प्रोत्साहित किया। स्त्री सम्मान और समता के वह पक्षधर थे। उनके जन्मदिन को प्रतिवर्ष राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाया जाता है। उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस ने भी सभी धर्मों की एकता पर विशेष बल दिया था। ईश्वर प्राप्ति के लिए उन्होंने कठिन तपस्या और भक्ति की थी। सभी धर्मों को एकता के सूत्र में पिरोने वाले संतों में सिखों के पहले गुरु, गुरु नानक देव जी का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। उनके अनुयायियों में दो शिष्य बाला और मर्दाना अलग–अलग धर्मों के होते हुए भी साथ–साथ रहते थे। मानवता को सबसे बड़ा धर्म मानने वाले गुरु नानक देव जी ने बचपन में अपने पिताजी से व्यापार के लिए प्राप्त धन को साधुओं को भोजन कराने में यह कहकर खर्च कर दिया था कि यह मैंने सच्चा सौदा किया है। कहते हैं कि यह संतों की ही महिमा है, जो यह धरती आज भी टिकी हुई है वरना इस धरती पर पाप और अत्याचार इतना बढ़ गया है कि कभी भी प्रलय हो सकती है। संतों ने यह संदेश दिया है कि परमात्मा केवल व्यक्ति का सच्चा हृदय देखता है। वह जाति–पाति नहीं देखता। वह तो सबका परमपिता है। इसलिए हमें भी बुराई, द्वेष, घृणा आदि त्याग कर सबके प्रति प्रेमभाव रखना चाहिए।

वर्तमान समय के संत महात्मा भी मनुष्य को यही शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। फिर चाहे दक्षिण भारत के प्रसिद्ध सद्गुरु जी हों या उत्तर भारत के आर्ट ऑफ लिविंग संस्था के संस्थापक श्री श्री रविशंकर जी। जब हम सतगुरु के वचनों को सुनते हैं तो पाते हैं कि कैसे यह संत विश्व को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य कैसे करते हैं। आर्ट ऑफ लिविंग संस्था के संस्थापक श्री श्री रविशंकर जी का

सिद्धांत भी यही है कि संसार एक परिवार है। यह संस्था अनेक देशों में लोगों को जीने की कला सिखा रही है। यहां हिंसा रहित, वसुधैव कुटुंबकम की तर्ज पर मानवतावादी परिवेश तैयार किया जाता है। साथ ही लोगों को तनावमुक्त जीवन जीने की विधियां बताई जाती हैं। तनाव मुक्त जीवन जीने की बात आती है तो प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय की बात स्वतः याद आ जाती है। यहां शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात व्यक्ति स्वयं में बहुत परिवर्तन अनुभव करते हैं। आदि सनातन देवी–देवता धर्म की स्थापना करने वाली ऐसी संस्थाओं का मानना है कि संसार का परिवर्तन स्वयं के परिवर्तन से प्रारंभ होता है। हम बदलेंगे, जग बदलेगा। हम सुधरेंगे, जग सुधरेगा। एक नवंबर को विश्व संत दिवस पर सभी को शपथ लेनी चाहिए कि वे पूरे संसार को एक परिवार मानेंगे तथा सबके कल्याण के लिए कार्य करेंगे।

– यश गोरा

लेखक कांगड़ा से हैं

दिव्य हिमाचल से साभार लिया

सप्तम अध्याय

संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि
सभी में मानवता के गुण
इनके साहित्य ग्रंथो की प्रासंगिकता।

संत, महात्मा, ऋषि, मुनि, महर्षि सभी में मानवता के गुण उनके साहित्य की प्रासंगिकता

भारत में प्राचीन समय से ही संत महात्मा, ऋषि, मुनियों का विशेष महत्व रहा है, क्योंकि ये समाज के पथ प्रदर्शक माने जाते थे।

ऋषि, मुनि अपने ज्ञान और तप के बल पर समाज कल्याण का कार्य करते थे, और लोगों को समस्याओं से मुक्ति दिलाते थे।

आज भी जंगल–तीर्थस्थल और पहाड़ों गिरी, कंदराओं में कई साधु संत देखने को मिल जाते हैं ।

लेकिन क्या हम जानते हैं कि संत, महात्मा, मुनि, ऋषि, महर्षि आदि या सब अलग–अलग होते हैं। नहीं! ज्यादातर लोग इनका अर्थ एक ही समझते हैं, पर ऐसा नहीं हैं देखते ऋषि, महर्षि साधु, संत, मुनि महात्मा में क्या अंतर है ? और उनके बारे में क्या मान्यता हैं।

ऋषि : वैदिक संस्कृत भाषा का शब्द है ।वैदिक ऋचाओं के रचयिताओ को ही ऋषि का दर्जा प्राप्त है। ऋषि को सेकड़ो सालों के तप या ध्यान के कारण सीखने और समझने के उच्च स्तर पर माना जाता है। वैदिक कालीन सभी ऋषि गृहस्थ आश्रम से आते थे ।

ऋषि पर किसी तरह का क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या आदि की कोई रोक–टोक नहीं है और ना ही किसी तरह का संयम का उल्लेख मिलता है।

ऋषि अपने योग के माध्यम से परमात्मा को प्राप्त हो जाते थे, और अपने सभी शिष्यों को आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, वे भौतिक पदार्थ के साथ–साथ उसके पीछे छिपी ऊर्जा को भी देखने में सक्षम थे ।हमारे पुराणों से सप्त ऋषि का उल्लेख मिलता है, जो केतु, पुलह, पुलस्य, अत्री, अंगिरा, वशिष्ठ तथा भृगु है ।

महर्षि : ज्ञान और तप की उच्चतम सीमा पर पहुंचने वाले व्यक्ति को महर्षि कहा

जाता है ।इनसे ऊपर केवल ब्रह्मर्षि माने जाते हैं। हम सभी में तीन प्रकार के चक्षु होते हैं। वह ज्ञानचक्षु दिव्यचक्षु और परमचक्षु है जिसका ज्ञान चक्षु जागृत हो जाता है उसे ऋषि कहते हैं। जिसका दिव्यचक्षु जागृत हो जाता है उसे महर्षि कहते हैं, और जिसका परमचक्षु जागृत हो जाता है उसे ब्रह्मर्षि कहते हैं ।

अंतिम महर्षि दयानंद सरस्वती हुए थे, जिन्होंने मूल मंत्र को समझा और उनकी व्याख्या की इसके बाद आज तक कोई व्यक्ति महर्षि नहीं हुआ। महर्षि मोह, माया से विरक्त होते हैं, और परमात्मा को समर्पित होते हैं।

संत : संत शब्द संस्कृत के एक शब्द से शांत से बिगड़ कर और संतुलन से बना है। संत उस व्यक्ति को कहते हैं जो सत्य का आचरण करता है और आत्मज्ञानी होता है। जैसे संत कबीरदास, संत तुलसीदास, संत रविदास। ईश्वर के भक्त और धार्मिक पुरुष को भी संत कहते हैं बहुत से साधु ,महात्मा, संत नहीं बन सकते क्योंकि घर को परिवार त्यागकर मोक्ष की प्राप्ति के लिए चले जाते हैं। इसका अर्थ है कि वह अति पर जी रहे हैं, जो व्यक्ति संसार और आध्यात्म के बीच संतुलन बना लेता है ।संत के अंदर सहजता शांत स्वभाव में ही बसती है। संत होना गुण भी है और योग्यता भी।

मुनि : मुनि शब्द का अर्थ होता है मौन अर्थात शांति यानी जो मुनि होते हैं, वह बहुत कम बोलते हैं। मुनि मौन रखने की शपथ लेते हैं, और वेदों और ग्रंथो का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो ऋषि साधना प्राप्त करते थे और मौन रहते थे उनको मुनि का दर्जा प्राप्त होता था। जो ईश्वर का जाप करते थे और नारायण का ध्यान करते थे ,जैसे कि नारद मुनि। मुनि मंत्रों को जपते हैं और अपने ज्ञान से एक व्यापक भंडार की उत्पत्ति करते हैं, मुनि शास्त्रों की रचना करते हैं, और समाज के कल्याण के लिए रास्ता दिखाते हैं। मौन साधना के साथ–साथ जो व्यक्ति एक बार भोजन करता हो और 28 गुणो से युक्त हो वह व्यक्ति मुनि कहलाता था।

मुनि शब्द मौन से आया है, जिसका अर्थ है चुप रहना या शांत होना, मुनि बाहरी दुनिया से दूर रहकर ध्यान और तपस्या में लीन रहते हैं ।

वे आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास करते हैं, वे ज्ञान को अपने भीतर समाहित करते हैं और दूसरों को शिक्षा देते हैं। मुनि अपना जीवन आत्मनिरीक्षण, स्वाध्याय और ध्यान में बिताते हैं ।वे मौन से अपने मन को नियंत्रित करते हैं और परमात्मा के साथ एकात्मता का अनुभव करते हैं। मुनि का जीवन अन्य ऋषियों या संतो की अपेक्षा अधिक मौन और ध्यानमय होता है, उनके लिए आत्मानुभव और आत्म संयम ही सर्वोपरि होता है।

साधु : साधना करने वाले व्यक्ति को साधु कहा जाता है। साधु होने के लिए विद्वान होने की जरूरत नहीं है, क्योंकि साधना कोई भी कर सकता है। प्राचीन समय में कई व्यक्ति समाज से हटकर या समाज में रहकर किसी विषय की साधना करते थे और उससे विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करते थे। कई बार अच्छे और बुरे व्यक्ति में फर्क करने के लिए भी साधु शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसका कारण यह है की साधना से व्यक्ति सीधा, सरल और सकारात्मक सोच रखने वाला हो जाता है। साथ ही वह लोगों की मदद करने के लिए हमेशा आगे रहता है। साधु का संस्कृत में अर्थ है सज्जन व्यक्ति और इसका एक अर्थ यह भी छः(6) विकार यानी काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मत्सर का त्याग कर देता हैं जो इन सब का त्याग कर देता है, और उसे साधु की उपाधि दी जाती है। जो लोग नैष्ठिक, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए आध्यात्मिक जीवन बिताते हैं उन्हें मुनि कहा जाता है।

जो स्वयं को साध कर यम, नियम का पालन करते हुए साधना करते हैं उन्हें साधु कहा जाता है। जिसने संसार के समस्त नाते तोड़कर तन, मन, धन से भगवान को समर्पित कर दिया जिसका भगवान के सिवा कुछ भी ना हो संत कहलाता है।

मुनि का अर्थ निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट होता है:

दु:खेवनुद्विग्नमन:सुखेषु विगतस्पृह:।
वीतराग भयक्रोध:स्थितधीमुर्निरूच्यते।।56।।

जो त्रय तापो के होने पर भी मन में विचलित नहीं होता अथवा सुख में प्रसन्न नहीं होता और जो आसक्ति, भय, क्रोध से मुक्त है, वह स्थिर है मन वाला मुनि कहलाता है। (साङ्.रव्ययोग:श्रीमदभागवतगीता.) जो ऋचाओं के जनक हो जो मनन करता हो जो मुनि, जो सरल हो वह साधु और संत में स्थित हो वह संत। *लघु सिद्धांत कौमुदी में साधु का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि ''साध्नोति परकार्यमिति साधु'' अर्थात जो दूसरे का कार्य करें वह साधु है,जिसने अपने (6)छ:विकार काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, और मत्सर का त्याग कर दिया हो साधु कहलाता है, साधु सरल स्वभाव का होता है उत्तम होता है।

ऋषि – ''ऋषि तु मंत्र द्रष्टाशः न तु कर्तार''

अर्थात ऋषि मंत्र को देखने वाले हैं न कि उस मंत्र की रचना करने वाले। ऋषि वो होते हैं, जिन्होंने आठो सिद्धि तथा नो निधि को प्राप्त कर लिए होते हैं, जिनमें मृत्यु का भय लेशमात्र भी नहीं होता है, लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि को अपने, नियंत्रण में रखते हैं। समाधि लेकर अपने प्राण को शरीर से अलग कर सकते हैं, मानव शरीर को दुर्बल बनाने वाली इंद्रियों के फेर में नहीं पड़ते है, ये आश्रम के सभी सदस्यों से श्रेष्ठ होते हैं। वे सच्चे ऋषि कहलाते हैं।

ऋषि दृष्टा को कहते हैं, जिसने कुछ प्रत्यक्षीकरण किया हो, जिसने कुछ गुढ़ रहस्यों का साक्षात्कार किया हो।

उदाहरण के तौर पर जैसे गायत्री मंत्र का श्री विश्वामित्र जी ने साक्षात्कार किया था। यानी उन्हें समाधि की अवस्था में इस मंत्र का साक्षात्कार हुआ था। इसलिए यह गायत्री मंत्र के ऋषि कहलाये। ऋषि धुलिशर, ऋषि भारद्वाज, ऋषि दुर्वासा ऋषि वाल्मीकि इत्यादि।

ऋषियों को महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि आदि नाम से जाना जाता है।

* ऋषि वशिष्ठ, वात्सायन, वामदेव, वाल्मिकी, विश्रवा, विश्वामित्र, वेदव्यास, वैशम्पयन, (सात महान ऋषि) वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्व, भारद्वाज, अत्री, वामदेव

और शौनक ।

✻✻ ऋषि मुनि सात प्रकार के होते हैं–(एक) ब्रह्मर्षि (दो) देवर्षि (तीन) महर्षि (चार) परमर्षि (पांच) कण्डर्षि (छ:) श्रुतर्षि (सात) राजर्षि.

ऋषि मुनियों यों का परिचय क्रमांक :

क्रमांक 1 ऋषियों के नाम ऋषि / मुनियो का परिचय

1 (एक) अष्टावक्र : 1,अष्टावक्र अर्थात आठ जगहों से टेढ़ा, कहा जाता है कि ऋषि अष्टावक्र का शरीर टेढ़ा था।

2, 'अष्टावक्र गीता 'के लेखक अष्टावक्र जी हैं। जो कि अद्वैत वेदांत का महत्व ग्रंथ है।

2 (दो) ऋषि आत्रेय 1, ऋषि आत्रेय तक्षशिला गांधार के निवासी थे ।

2,ऋषि आत्रेय ऋषि अत्री के वंशज हैं। 3,ऋषि आत्रेय आयुर्वेद के विद्वान कहे जाते हैं ।

3 (तीन) परशुराम : परशुराम जी का जन्म त्रेता युग में हुआ था। 2,परशुराम जी को भगवान विष्णु का 19 अवतार माना जाता है। 3, परशुराम जी का जन्म मध्य प्रदेश के इंदौर जिले में हुआ था ।

4 (चार) कणाद : कणाद महान ऋषियों में से एक है ।जिनका जन्म ?

5 (पाँच) कपिल : कपिल मुनि को साख्यशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में माना जाता है। 2,कपिल मुनि का उल्लेख पुराण व महाभारत में देखने को मिलता है ।

6 (छ:) कश्यप : कश्यप ऋषि वैदिक ऋषियों में से एक है।

7 (सात) कृपाचार्य : कृपाचार्य मुनि कौरव पांडवों के गुरू थे। एवं सात चिरंजीवियों में से एक है ।

8(आठ) दधीचि : महर्षि दाधीच वैदिक ऋषियों में से एक है। मान्यता है कि उनकी अस्थि से ही इंद्रदेव ने वृत्रासुर का संहार किया था।

9(नो) भारद्वाज ऋषि : महर्षि भारद्वाज के पिता का नाम बृहस्पति वह माता का नाम ममता था। 2,महर्षि भारद्वाज ने आयुर्वेद का ज्ञान इंद्रदेव से पाया था। 3, महर्षि भारद्वाज ने आयुर्वेद संहिता, धनुर्वेद, व्याकरण, राजनीति शास्त्र, यंत्र सर्वस्य (वैमानिक शास्त्र) अर्थशास्त्र, पुराण, आदि अन्य ग्रंथो के रचयिता है। 4, महर्षि भारद्वाज को प्रयाग का प्रथम निवासी माना जाता है अर्थात प्रयाग की स्थापना महर्षि भारद्वाज ने किया था जो कि अब प्रयागराज (इलाहाबाद) के नाम से जाना जाता है।

10 (दस) महर्षि वशिष्ठ :1, महर्षि वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र व त्रिकालदार्शी ऋषि है। 2, महर्षि वशिष्ठ सप्तऋषि अर्थात सात ऋषियों में से एक थे। 3, महर्षि वशिष्ठ की पत्नी का नाम अरुंधति है ।

11(ग्यारह) वात्सायन : 1, मुनि वात्सायन का वास्तविक नाम मलंग वात्स्यायन था ।जो की एक दार्शनिक थे। महर्षि वात्सायन ने कामसूत्र व न्यायसूत्र भाष्य की रचना की है।

12 (बारह) महर्षि वाल्मिकि : 1, महर्षि वाल्मीकि जी ने रामायण की रचना की है जो कि संस्कृत भाषा में लिखा गया था ।

13 (तेरह) मुनि विश्वामित्र : 1, मुनि विश्वामित्र वैदिक काल के विख्यात ऋषि व योगी है ।

14 (चौदह) महर्षि शुक्रदेव :1,महर्षि शुक्रदेव मुनि वेदव्यास के पुत्र हैं।

15(पन्द्रह) वेदव्यास :1,वेदव्यास जी का वास्तविक नाम महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास है।2,महर्षि वेदव्यास जी ने महाभारत ग्रंथ रचना की थी। 3,महर्षि वेदव्यास के पुत्र का नाम महर्षि सुकरात शुक्रदेव है ।

16 (सोलह) विश्रवा : 1,महर्षि विश्रवा के पिता पुलस्त्य व माता हविर्भवा था।

17 (सत्रह) शुक्राचार्य : 1, असुराचार्य जो की शुक्राचार्य के नाम से जाने जाते हैं। 2, शुक्राचार्य के पिता का नाम भृगु ऋषि वमाता का नाम दिव्या था। 3,पुराणो के अनुसार शुक्राचार्य असुरों के गुरु माने जाते हैं।

भारत के प्रसिद्ध ऋषि फेमस ऋषि ऑफ इंडिया :

1 अष्टावक्र 2 आत्रेय 3 ऋषि श्रृंग 4 कणाद 5 कपिल 6 कृपाचार्य 7 कश्यप 8 दधीचि 9 परशुराम 10 ऋषि भारद्वाज 11 महर्षि गौतम 12 वशिष्ठ 13 वात्सायन 14 वामदेव 15 वाल्मीकि 16 विश्रवा 17 विश्वामित्र 18 वेदव्यास 19 शुकदेव 20 शुक्राचार्य

श्रेणी : ऋषि–मुनि में केवल निम्नलिखित श्रेणी है।

स–सप्तार्षि(4.पृ)

''ऋषि मुनि'' श्रेणी में पृष्ठ

इस श्रेणी में निम्नलिखित 63 पृष्ठ हैं, कुल पृष्ठ 63

अ – अंगिरा, अक्षपाद गौतम, अगस्त्य, अग्निवेश, अजातशत्रु काश्य, अत्रि, अष्टावक्र

आ – आत्रेय, आपस्तम्ब, आस्तिक (ऋषि),

उ – उद्दालक

ऋ – ऋषि, साँचा:ऋषि, ऋष्यशृंग

ऐ – ऐतरेय ऋषि

क – कणाद, कण्व, कपिल, कात्यायन (गोमिलपुत्र), कात्यायन (वररुचि), कात्यायन (विश्वामित्रवंशीय), अन्य कात्यायन, कृपाचार्य

ग – गर्ग, गृत्समद, गोमिला, गौड़पाद

च – च्यवन

ज – जमदग्नि ऋषि, जुह्नु, जैमिनि

द – दत्तात्रेय, दधीचि, देवल ऋषि

ध – धौम्य

प – परशुराम, पराशर (कृषि पराशर के रचयिता), पराशर ऋषि, पुलस्त्य

भ – भारतीय नैयायिक, भारद्वाज ऋषि, भारुचि, भृगु

म – महर्षि गौतम, मैत्रायण

य – याज्ञवल्क्य

र – रैक्व

ल – लोमश

व – वसिष्ठ, वात्स्यायन, वामदेव, वाल्मीकि, विश्रवा, विश्वामित्र, वेदव्यास, वैशम्पायन

श – शरभंग, शुकदेव, शुक्राचार्य

स – सत्यकाम जाबाल, सुतीक्ष्ण, सुमन्तुमुनि

ह – हिरण्यरोम

संदर्भ – विकिपिडीया से साभार लिया है।

***

जानिए, कितने प्रकार के होते हैं ऋषि-मुनि और क्या है उनका रहस्य?

शास्त्रों के मुताबिक, ऋषि 21 प्रकार के होते हैं. चलिए जानते हैं इन 21 ऋषियों के बारे में :-

- **वैखानस-** ऋषियों का यह समूह ब्रह्मा जी के नख से उत्पन्न हुआ था
- **वालखिल्य-** ऋषियों का यह समूह ब्रह्मा जी के रोम से प्रकट हुआ था
- **संप्रक्षाल-** ऋषियों का यह समूह भोजन के बाद बर्तन धो-पोछकर रख देते है, दूसरे समय के लिए कुछ नहीं बचाते हैं.
- **मरीचिप**- सूर्य और चन्द्र की किरणों का पान करके रहते हैं.
- **बहुसंख्यक अश्म्कुट**- कच्चे अन्न को पत्थर से कूटकर खाते हैं.
- **पत्राहार-** मात्र पत्तों का आहार करते हैं.
- **दंतोलूखली-** दांतों से ही ऊखल का काम करते हैं.
- **उन्मज्ज्क-** कंठ तक पानी में डूब कर तपस्या करते हैं.
- **गात्रशय्य-** शरीर से ही शय्या का काम लेते हैं, भुजाओं पर सिर रख कर सोते हैं.
- **अशय्य-** शय्या के साधनों से रहित, सोने के लिए नीचे कुछ भी नहीं बिछाते हैं.
- **अनवकाशिक-** निरंतर सत्कर्म में लगे रहते हैं और ये कभी छुट्टी नहीं लेते हैं. सामाजिक परिवर्तन और विकास करते हैं.
- **सलिलाहार-** जल पीकर रहते हैं.
- **वायुभक्ष-** हवा पीकर रहते हैं.

- **आकाश निलय–** खुले मैदान में रहते हैं, बारिश होने पर वृक्ष के नीचे पनाह ले लेते हैं.
- **स्थनिडन्लाशाय–** ये ऋषि वेदी पर सोने वाले होते हैं.
- **उध्र्वासी–** ये ऋषि पर्वत,शिखर या ऊंचे स्थानों पर रहने वाले होते हैं.
- **दांत–** ये ऋषि मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले होते हैं.
- **आद्रपटवासा–** ऋषियों के ये समूह हमेशा भीगे कपड़े पहनता है.
- **सजप–** ऋषियों के ये समूह हमेशा और निरंतर जप करते रहते हैं.
- **तपोनिष्ठ–** ऋषियों के ये समूह हमेशा तपस्या या ईश्वर के विचारों में स्थित रहने वाले होते हैं.
- **प्रशिक्षक–** 21वें ऋषि वे होते हैं जो आश्रम बनाकर रहते हैं और आश्रम में प्रशिक्षण देते हैं.

साभार – पवन सिन्हा गुरुजी का लेख, एबीपी न्यूज़, वेब डेस्क से लिया।

***

भारत के संत महात्मा उनके कार्य

हम बचपन से सुनते आये हैं कि जब–जब धरती पर अत्याचार, अन्याय बढा तब तब भगवान ने किसी न किसी रूप में जन्म लिया और बुराइयों का अंत किया। ठीक इसी तरह संत महात्माओं ने भी समय समय पर जन्म लिया ,और अपने आचरण ज्ञान और परमार्थ से लोगों का कल्याण किया। समाज में मानवता का संदेश दिया। सही सत्य की राह पर चलने की सीख दी। अपनी ग्रंथ संपदा साहित्य द्वारा समाज को सुधारने का कार्य किया –

1. महात्मा बुद्ध – ईसा से 600 वर्ष पूर्व कपिल वस्तु में शाक्य राजा शुद्धोधन के यहां अवतरित हुए। शीघ्र ही वैराग्य लेकर घर से निकल गए। गया में पीपल के वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ। बौद्ध धर्म की स्थापना की।

2. ऋषभ देव – नाभिराय तथा मेरूदेवी के पुत्र। जैन धर्म के 24 तीर्थकरों में से प्रथम।

3. महावीर स्वामी – जैन धर्म के 24 वें तथा अन्तिम तीर्थकर। जन्म 599 ई. पूर्व कुन्डग्राम या कुन्डलपुर में राजा सिद्धार्थ एवं त्रिशला देवी के घर हुआ। 527–28 ई. पूर्व पावापुरी नामक स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया।

4. अश्वघोष – सम्राट कनिष्क के समय प्रसिद्ध विद्वान, दार्शनिक एवं कवि। गीतों के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार किया। बुद्धचरितम के लेखक।

5. नागार्जुन – माध्यमिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं महान दार्शनिक। बुद्ध के मध्य मार्ग को अपनाने के कारण माध्यमिक अथवा शून्यवादी कहा जाता है।

6. वसु बन्धु – चौथी शताब्दी में, बौद्ध धर्म के दार्शनिक सम्प्रदायों के संस्थापकों में सर्वोपरि नाम। अपने काल में ये द्वितीय बुद्ध कहलाते थे।

7. शंकराचार्य – मलाबार के कालडि ग्राम में शिवगुरू तथा आर्यम्बा के घर सन्

788 ई. में पैदा हुए। संन्यासी गुरू गोविन्द पाद से दीक्षा ली। भारत के चारों कोनों में, पूर्व में जगन्नाथ, पुरी, पश्चिम में द्वारिका, दक्षिण में श्रृंगेरी तथा उत्तर में बद्रीनाथ में चार मठ स्थापित किए। महान विचारक और ज्ञानी जिन्होंने पूरे भारत में ज्ञान और भक्ति का प्रसार–प्रचार किया। अद्वैतवाद के प्रवर्तक। 32 वर्ष की अल्पायु में इहलीला समाप्त हुई।

8. रामानुजाचार्य – 10वीं शताब्दी के महान संत जिन्होंने द्वैतवाद (विशिष्ट) दर्शन का प्रचार–प्रसार किया। इन्होंने सगुण ईश्वर की पूजा का उपदेश दिया। ये दक्षिण भारतीय थे। इनके पिता का नाम केशव भट्ट था।

9. मध्यवाचार्य – 13वीं शताब्दी के कर्नाटक के उडूपी ग्राम में नारायण भट्ट के यहां जन्म। इन्होंने द्वैतवाद दर्शन का प्रचार–प्रसार किया।

10. रामानन्द – जो कार्य रामानुज ने दक्षिण भारत में किया वहीं, उत्तर भारत में रामानन्द ने किया। वैष्णव भक्तों में शिरोमणी। इनके शिष्यों में सभी धर्म व जाति के लोग थे कबीर उन में से एक थे।

11. चैतन्य महाप्रभु – 14वीं शताब्दी में राधाकृष्ण के महान भक्त। सभी जाति के व्यक्तियों को शिष्य बनाया। इन्होंने कीर्तन परिपाटी का आरंभ किया। बंगाल इनका मुख्य कार्य क्षेत्र था। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के संस्थापक।

12. कबीर – 14वीं शताब्दी में रामानन्द के प्रमुख शिष्यों में एक। जुलाहें का काम करते थे। हिंदु–मुसलमानों के बीच समन्वय का प्रयास किया। दोनों ही धर्मों के पाखंडों की आलोचना की। इनकी साखियां प्रसिद्ध हैं, ये निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे।

13. गुरू नानक – सिख धर्म के संस्थापक एवं प्रथम गुरू। पंजाब के तलवंडी ग्राम में कालू राम मेहता के घर 1469 में जन्म लिया। इन्होंने वेदान्त का ज्ञान लोक भाषा में प्रस्तुत किया। 1539 में स्वर्ग सिधारे।

14. मीरा बाई – 1498 मे मेड़ता में जन्म लिया। मेवाड़ के राणा सांगा की पुत्रवधु कृष्ण की महान भक्त। भाक्ति के विश्वास में हँसते–हँसते विष का प्याला पी लिया। 1546 में स्वर्गवासीं हुई।

15. तुलसी दास – 16वीं शताब्दी के लोकमान्य राम भक्त महान कवि। इन्होंने ''रामचरित मानस'' की रचना की। मुस्लिम आक्रान्त हताश जनों को मनोबल प्रदान किया। संस्कृत के विद्वान होते हुए भी लोक–भाषा में रचनाएं की।

16. संत तुकाराम – 17वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में जन्में वैष्णव संत तुकाराम विठ्ठल भक्त जिनके हजारों काव्य पद अभंग के नाम से प्रसिद्ध है।

17. रविदास – 16वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध संत, चर्मकार परिवार में जन्में थे। स्वामी रामानंद के अनुयायी थे। प्रसिद्ध कृष्ण भक्त मीराबाई ने भी इनका सान्निध्य ग्रहण किया।

18. बल्लभाचार्य – 15वीं शताब्दी में आन्ध्र के लक्ष्मण भट्ट के पुत्र। कृष्ण भक्त, पुष्टिमार्गी, वैष्णव आचार्य, काशी में पढ़े। कुछ समय वृन्दावन में रहे। इनका मत ''शुद्धाद्वैत'' कहलाता है। जिसके अनुसार ब्रह्म ही स्वेच्छा से जगत रूप बन जाते हैं।

19. गोरखनाथ – मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्य, महान हठयोगी अपने चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध हैं। भारत के अनेक भागों में इनके मठ हैं, जहां इनकी पूजा होती है।

20. झूले लाल – 10वीं शताब्दी में सिंध प्रान्त में जन्में पूज्यनीय पुरूष, वरूण देवता के अवतार माने जाते हैं। इन्होंने मुसलमान नवाब द्वारा सारी प्रजा का बलात् सामूहिक धर्मान्तरण किए जाने की दुष्ट योजना को विफल कर दिया। सिंधियों के महान संतों में इनकी गणना होती हैं।

21. तिरूवल्लूवर – ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में जन्में, बुनकर व्यवसायी, तमिल संत, जिनके सुभाषित ''तिरूक्कुरल'' ग्रन्थ में संग्रहीत हैं जो तमिल साहित्य का

सम्मनित ग्रन्थ है।

22. कम्ब – एक हजार वर्ष पूर्व तमिलनाडू में जन्में प्रसिद्ध रामभक्त कवि जिन्होंने तमिल में ''कम्ब रामायण'' लिखकर दक्षिण भारत में राम–कथा का प्रसार किया।

23. बसवेश्वर – 11वीं शताब्दी में हुए कर्नाटक के शैव संत जिन्होंने कर्नाटक एवं आंध्र में शैव सम्प्रदाय की स्थापना की।

24. नरसी मेहता – 15वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कृष्ण भक्त संत, जो जूनागढ़ (गुजरात) के निवासी थे। प्रसिद्ध भजन 'वैष्णवजन तो तैने कहिए, जो पिर पराई जाणे रें' इनकी ही रचना है।

25. शंकर देव – 15वीं शताब्दी में कामरूप (असम) मे जन्में वैष्णव संत जिन्होंने समाज को धार्मिक अधः पतन से उबारने के लिए कृष्ण भक्ति से संबन्धित अनेक ग्रन्थ रचे और भगवत धर्म का प्रचार किया। सम्पूर्ण असम में इन्होंने सर्वाधिकार की व्यवस्था की तथा नामघर स्थापित किए।

26. सायणाचार्य और विद्यारण्य – 14वीं शताब्दी के दो विद्या– बुद्धि निधान, धर्म एवं राजनीति मे निपुण भाई। सायणाचार्य ने चारों वेदों पर भाष्य लिखे और विद्यारण्य ने वेदान्त दर्शन ग्रंथ। इन्होंने हरिहर तथा बुक्का राव नाम के दो वीर क्षत्रिय भाइयों का मार्ग दर्शन कर धर्म रक्षा के लिए, विजय नगर राज्य की स्थापना कराई तथा चाणक्य की भाँति प्रधान मंत्री पद संभाल कर राज्य व्यवस्थित किया।

27. ज्ञानेश्वर – 12वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में जन्में पंथी, सिद्ध बालयोगी जिन्होंने भगवद्गीता की पद्यबद्ध टीका 'ज्ञानेश्वरी' नाम से लिखी। इनके बड़े भाई निवृत्ति नाथ तथा छोटे भाई सोपान देव और बहिन मुक्ता बाई भी आत्म–ज्ञानी थे। मुक्ता बाई ने ''ताटीचे अभंग'' की रचना की और सिद्ध योगी चांगदेव जी को ज्ञान दिया। ज्ञानेश्वर जी ने ''चांगदेव पाषष्ठी'' ग्रंथ की रचना की।

28. समर्थ गुरू रामदास – 17वीं शताब्दी में मराठवाड़ा में सूर्याजी पंत के घर जन्में। विवाह मण्डप में 'सावधान' शब्द सुन भाग कर वर्षों घोर तपस्या कीं मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित समाज को जगाते हुए हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना के लिए, शिवाजी का मार्ग–दर्शन किया और उनके गुरू के नाम से विख्यात् हुए। भारत भ्रमण कर हनुमान स्थापित कर मठो की स्थापना की।

29. पुरन्दर दास – 16वीं शताब्दी में कर्नाटक में जन्में, माधवा सम्प्रदाय के वैरागी कृष्ण भक्त कवि जिनके भजन प्रसिद्ध है।

30. संत नामदेव – गोरा कुमार, सावता माली, जना बाई, एक नाथ इन महान संतों ने भी अपनी अभंग रचना से समाज की सेवा की।

31. बिरसा मुंडा – 1875 में बिहार के जन–जाति बहुल छोटा नागपुर के रांची जिले में जन्में बिरसा मुंडा ने अंग्रेज शासकों के अत्याचारों के विरूद्ध वनवासियों को संगठित कर सशस्त्र विद्रोह किया। 25 वर्ष की आयु में कारागार में डाल दिए गए। वनवासी इन्हें भगवान के रूप में याद करते है।

32. राजा राम मोहन राय – 1772 में बंगाल में जन्में। ब्रह्म समाज के संस्थापक, सती प्रथा, बाल विवाह, परदा–प्रथा कि विरोधी तथा विधवा – विवाह तथा महिला शिक्षा के समर्थक थे।

33. ज्योतिबा फूले – महात्मा ज्योति राव गोविंदराव फूले 11 अप्रैल 1827 – 28 नवम्बर 1890, एक भारतीय समाज सुधारक, समाज प्रबोधक, विचारक, समाज सेवी, लेखक, दर्शनिक तथा क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। महिलाओं व पिछड़े व अछूतों के उत्थान के लिए अनेक कार्य किए। सभी वर्गों को शिक्षा प्रदान करने के समर्थक। सत्य शोधन समाज के संस्थापक, महिला शिक्षा के समर्थक, किसानों के हितैषी, समाज के विरोध, विद्रोह के बाद भी अपनी पत्नी को पढ़ाकर प्रथम महिला स्कूल की स्थापना की। पत्नी सावित्री बाई ने पति के साथ साथ समाज के शुद्र जाति के लिए जल प्रबंध, जल निवास की छात्रों के

छात्रावास की सेवा की। त्योतिबा फूलत की शेतकऱ्याचा आसूड़ (किसान का कोड़ा पुस्तक प्रसिद्ध हैं।)

34. दयानन्द सरस्वती – 1824 में कठियावाड़, गुजरात में जन्में, आर्य समाज के संस्थापक। वैदिक धर्म के पुनरूत्थान के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया। सत्यार्थ प्रकाश के द्वारा हिंदु धर्म की श्रेष्ता सिद्ध की।

35. संत एकनाथ – महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संतों में से एक माने जाते हैं। ब्राह्मण जाति के होने के बावजूद इन्होंने जाति प्रथा के खिलाफ अपनी आवाज उठाई। समाज के लिए उनकी सक्रियता ने उन्हों उस वक्त के संन्यासियों को आदर्श बना दिया था।

36. महात्मा गांधी – इनका जन्म 2 अक्टूबर 1869 को पोरबंदर में हुआ था ।गांधी जी की जीवनी संघर्षों से भरी है लेकिन बहुत प्रेरणादाई है। सत्य और अहिंसा की राह पर चलते हुए अपने कर्तव्य का पालन किया इनका परिवार वैष्णव मत को मानने वाला था। जैन धर्म के गहरे प्रभाव के कारण वह सत्य और अहिंसा में अटूट विश्वास करते थे ।गांधी जी सफल लेखक थे उनके लिखित पुस्तक 1, हिंद स्वराज 2, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास 3, सत्य के प्रयोग (आत्मकथा) तथा गीता पदार्थ कोष सहित संपूर्ण गीता की टीका ।वह गुजराती में लिखते थे, हिंदी अनुवाद स्वयं ने किया। स्वतंत्रता प्राप्ति में उनका योगदान रहा। उनकी हत्या नाथूराम गोडसे 30 जनवरी 1948 में की।

✻✻✻

ऋषि महर्षियों ने मानवता की सीख दी

ऋषि–मुनियों ने हमें सत्य, अहिंसा परोपकार संयम और आत्मज्ञान की शिक्षा दी है।

उन्होंने हमें सिखाया है कि हमें सदैव सत्य बोलना चाहिए ,दूसरों की सहायता करना चाहिए और आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास करते रहना चाहिए।

(1) महर्षि दधीचि महर्षि दधीचि वेद शास्त्रों आदि के पूर्ण ज्ञाता और स्वभाव के बड़े ही दयालु थे। अहंकार तो उन्हें छू तक नहीं पाया था । वे सदा दूसरों का हित करना अपना परम धर्म समझते थे। उनके व्यवहार से उस वन के पशु पक्षी तक संतुष्ट थे, जहां में रहते थे। गंगा तट पर ही उनका आश्रम था ।जो भी अतिथि महर्षि दधीचि के आश्रम पर आता स्वयं महर्षि तथा उनकी पत्नी (गभस्तिनी) अतिथि की पूर्ण श्रद्धा भाव से सेवा करते थे। यू तो भारतीय इतिहास में कई दाने हुए हैं, किंतु मानव कल्याण के लिए अपनी अस्थियों का दान करने वाले मात्र महर्षि दधीचि ही थे ।

देवताओं के मुख से यह जानकर की मात्र दधीचि की अस्थियों से निर्मित वज्र द्वारा असुरों का संहार किया जा सकता है ,महर्षि दधीचि ने अपने शरीर का त्याग कर अस्थियों का दान देवराज इन्द्र को कर दिया ।

(2) नारद देवर्षि नारद धर्म के प्रचारक तथा लोक कल्याण हेतु सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। शास्त्रों में उन्हें भगवान का मन कहा गया है । इसी कारण सभी युगों में, सभी लोको में ,समस्त विधाओं में, समाज के सभी वर्गों में नारद जी का सदा से एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मात्र देवताओं ने ही नहीं वरन दानवो,ने भी उन्हें सदैव आदर किया है। समय–समय पर सभी ने उनसे परामर्श किया लिया है। नारदस्मृति में व्यवहार मातुका यानी अदालती करवाई और सभा न्यायालय सर्वोपरि माना गया है। इसके अलावा इस स्मृति में ऋना धन ऋना

वापस करना उपनिधि यानी जमानत संभुय समुत्थान यानी सहकारिता ,दत्ताप्रदानिक, यानी करार करके भी उसे नहीं मानने, अभ्युपेत्य–असुक्षुषा यानी सेवा अनुबंध को तोड़ना है ।

वेतनस्य अनपाकर्म, यानी कार्य करवा के भी वेतन का भुगतान नहीं करना शामिल है। नारदस्मृति में अस्वामी विक्रय यानी बिना स्वामित्व के किसी चीज का विक्रय कर देने को दण्डनीय अपराध माना है। विक्रिय संप्रदान यानी बेचकर भी सामान ना देना भी अपराध की कोटि में है

इसके अतिरिक्त क्रितानुशय यानी खरीद कर भी सामान ना लेना। समस्थान – पाकर्म यानी निगम श्रेणी आदि के नियमों का भंग करना, सीमा बंद यानी सीमा का विवाद और स्त्रीपुशयोग यानी वैवाहिक संबंध के बारे में भी नियम कायदों की चर्चा मिलती है ।

नारद स्मृति में दायभाग यानी पैतृक संपत्ति के उत्तराधिकारी और विभाजन की चर्चा मिलती है ।इसमें साहस यानी बल प्रयोग द्वारा द्वारा अपराधी को दंडित करने का विधान भी है ।

नारद स्मृति वाक्यारूष्य यानी मानहानि करने ,गाली देने और दण्ड पारूष्य यानी चोट और क्षति पहुंचाने का वर्णन भी करती है ।नारद स्मृति के प्रकीर्णन में विविध अपराधों और परिशिष्ट में चौर्य एवं दिव्य परिणाम का निरूपण किया गया है ।

महर्षि नारद जी को संसार का प्रथम पत्रकार भी कहा जाता है ।पूरे संसार में न्याय नीति शांति का मानव कल्याण का कार्य उन्होंने किया ।)

(3) अंगिरा महर्षि महर्षि अंगिरा की विशेष महिमा है, यह मंत्र द्रष्टा, योगी, संत महान भक्त है। इनकी अंगीरास्मृति में सुंदर उपदेश तथा धर्माचरण की शिक्षा व्याप्त है।

(4) पुलस्त्य महर्षि पुलस्त्य परमपिता ब्रह्मा के मानस पुत्रों एवं प्रजापतियों में से एक है । जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मदेव के कान से हुई है। महाभारत और पुराणों में इनके विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। कहते हैं कि जगत में जो कुछ भी शांति और सुख का अनुभव होता है उसमें महर्षि पुलस्त्य की बहुत बड़ी भूमिका है। इनका स्वभाव अत्यंत दयालु बताया गया है जो देव, दानव, मानव में कोई भेदभाव नहीं करते। महाभारत में इस बात का उल्लेख है, कि अपने पिता ब्रह्मा की आज्ञा से महर्षि पुलस्त्य ने पितामह भीष्म को ज्ञान प्रदान किया था।

(5) पंचशिख ऋषि ने जनक को उपदेश दिया और धर्म का मार्ग बताया। साथ ही विश्वावसु को भी धर्म उपदेश दिया।

(6) महर्षिअगस्त दीर्धतम, महर्षि कणाद, इन्होंने भी अपने तप, जप ज्ञान धर्म ग्रंथ रचनाओं द्वारा मानव सेवा की है।

(7) महर्षि पाणिनि एक संस्कृत व्याकरणविद् थे। जिन्होंने ध्वन्यात्मकता, ध्वनि विज्ञान और आकृति विज्ञान का एक व्यापक और वैज्ञानिक सिद्धांत दिया। पाणिनि को भाषा और साहित्य का संस्थापक माना जाता है। पाणिनि की संस्कृत भाषा के सबसे बड़े व्ययाकरणविद् हुए।

(8) वेदव्यास महर्षि वेद व्यास जी ने मानव जीवन को गुणो पर निर्धारित करते हुए उन महान आदर्श को व्यवस्थित रूप में समाज के सामने रखा। विचार तथा अचार का समन्वय करते हुए भारत वर्ष के साथ उन्होंने संपूर्ण मानव जाति का मार्गदर्शन किया। इसलिए भगवान वेदव्यास जगतगुरु है। हिंदू परंपराओं में उन्हें वेदों के मंत्रों को चार ग्रंथ में संकलित करने वाला साथ ही 18 (अठारह) पुराण और ब्रह्म सूत्रो का लेखक भी माना जाता है। गुरु गोविंद सिंह ने ऋषि व्यास को ब्रह्मा के अवतार के रूप में उल्लेख किया है उन्हें ब्रह्मा का पांचवा अवतार माना जाता है और उन्हें वैदिक शिक्षा का भंडार बताया।

(9) भुगु आदि ऋषि परंपरा के एक ऋषि है। वह सात महान ऋषियों, सप्तऋषियों

में से एक है, और ब्रह्मा द्वारा बनाई गए कई प्रजातियां (सृष्टि के सूत्रधारों) में से एक है। वे भविष्यकहने वाले ज्योतिष के पहले संकलन करता थे। और भृगु संहिता के लेखक भी थे। जो एक ज्योतिष (ज्योतिष) क्लासिक है।

(10) महर्षि वाल्मीकि न केवल एक महान कवि से बल्कि वे सामाजिक समरसत्ता और मानवता के प्रबल समर्थक थे । ऐसा स्वामी गुरु चरण ने कहा। मुख्य वक्ता कृण ने वाल्मीकि जी शास्त्र और शस्त्र दोनों के ज्ञाता थे ।भगवान वाल्मीकि के पावन प्रकट दिवस पर मौलिक विज्ञान एवं मानविकी विद्यालय में एक विचार गोष्ठी का आयोजन विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर बी,आर कंबोज ने अपने संबोधन में कहा कि महर्षि वाल्मीकि के आदर्श और शिक्षाए मानव जीवन के लिए प्रेरणा स्रोत है। उनके आदर्शों से हमें सच्चाई और न्याय के मार्ग पर चलने की प्रेरणा भी मिलती है। उन्होंने रामायण जैसे महान काव्य की रचना करने के साथ साथ ही समाज के वंचित और पिछड़े वर्गों को शिक्षा सामाजिक उन्नति का मार्ग दिखाया इस प्रकार सभी ऋषि महर्षियों ने मानवता की सीख दीओर सभी मानव कल्याण के पक्षधर थे।

***

मानवता की पहचान क्या है ?

मानवता एक ऐसा गुण है ,जो मानवीय स्थिति से प्राप्त परोपकारी नैतिकता से जुड़ा है।

यह एक दूसरे के प्रति मानवीय प्रेम और करुणा को दर्शाता है। मानवता न्याय से इस मयाने में भिन्न है, कि न्याय में पाई जाने वाली निष्पक्षता की तुलना में मानवता में शामिल व्यक्तियों के प्रति परोपकारिता का स्तर अधिक होता है।

मानवता किसकी संतान है ? सभी मनु की संताने है, इसलिए मनुष्य को मानव (मनु से उत्पन्न) भी कहा जाता है। सनातन धर्म के अनुसार मनु संसार के प्रथम पुरुष थे और प्रथम स्त्री भी ब्रह्मपुत्री सतरूपा। इन्हीं प्रथम पुरुष और प्रथम स्त्री के मैथुनी सृष्टि से संसार के समस्त जनों की उत्पत्ति हुई। मनु की संतान होने के कारण वे मानव या मनुष्य कहलाए। स्वाय भुव मनु को आदि भी कहा जाता है। आदि का अर्थ होता है प्रारंभ।

अच्छी मानवता क्या है ? सही अर्थों में मनुष्य वही है, जिसके मन में अन्य प्राणियों के प्रति दया का भाव हो तथा जो आजीवन धर्म के मार्ग पर अडिग रहे। मानवता ही मनुष्यता की सच्ची परिभाषा है ।यह प्रवचन जैन संत सुनील मुनि, वीरेन मुनि अह्ममुनि जो जैन स्थानक में चातुर्मास के दौरान उपस्थित श्रध्दालुऔ को कही जैन संतों के साथ ही सभी संत, महात्मा ऋषि मुनि, महर्षि का कहना है कि शरणागत की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का पहला धर्म है। प्रकृति ने प्रत्येक जीव को अलग–अलग रूप रंग और शारीरिक क्षमताऐ प्रदान की है। मनुष्य इन सभी जीवो में प्रकृति की सबसे अच्छी रचना माना गया है। जैन मुनि उन्होंने कहा है कि मनुष्य चाहे तो प्राणी जगत का रक्षक भी बन सकता और भक्षक भी। किंतु असली इंसान वही है जिसके भीतर दया का भाव हो, संतो ने कहा शरीर तो मात्र बाहरी आवरण के समान है। शरीर के अंदर आत्मा सूक्ष्म भाव

से छुपी बैठी है।

मानवता का आदर्श क्या है ? हयूमैनिटस का अर्थ है मानवीय गुणो का विकास, उसके सभी रूपों में, उसकी पूरी सीमा तक।

इस प्रकार यह शब्द न केवल ऐसे गुणों को दर्शाता है, जो आधुनिक शब्द मानवता से जुड़े हैं – समझ, परोपकार, दया, करूणा, बल्कि ऐसे आर्थिक मुखर गुण भी है जैसे की धैर्य, निर्णय, विवेक, वाक्पटुता और यहां तक की सम्मान का प्यार।

* हमारे सभी संत, महात्मा, मुनि ऋषि, महर्षियों का व्यवहार, आचरण, मानवतावादी ही था। आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आकर हम अपनी संस्कृति, संस्कार को विस्मित करते जा रहे हैं।

यही हमारे अधपतन का कारण है। घर–घर में कलेश हो रहे, धन संपत्ति के लिए मारकाट, बड़े बुजुर्गों का अपमान। उनकी छत्रछाया से हटते एकल परिवार बन रहे हैं।

संयुक्त कुटुंब पद्धती में हर कोई एक दूसरे का मान सम्मान करना। प्रेम, करुणा, दया परोपकार की भावना थी, पर क्षैणे–क्षैणे यह धराशाई होते जा रहे है। इसके कई कारणो है, हमें उन कारणो को समझना होगा।

हर कोई अपने मिथ्या अहंकार में जल रहा है, एक दूसरों का विचार, उसकी भावना, उसके व्यक्तित्व सम्मान को भूल रहा है।

ऐसा नहीं है कि सभी ऐसा आचरण कर रहे हैं। अच्छे, संस्कारी, सत्संगी समाज की सेवा भाव करने वाले अनेको परिवार है, संस्थाएं, सतगुरु महात्मा है, जिस कारण यह संसार चल रहा है। युद्ध, मारकाट, तेरा–मेरा यह पहले नहीं था, ऐसा नहीं है, पर समय के अनुसार बदलते परिवेश को देखते हुए हमें हमारी प्राचीन संस्कृति को फिर से फलित–फूलित करना चाहिए।

जीवन क्षणिक है और मानव जीवन तो चौरासी (84) लाख योनियों के बाद मिला है। उसे सार्थक बनाने के लिए सत्कर्मो की अति आवश्यक है। हमारे सभी संत, महात्माओं ने अपने ग्रंथ, रचना, व्यवहार, आचरण से हमें यह अमूल्य पूंजी दी है। उस सत्कर्म की पूंजी को अपने पीढ़ी दर पीढ़ी तक पहुंचाते रहे। इसी में, सभी का भला है। संसार का उज्ज्ञवल भविष्य सच्ची मानवता में ही है।

***

संदर्भ ग्रंथ –

पुस्तक का नाम		लेखक/ संपादक
1)	भारत के संत।	– रामलाल
2)	हिंदी साहित्य का इतिहास	– आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3)	प्राचीन मराठी वाडमयाचे स्वरूप मराठी	– ह.श्री शेणोलीकर
4)	प्रमुख ऋषि मुनि	– गीता प्रेस गोरखपुर
5)	महर्षि वाल्मीकि जीवन एवं विचारधारा	– कर्मसिंह राजू
6)	सुबोध साहित्य माला (माता जी का दर्शन)	– यशपाल जैन
7)	कल्याण भक्तमाल अंक	– गीता प्रेस गोरखपुर
8)	भारतीय संस्कृति एवं जीवन दर्शन	– श्री राम आचार्य
9)	तुलसी मानस भारती	– प्रधान संपादक प्रभु दयाल मिश्र
10)	पांच भक्ति संप्रदाय मराठी	– प्रा. र. रा. जोशी (मोघे प्रकाशन, पुणे कोल्हापुर)
11)	भारत के महान ऋषि	– वैज्ञानिक डॉ. राकेश कुमार आर्य (डायमंडबुक्स)